

त्रिविधनामावली – हिन्दी भाषान्तर

श्रीमद्वल्लभाचार्यमहाप्रभु

विरचिता:

त्रिविधनामावली

(श्रीगोकुलोत्सवजी द्वारा संस्कृत टीकाका हिन्दी भावानुवाद)

प्रकाशक : श्रीवल्लभसुखधाम जनकल्याण (लोक) न्यास

जनकगंज — लश्कर, ग्वालियर — ४७४००१

प्रति : ११००

श्रीवल्लभ जयन्ती वि. स. २०७३

मई ३, २०१६

निःशुल्क वितरणार्थ

न्यौछावर : नित्य पाठ—चिन्तन—मनन

प्रकाशक :

प्राक्कथन

कुछ माह पूर्व जब नि.ली.पू.पा.गो. श्री श्री 108 चिमनलालजी महाराज श्री से मिला था, तब आपश्री ने आज्ञा की कि त्रिविधिनामावली का हिन्दी में प्रकाशन करायें। वह कहीं उपलब्ध नहीं है। इसके लिये इन्दौर के प.भ. श्री मुकुन्दभाई एवं खरगोन प.भ. श्री वृन्दावन महाराज से सम्पर्क किया। वहां पर गुजराती भाषा में उपलब्ध थे। दोनों स्थानों से ग्रंथ की प्रतिलिपि मंगवाकर गोकुल भेजी। आपश्री ने आज्ञा की कि दोनों एक ही हैं ओर ठीक हैं। फिर इस ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद करने का प्रश्न उठा। एक वैष्णव ने अनुवाद किया परन्तु उस अनुवाद से किसी को संतुष्टी नहीं हुई। अतः यहां ग्वालियरके वैष्णव अचल सांघी ने अनुवाद किया एवं पू.पा. गोस्वामी श्री मिलन बाबा साहब ने संशोधन किया।

इस लघु ग्रंथ में महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी ने श्री भागवत महापुराण दशम स्कन्ध में वर्णित श्री ठाकुरजी की बाल लीला, प्रौढ़ लीला एवं राज लीला का संक्षेप में वर्णन किया है, जिसका पाठ, चिन्तन एवं मनन करके जीव परम आनन्द का अनुभव कर सकता है।

इस ग्रंथ के लिये पू.पा. गोस्वामी श्री श्याम मनोहरजी महाराज श्री बम्बई—किशनगढ़, पू.पा.गोस्वामी श्री मिलन बाबा साहब. मुंबई, कोटा—जतीपुरा, पू.पा.गोस्वामी श्री पंकज बाबा साहब एवं पू.पा. गोस्वामी भूषण बाबा साहब गोकुल के आशीर्वचन प्राप्त हो गये हैं। इस ग्रंथ के प्रकाशन में निम्न वैष्णव बंधुओं ने तन, मन एवं धन से सहयोग प्रदान किया उनके हम आभारी हैं —

- (1) प.भ. श्री रमेशचन्द्रजी बिन्दल, भोपाल
- (2) गो.वा.प.भ. श्री गुलाबचन्द चम्पालाल महाराज (बैंक वाले) की ओर से प.भ. श्री वृन्दावन महाराज, खरगोन
- (3) प.भ. श्री वल्लभदास थानवी, रायपुर
- (4) प.भ. श्री मनीष तिवारी, इन्दौर
- (5) प.भ. श्री मुकुन्दभाई सोनी, इन्दौर

(6) प.भ. श्री सुरेश बाबू खंडेलवाल, मुम्बई गोवर्धन

(7) प.भ. श्रीराम प्रसादजी उपाध्याय, मुरैना

(8) प.भ. श्री रवि महाजन, खरगोन

मुझे पूर्ण विश्वास है कि वैष्णवजन इस ग्रन्थ का लाभ उठाकर
जीवन सार्थक बनाएंगे।

दासानुदास

कैलाश नारायण खंडेलवाल

श्रीकृष्णाय नमः

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

ग्रन्थ परिचय

परमात्मामें अनेक गुण—धर्म हैं तथा स्वयं अपने अनंत रूपोंमें प्रभु अनंत लीलाओंको प्रकट करते हैं। इनमें कितने गुण—धर्म रूप तथा लीलायें माहात्म्यज्ञान बढ़ानेवाली होती हैं और कुछ स्नेहको सुदृढ़ करनेवाली होती हैं। जिस प्रकार अहंतास्पद देह और देहसे सम्बन्धित ममतास्पद वस्तुओंमें स्नेह हमें अपनी आत्मामें रहे हुए स्नेहके कारण जुड़ जाता है, वैसे ही आत्मामें प्रियताकी अनुभूतिका स्रोत परमात्मा होता है। अतएव आत्मा प्रिय है तो परमात्मा परमप्रिय। जैसे देहमें आत्मा है वैसे ही आत्माके भीतर परमात्मा की स्थिति है। अतएव वह आत्माकी भी आत्मा है। आत्माकी आत्मा होना उसका स्नेहको बढ़ाने वाला रूप है। तत्तद् देहोंमें आत्मा भिन्न भिन्न होती हैं किन्तु सभी आत्माओंमें स्थित परमात्मा एक अभिन्न तत्त्व है। यही इसकी परमता—महत्ता है। यह उसका माहात्म्य है। अतएव विज्ञानमय आत्माके भीतर आनन्दमय परमात्माकी स्थिति उपनिषद् बताते हैं।

उपनिषदोंमें जगतकी उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय के कारणरूप परमात्माको 'ब्रह्म' कहा गया है। उक्त, त्रिविध लीलाओंका वर्णन श्रीमद्भागवतमें सर्ग—विसर्ग—स्थान—पोषण—ऊति—मन्वन्तर—ईशानुकथा—निरोध—मुक्ति तथा आश्रयके रूपमें दशधा हुआ है। इनमें कुछ उत्पत्ति, कुछ स्थिति और कुछ प्रलय रूप श्रुतिवर्णित ब्रह्मकी लीलाओंका ही भागवत भगवान्की दशविध लीलाओंके रूपमें विवेचन करती है। उत्पत्ति एवं प्रलय की लीलायें परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके वास्तविक माहात्म्यका ज्ञान प्रदान करती हैं तथा स्थितिकी

लीलायें श्रीकृष्णके प्रति हमारे स्नेहको सुदृढ़ करती हैं। स्थितिकी लीलाओंका चरमोत्कर्ष श्रीमद्भागवतके दशम स्कंधमें निरोध लीलाके रूपमें वर्णित हुआ है। अतएव परमात्मा और जीवात्मा के बीच रहे सहज स्नेहका दशम स्कंधमें परमोत्कर्ष वर्णित हुआ है।

श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रम्में श्रीमहाप्रभुजीने जैसे समग्र श्रीमद्भागवतमें से दशविध लीलाओंके निरूपण करनेवाले नामोंका संकलन किया है, वैसे ही त्रिविधनामावलीमें केवल दशमस्कन्धकी भगवल्लीओंका अवगाहन करानेवाले भगवन्नाम संकलित किये हैं। दशम स्कंधमें भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीला, प्रौढ़लीला तथा राजलीला वर्णित हुई हैं। स्नेहात्मिका भक्तिकी भी श्रीमहाप्रभु तीन अवस्था स्वीकारते हैं –

(1) प्रेम (2) आसक्ति (3) व्यसन ।

इस त्रिविधनामावली, जिसमें परमात्माके भक्तोंके बीच निरुद्ध होनेकी लीलाओंका वर्णन है, के चिंतन-पठनसे जीवात्मामें प्रेमासक्तिव्यसन के क्रमिक सोपानों पर भक्ति आरुढ़ होती है और भक्त प्रपंचको भूल कर भगवानमें आसक्त हो जाता है – निरुद्ध हो जाता है।

“बाललीलानामपाठात् श्रीकृष्णे प्रेम जायते ।।

आसक्तिः प्रौढ़लीलायाः नामपाठात् भविष्यति ।।

व्यसनं कृष्णचरणे राजलीलामिधानतः ।।

तस्मान्नामत्रयं जाप्यं भक्तिप्राप्तीच्छुभिस्सदा ।।

तारीख :- १०.१०.१९८४

गोस्वामी श्याम मनोहर

॥श्री हरिः॥

शुभाशीर्वचन

“त्रिविध नामावली” महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीकी अप्रतिम रचना है। आपश्री ने प्रभुचरण श्रीगुसांईजीकेलिये इसे रचा ऐसा प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण दशमस्कन्धार्थको अपनेमें समाहित किए हुए यह नामावली भक्तोंको प्रेम आसक्ति तथा व्यसन कक्षा तक पहुंचा देती है। परन्तु इसके लिए इसका मनन अत्यावश्यक है। श्री वल्लभकी अति कृपा को प्रकट करते हुए इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। जो इस ग्रन्थ के मनन में अति उपयोगी होगा। हमारा विश्वास है। प्रकाशक को हार्दिक शुभकामनाएं।

गोस्वामी पंकज बाबा

गोकुल

श्रावण श. १ सं. २०१५

।।श्रीकृष्णाय नमः।।

शुभाशीर्वचन

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि त्रिविध नामावली का हिन्दी भाषानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में भगवान् की निरोध लीला है। इस लीला के श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करने से भक्तों का निरोध सिद्ध होता है।

श्रीवल्लभचार्यचरण ने कृपा करके दशम स्कन्ध के साररूप “त्रिविधानामावली” को प्रकट किया। जिसके पाठ करने से प्रेम, आसक्ति एवं व्यसन रूप निरोध सिद्ध होता है।

अर्थ के अनुसन्धानपूर्वक पाठ करने से विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। अतः यह अनुवाद सभी जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इस सराहनीय प्रयास के लिए श्री कैलाशनारायण जी को अभिनन्दन सह आशीर्वाद।

तारीख — २८.०९.२०१५

गो. भूषण

।।विजयते श्रीमन्मथुराधीशः प्रभुः।।

शुभाशीर्वचन

कृपानिधि श्री आचार्यचरण ने दैवीजीवों पर स्वकृपा दृष्टि अनेकधा की है जिसमें कि स्वरचित ग्रन्थ भी आपकी कृपा के ही परिसूचक हैं, श्रीआचार्यचरण अदेयदान—दक्ष और महोदारचरित्रवान् हैं, आपके अवतार का मुख्य प्रयोजन दैवी जीवों को भगवत्प्राप्ति कराना ही है येनकेन प्रकारेण जीव का निरोध प्रभु में हो अतः यह त्रिविधनामावली भी दशम स्कन्ध का साररूप है आनन्दघन प्रभु की प्रपञ्चविस्मृति कराने वाली त्रिविध लीलाओं का निरूपण श्री वल्लभ ने भगवन्नाम द्वारा किया है क्रमशः बाललीला, प्रौढ़लीला, राजलीला के द्वारा स्नेहात्मिका भक्ति की त्रिविधरूपेण सिद्धि होती है यथा प्रेम, आसक्ति और व्यसन।

इस महाप्रभु के नामात्मक ग्रन्थ पर श्रीगोकुलोत्सवजी की विवृति टीका प्राप्त होती है जो कि अत्यन्त सुगम है टीकाकार ने टीका में संस्कृत की सरल भाषा में श्रीमद् भागवत दशमस्कन्ध के श्लोकों की संगति के द्वारा और साथ—साथ श्री आचार्यचरण के भी वचनों का उद्धरण देते हुए सरल भाषा में यह टीका लिखी है जो कि त्रिविधनामावली के अन्तर्गत समस्त नामों का तात्पर्य सहित वास्तविक अर्थ बोधन कराने में परमोपयोगी है। किन्तु इस टीका का हिन्दी

अनुवाद करके पुनः प्रकाशन कराना यह कार्य सर्वोपभोग्य सिद्ध होगा जो संस्कृत भाषा के अनभिज्ञ है उनके लिये तो अत्यन्तोपयोगी।

इस टीका का प्रकाशन समय—समय पर अनेक महानुभावों ने कृपा करके कराया है इस विषय में मुझे एक प्राचीन प्रस्तावना में लिखे त्रिविधनामावली के प्रकाशन के समय के कुछ वचन दिखे जो भगवदीय श्रीमूलचन्द तेलीवालाजी के थे जिन्हें कि त्रिविधनामावली के प्रकाशनार्थ एक प्रति हमारे घर से भी प्राप्त हुई थी यह जानकर मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अतः मैं उनके ही तत्कालीन प्रस्तावना के वचन यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ “शिष्टं पुस्तकद्वयं श्रीमन्थुरेशमन्दिरपुस्तकसंग्रहस्थम्, कोटातः पण्डित गोकुलदासैः प्रेषितम्।”

पुनः इस टीका के अनुवाद सहित प्रकाशन पर मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूँ भविष्य में भी और अन्य टीकाओं का प्रकाशन कार्य हो ऐसी शुभाशीष, श्रीमथुराधीशप्रभु और महाप्रभु आचार्यचरण की आप सब पर सदा कृपा दृष्टि रहे। किमधिकम्।

दिनांक :— २८.०९.२०१५

गोस्वामी श्री मिलनकुमार जी

शुद्धाद्वैत प्रथम पीठ

“श्री”

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः

श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः

भगवद्धनानलस्वरूप श्रीमद्वल्लभाधीश्वर प्रकटिता

त्रिविधनामावली

श्रीमदाचार्यवल्लभाधीश्वरके परम पावन वंशमें भूषण समान श्रीगोकुलोत्सवजीने इस ग्रन्थ पर विस्तारसे विवृति लिखी है। उसमें आपश्री मंगलाचरण कर रहे हैं —

नमामि श्रीमदाचार्यपदाब्जं तन्महाशयम् ।

ऊषरं सरसीकृत्य सुरभीकृतवत्स्वयम् ।।१।।

स्वयं बंजर भूमिको सरोवर समान सुंदर बनाकर सुगंधित करनेवाले ऐसे महान आशयवाले श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यजीके चरणाविन्दोंमें मैं नमन करता हूँ।

श्रीमदवल्लभाधीश्वरकी महिमा महान है, अपार है, केवल निष्फल खारी बंजर भूमि जैसे कलिदोषसे भरपूर जीवोंको शरण लेके उनके जीवनको सफल करते हैं। उनको मीठे जलवाले सरोवरके समान करके सुगंधिमान भावसे रस सम्पन्न कर देते हैं। ऐसे श्रीमहाप्रभुजीके चरणाविन्दोंका वंदन करके इस उत्तम ग्रन्थकी समाप्तिमें अंतराय न हो, इसके लिये मंगल करते हैं ।।१।।

श्रीमदाचार्यचरणका वंदन करके करुणामयमूर्ति श्रीविठ्ठलेश्वरके चरणोंका भी चिन्तन करते हैं:

भावये सततं श्रीमद्विद्वलेशपदाम्बुजम् ।

येन स्वकरुणासारैः सिंचितं हृदयं मम् ॥२॥

जिन्होंने अपनी दयामय दृष्टिकी वृष्टिके जल बिंदुओंसे मेरे हृदयका सिंचन किया है, ऐसे श्रीमद्विद्वलेश्वर प्रभुके चरणकमलकी निरंतर भावना करता हूं ॥२॥

अतो नामावली कल्पद्रुम भाव फलानि हि ।

अद्भुतान्युदितान्यत्र भोग्यानि सुहृदां परम् ॥३॥

इसीलिए अद्भुत रीतिसे उदय हुए इस नामावली रूप कल्पवृक्षके भावमय फूल सत्पुरुषों केलिये अत्यंत उपभोग करने योग्य, सेवन करने जैसे हैं ॥३॥

परम कृपानिधान भगवान्ने अपने प्राकट्यके समयमें कलिकालके दोषोंमें डूबे हुए जीवोंका उद्धार कैसे हो, इस विचारसे अपना नाम लीलात्मक श्रीमद्भागवत प्रकट किया। उसके बाद आगे कलिदोष वृद्धिगत होनेसे श्रीमद्भागवतका भी श्रवण पठन अशक्य जैसा बन गया। अतएव निजजनोंके ऊपर कृपा बरसाने हेतु महाकृपासिंधु दीनबंधु श्रीमदाचार्यचरणने श्रीमद्भागवतमेंसे उद्धृत प्रभुके सहस्रनामोंको प्रकट किया। जिसका पठन करनेसे सम्पूर्ण भागवतके अर्थका ज्ञान सिद्ध होता है। वो आपश्रीने पुरुषोत्तमसहस्रनामके आरम्भमें “सहस्रं यैस्तु पठितैः पठितं स्याच्छुक्तामृतम्” इस श्लोकमें स्पष्ट समझाया है। उन सहस्र नामोंमें भी समुदाय रूपसे सभी अवतारोंके चरित्र तथा धर्म सहित नामोंका निरूपण होनेसे निरोधलीलामें दशमस्कन्धमें दर्शाये हुए भगवत् लीलात्मक नाम उनसे भिन्न हैं। इसलिए मुख्य रूपसे उनका ज्ञान नहीं होता परन्तु सभी नामोंमें साधारण प्रवृत्ति होती है। सात्त्विक, राजस,

तामस ऐसे तीन प्रकारके भक्तोंका निरोध प्रभुमें होनेके लिए तीन प्रकारकी लीला प्रभुने निरोध प्रकरण दशम स्कन्धमें करीं हैं। वो त्रिविधलीला बाललीला, प्रौढ़लीला और राजलीलाको दर्शानेवाले जो नाम हैं, उन नामोंको उद्धृत करके यहां निरूपित करनेमें आया है। उनमें भी कितने ही नित्यलीला अन्तर्गत मूलस्वरूपोंके नाम हैं। प्रथम मूलस्वरूपकी नित्यलीलाके प्रसंगमें आए हुए नामोंका निरूपण किया है।

आरंभमें ये नाम निरूपण फलसहित हैं — इनका पाठ करनेवाले एवं कीर्तन करनेवाले सज्जनको उत्तमोत्तम फलकी प्राप्ति होती है। ऐसी श्रीमद्वल्लभाधीश प्रथम प्रतिज्ञापूर्वक आज्ञा करते हैं कि—

नामावलीं प्रवक्ष्यामि केशवस्याति वल्लभाम् ।

यस्याःसंकीर्तनादविष्णुःआत्मानम्सम्प्रयच्छति ।।१।।

श्रीकृष्णको अत्यंत वल्लभ (परमप्रिय) नामावलीको मैं उत्कर्षसे कथन करता हूं। जिसका कीर्तन करनेसे सम्यग्भाव पूर्वक प्रेमोद्रेकके कारण विष्णु स्वयं रसव्याप्त होकर अपनी आत्माके स्वरूपानंदका दान करते हैं।

केशव शब्दमें क+ईश ऐसे दो शब्दोंसे ब्रह्मा और शंकरको भी मोक्ष देनेवाले महान महिमावान प्रभु और केश शब्दसे कुटिल केशोंके सौन्दर्यकी भी स्फुरणा होती है। बाल अवस्थामें घुघराली केशकला विशेष और रमणीय होती है जिससे बाल लीलात्मक भगवान्के नामोंका मैं उत्कर्ष सरस रीतिसे कथन करनेवाला हूं, ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं। अपना निश्चय दर्शाते हैं। उत्कर्षसे कथन करनेको समझाकर जो लीला करी और जिन भक्तोंका निरोध किया, उन नामोंका कथन भी सूचन करते हैं। अत्यंत प्रिय ऐसा विशेषण देकर प्रभुके वैसे सौन्दर्यको निरखके

प्रेमसे उदय होते वो चरित्र और वो नाम भी अत्यंत प्रेम प्राप्त कराते हैं, ऐसा भाव प्रकट करते हैं। ऐसा करनेसे माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ़ स्नेह उत्पन्न होने पर आगे मुक्ति रूप फल भी मिलेगा।

जब मुक्तिरूप फल प्राप्त होगा ही तो स्वरूपानंद रूप फलको अलग दर्शानेका क्या कारण है ? इस शंकाका समाधान करते हैं—

मुक्तिरूप फलसे स्वरूपानंदकी प्राप्ति रूपी फल उत्तमोत्तम है। मुक्ति रूपी फलमें मात्र एकताका ही भान होता है। स्वरूपानंदका साक्षात् अनुभव नहीं मिलता। इसीलिए दर्शाते हैं कि इस नामावलीके भावपूर्वक प्रेममें आद्रार्द बनकर कीर्तन करनेसे विष्णु सर्वव्याप्त परमात्मा ब्रह्मसे भी परपुरुषोत्तम अखण्डानंदघन विष्णु अपनी आत्मा स्वरूपानंदका दान करते हैं। दान करनेमें भी सम् उपसर्ग कहा है। इसीलिए भक्त जनोके आधीन बनकर सर्वदा उनके सानिध्यमें स्थिति कर अपने स्वरूपका अनवधि आनंद देते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जैसे भगवदीयोंने सर्वसमर्पण प्रभुको किया है वैसे भगवान् भी सर्वोत्तम भगवदीयोंको अपना सर्वसमर्पण करते हैं, यह भाव है, अर्थात् भक्तजन प्रभुको अपनी आत्मा निवेदन करते हैं, तो प्रभु भी अपनी आत्मा भक्तोंको अर्पण करते हैं। यह सर्वथा सिद्ध ही है, भागवतके ६ स्कन्ध के ४ अध्यायमें “मेरे से अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु मेरा भक्त जानता नहीं और मैं भी उससे अन्य कोई भी वस्तु जानता नहीं।” इसके लिये ही इस नामावलीका अच्छी रीतिसे कीर्तन करनेसे प्रभु अपनी आत्माका दान करते हैं। ऐसी श्रीमहाप्रभुजीकी प्रतिज्ञा युक्तियुक्त ही रही हुई है।

इस प्रकार फल प्रदर्शित करके प्रथम बाललीलाके नाम समझा रहे हैं :—

श्रीकृष्णाय नमः ।।१। श्रीकृष्णको नमस्कार ।

यह नित्य (लीलास्थ) मूल नाम जानना, क्योंकि यहां “कृष्ण” शब्दसे परम्काष्ठापन्न वस्तु अक्षरातीत अखण्डानंद स्वरूप प्रभु ऐसी आज्ञा करते हैं, उन ही कृष्णको बाहर सृष्टिमें निज रमणकी इच्छा हुई। मूलरूप श्रीलक्ष्मी आधिदैविक शक्ति सहित रमण करते हैं, अर्थात् यह श्री सहित कृष्ण ऐसा कहा हुआ है। “स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यत नमः” अपने धाम स्वरूप, निज मंदिर रूप, अक्षरब्रह्ममें धामी रमण करते हैं, उनको नमन हो। ऐसा भागवतमें कहा गया है। वह ही अपने तादृशी भक्तजनोंको निरोध सिद्ध करनेके लिए इस लोकमें प्रकट होते हैं। इसीलिए वह अवतार रूप भी कहलाता है, ऐसे श्रीकृष्णको नमस्कार ।

इस नामावलीमें नामोंका निर्देश करके सर्वत्र नमस्कार करा हुआ है, कारण कि दोषवान जीवोंके लिए नमन करनेके अलावा उद्धारका अन्य कोई साधन नहीं है। हमारी दीनता देख कर आप ही कृपा करें। ऐसे “नमः” कहकर अपना आशय व्यक्त कर रहे हैं। श्रीमदाचार्यचरणने “निःसाधन फलात्मा” निःसाधन जीवोंके फलरूप आप हो, ऐसी आज्ञा करी है। तदनुसार यहां भी वही अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं।

नामोंके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति दर्शाकर नमन स्वरूप ही विनियोग माना है। भगवदीय जनोंको विनियोग, संकल्प अपने प्रियतमको प्रणाम करे बिना अन्य क्या हो सकता है ? त्रिविध लीलाओंके आरम्भमें बाललीलाके नामोंसे शुरुआत होती है, ऐसा सूचन करने करने पर भी यह प्रथम मूलस्वरूपका नाम

क्यों रखा है ? इस शंकाके समाधानमें निवेदन करते हैं कि :-

भगवान्की सब लीलाएं नित्य ही हैं, ऐसे बाललीला भी नित्य ही है। इसीसे मूलस्वरूप भी सर्वलीलाओंमें मूलभूत ही होनेसे बाललीलामें उनका समावेश होता है। आरम्भमें 'केशव' पदसे बाललीलाओंके सौन्दर्यको समझाया, यशोदाजीके उत्संगमें खेलते यशोदोत्संगलालित ही मूल स्वरूप हैं। इसीलिए "श्रीकृष्णाय" ऐसे प्रथम मूलरूप नामका उच्चारण करके वंदन किया। ऐसा करके वह लीलायें, उन लीलाओंके अन्तर्गत भक्तजन निरन्तर तदानुसार लीला सहित रहे हुए हैं। इस व्यवस्थाके अनुसार सर्वयोजना करनेमें आई है।११।।

कृष्ण शब्दसे परात्पर परमकाष्ठापन्न वस्तु कहनेमें आई है, तो उस वस्तुका स्वरूप कैसा होगा? ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न हो और मूल स्वरूप तो अलौकिक है तथा भक्त (जीव) तो लौकिकवत् हैं तो वह मूलस्वरूपके द्वारा करनेमें आती नित्यलीलाके अन्तर्गत कहाँसे हो सकता है? इन दोनों शंकाओंके समाधानके लिए आगेका नाम कहते हैं:-

नराकृतये नमः ॥२॥

नरके आकारवाले भगवान्को नमन।

नर समान जिनकी आकृति है। यह दृष्टांत लौकिक दिया हुआ है, परन्तु ऊपर कहे हुए कृष्ण शब्दसे सदानंद स्वरूप यह ही नराकृति प्रभु ऐसा कहकर मूलभूत पुरुषको ही नर कहते हैं। अन्य तो दृष्टांत दर्शानेमें उनको ही पुरुष रूप कहा है। वास्तविक रीतिसे देखें तो पुरुष तो मूल स्वरूप स्वयं ही हैं, अन्य नहीं। इसीलिए सर्वके पति होनेसे उनका ही भजन

करना, ऐसा कहा गया है। स्त्रियां जैसे पतिका भजन सेवन करती हैं। ऐसे सर्व प्राणी मात्र प्रभुका सेवन करें। इस पक्षमें नररूप आकृति जिनकी है, ऐसा पद संबंध करना चाहिये। इस प्रकार श्रीकृष्णका स्वरूप दर्शाके प्रथम शंकाका समाधान किया।

नरोंका समूह नार, नार अर्थात् जीव समूह ऐसा कथन करा होनेसे नर पदसे भक्तोंके जीव आकृति स्वरूप अर्थात् भक्तस्वरूपके लिए भक्तोंके देह, प्राण, इन्द्रियां, अन्तःकरण, जीव, आत्मा आदि। सर्व स्वरूप श्रीकृष्ण ही हैं। इससे उन भक्तोंका भी लौकिकत्व नहीं पर अलौकिकत्व ही है। 'तमदभुतं बालकम्' इस जन्मप्रकरणके श्लोकके विवरणमें आत्माकार्य इस कारिकामें भक्तोंके देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, जीव, आत्मादि सर्व भगवद्रूप ही समझाए हैं। इस कारण उनका अलौकिकत्व भी सिद्ध होता है। इस रीतिसे दूसरी शंकाका समाधान भी इस नामसे करते हैं। अर्थात् नरके समान जिनकी आकृति है। नररूप जिनकी आकृति है, अथवा भक्तस्वरूप नराकृति श्रीकृष्णको नमस्कार हो॥२॥

जब श्रीकृष्ण ही मूलस्वरूप नराकृति हैं, तो परब्रह्म कहलाता भगवान् कौन? ये क्या दूसरा होगा ? उसका निर्णय करते हैं :

परब्रह्मणे नमः ॥३॥ परब्रह्मको प्रणाम।

ये ही परब्रह्म हैं अन्य नहीं। जहां ब्रह्मपद होता है, वहां तो अक्षरब्रह्मसे ऊपर हैं, ऐसा जानना। यह अक्षरब्रह्म परब्रह्म श्रीकृष्णकी विभूति है। इसीलिए ही यहां ब्रह्म शब्दसे पहले पर शब्द जोड़ा है। "अक्षरादपि चोत्तमः" इस भगवद्वाक्यसे परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही हैं। ऐसा उपदेश करते हैं। इस नामसे

लोक और वेदमें प्रसिद्ध पुरुषोत्तम सर्वसे अतीत श्रीकृष्ण ही हैं, ऐसा बताते हैं ॥३॥

इस प्रकार दोनों स्वरूपमें होते हुए भी मूलस्वरूप तो वह ही हैं। अवतार लीला भी वह ही उन स्वरूपसे करते हैं। ऐसा आगे दर्शानेके लिए वैसा नाम प्रकट करते हैं :—

यदु—कुल—चूडामणये नमः ॥४॥

यदुकुलके मुकुटमणि वासुदेवका वंदन।

मथुरालीला और द्वारकालीला भी नित्य ही हैं। ऐसे सूचन करनेमें मूलस्वरूपका ही यह नाम है। ऐसा न हो तो अभी प्राकट्यका अभाव है। इसलिए यह नाम प्रारम्भमें नहीं कहा। जैसे लोकवेदसे अतीत स्वरूपमें ब्रज पतित्व, नंद नंदनत्व और यशोदोत्संग लालित्व यह सब नित्यलीलाके अन्तर्गत होनेसे नित्य ही हैं, ऐसे लोकवेदमें प्रसिद्ध होते हुए भी 'यदुकुल चूडामणित्व' 'वासुदेव देवकीनंदनत्व' आदि भी नित्य ही है, ऐसा जानना। इसीलिए "यदुनां निजनाथानाम्" इस श्लोकमें स्वयं ही जिनके नाथ हैं, ऐसे यादवोंको कंसका भय है। ऐसा जानकर योगमायाको आज्ञा करी। यह आज्ञा प्रकट होनेसे पहले करी है। अर्थात् प्रकट होनेसे पहले भी आप यादवोंके नाथ तो हैं ही। ऐसा न हो तो प्रकट होनेके बाद नाथ कहा, प्रथम नहीं कहा। इसीलिए यदुनाथत्व प्रभुको सदैव सिद्ध है। श्रीवासुदेवजीने भी स्तुति करते हुए इस बातको स्पष्ट करा है। "स एव स्वप्रकृत्येदम् " इस श्लोकसे श्रीसुबोधिनीजीमें निरूपण करते हैं कि यह ही भगवान् अपने आधिदैविक स्वभावसे निज अर्थके लिए ही यह त्रिगुणात्मक जगत प्रकट कर उसके पीछे आप अप्रविष्ट हैं, फिर भी प्रवेश करते हैं, ऐसे

“भासमान” होते हैं। अन्यके लिए जगत प्रकट किया हो तो जगतकी सृष्टिमें आपके प्रविष्ट होनेकी अपेक्षा रहती है, लेकिन स्वार्थके लिए प्रकट करी हुई सृष्टिमें आप अप्रविष्ट ही हैं, फिर भी भोगके लिए कारणपनेसे आविर्भाव होते हुए अन्य सृष्टिके नियम अनुसार, प्रविष्ट हुए हों, ऐसे दिखते हैं। वास्तविक रीतिसे देखें तो निज रमणार्थ सृष्टिरूप हुए होनेसे आपको नवीन प्रवेश नहीं करना पड़ता। कारण कि सदा सर्वदा आप सर्वरूप ही हैं, अर्थात् आज ही देवकीनन्दन वसुदेव सुत, यदुकुल शिरोमण प्रभु हैं, ऐसा नहीं। किन्तु निरंतर ही आप सर्वलीलामें सर्वरूपसे यदुकुल मुकुटमणि ही हैं।

यदुकुलके चूड़ामणि माथेके मुकुटमणि रूप श्रीकृष्ण होनेसे राजस भक्तोंका निरोध करवानेके लिए करी हुई सर्व राजस लीला भी नित्य ही समझनी। इसीलिए ही “जयति जननिवासः” यह भागवत दशम स्कन्ध अ. ६० के श्लोकमें सर्वलीलाओंका नित्यत्त्व ‘जयति’ पदसे समझाया है। यदुकुलका ही इस लोकमें प्राकट्य करनेसे इस लोकमें आपका यदुकुल चूड़ामणित्व भी सिद्ध हो जाता है, यह आशय है। मणि जिस स्थानमें जड़नेमें आयी हो, उसका श्रेष्ठत्व जैसे प्रसिद्ध होता है। वैसे भगवान् भी यदुकुलके महान उत्कर्षको सर्वत्र प्रसिद्ध करते हैं।

इस प्रकार इस नाममें “यदोश्चधर्म शीलस्य” यहांसे आरंभ कर “मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्” यह जन्म प्रकरणके प्रथम अध्यायके श्लोकोंका सर्व चरित्रसे प्रश्न परंपराके भावोंका समावेश किया हुआ है। इसीलिए पूर्ण मूलस्वरूपमें उन व्यूहके अंशसे वो कार्य हुए होनेसे वैसे नामोंका निरूपण करनेमें आया है। यह आशय मानना ॥४॥

परमात्मा रूप प्रभुके चरित्रको ज्ञापन करनेवाले नामोंका निरूपण करते हैं :

वसुदेव—नन्दनाय नमः ॥५॥ वसुदेवनन्दनका वंदन ।

वसुदेवको आनंद देनेवाले “वसुदेवगृहे साक्षात्” वसुदेवके भवनमें आप साक्षात् प्रकट होंगे ऐसा दर्शाया होनेसे यह नाम भी मूल रूप ही है। भगवान् ने मायाको आज्ञा करी उसके बाद “आविवेशांश भागेन्” ऐसा कहा अर्थात् स्वयं तो वसुदेवके नंदन भी हुए, ऐसे भावी अर्थका भान किया और “स बिभ्रत पौरुषं धाम” वह वसुदेव पुरुष संबंधी भगवत्संबंधवाले परमधाम दिव्य तेजको धारण करने लगे। इस श्लोकमें श्रीवसुदेवको अत्यंत आनंददायिनी लोकोत्तर दिव्य शोभा प्राप्त होनेका कहा। इसीलिए नंदन, आनंद करनेवाले यह नामका अर्थ हुआ और वसुदेव शुद्ध सत्त्व स्वरूप हैं। शुद्ध सत्त्व गुण भी भगवान् के आधारभूत अलौकिक नित्य रहा हुआ गुण है। उसका विस्तार करके ही आप प्रकट होते हैं। जिससे वसुदेवको आनंद करवाना भी नित्य मूलभूत है, यह ज्ञापन किया। ऐसा नहीं हो तो प्रकट होनेसे पहले उनको आनंद करवानेका नहीं कहते। अतएव श्रीवसुदेवको आनंदका दान भी नित्य मूलभूत ही है, ऐसा सिद्ध हुआ ॥५॥

अवतारके कारणका कथन करनेवाले नाम बताते हैं:—

भूमि—क्लेश—भार—हाराय नमः ॥६॥

भूमिके क्लेशरूप भारका हरण करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार ।

भूमि भगवान्की भक्त है, उसका क्लेश संताप साक्षात् पूर्ण स्वरूप प्रकट करके अपने चरणोंसे संबंध प्राप्त कराकर दूर किया। उसको शान्त करके श्रीनंदरायजीके आंगनमें रिंगण करके आपने उसके संतापको दूर किया, ये आगे दर्शायेंगे। भूमिके तापको दूर करनेवाला संकर्षणका अंश है और उस अंशसे भूमिके भारका हरण किया है॥६॥

पुण्य—श्रवण—कीर्तनाय नमः ॥७॥

पुण्यरूप जिनका श्रवण कीर्तन है, ऐसे प्रभुको प्रणाम।

पुण्यरूप अथवा पापको दूर करनेवाला जिनका श्रवण कीर्तन है। “गां पौरुषीं मे शृणुतामरा” वहांसे आरंभ कर भगवान्के वाक्योंको श्रवण करनेके बाद कीर्तन और ब्रह्माजीका देवों तथा भूमिके प्रति कथन तथा देवों और पृथ्वीका ब्रह्माजी द्वारा उन वाक्योंका श्रवण, फिर वापिस कीर्तन करना यह पूरा भूमिके भाग्यका अभिनंदन करना रूप है। श्रीसुबोधनीजीमें श्रीमदाचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि “भूमिः कृतार्था जाता” यह वृत्तान्त जानकर ही भूमि कृतार्थ हो गई। तो भी ब्रह्माजीने भूमिको वाणीके द्वारा बहुत प्रशंसाके वाक्य कहे। पृथ्वीपर भगवान्का आगमन पहले संभावित नहीं था, परन्तु अभी भगवान्का पधारना होगा, ऐसा ब्रह्माजीके आश्वासनसे निश्चित हुआ। इससे यह भूमिके भाग्यका अत्यंत महत्व है, वह अभिनन्दन करने योग्य है। यह आशय इस नाममें दर्शाया है॥७॥

ब्रह्माजी द्वारा देवोंको आज्ञा करके साक्षात् भगवान्ने भी श्रीवसुदेवके अंतरमें प्रवेश किया और उनके द्वारा श्रीदेवकीजीमें

भी प्रवेश किया। इस तात्पर्यका निरूपण करनेवाले नामका उपदेश करते हैं —

कलिमल—संहति—कलन—यशःपुञ्जायनमः ॥८॥

कलिरूप कंसके पापरूप स्वभावको अच्छे तरीकेसे हरना, जिनका यश समूह है, ऐसे प्रभुको प्रणाम।

भगवान्का प्रवेश हुआ, फिर कोई अलौकिक कांति श्रीवसुदेव देवकीजीमें प्रकट हुई। उस कांतिका दर्शन करते ही कंसको मारनेवाला प्रकट होगा, ऐसा ज्ञान हुआ, फिर विवेक उत्पन्न हुआ, और अपराध करनेका विचार निकाल दिया। यह “इति घोरतमाद् भावात्” इस श्लोकमें स्पष्ट समझाया है। जो कंस राजा प्रथम महादुष्ट स्वभाव वाला तो था ही, परंतु प्रभुके प्राकट्यका प्रत्यक्ष ज्ञान होते ही अपराध करनेसे निवृत्त हो गया। यही भगवान्का प्रभाव है।

कलिरूप कंसके पापरूप दुष्ट स्वभावको अच्छे तरीकेसे नाश करें, ऐसा जिनका यश समुदाय है, ऐसे मूलमें पुंज शब्द दिया, यह तो साधारण अर्थ है। उसके पहले भी आपने यश प्रकट किया है। ऐसे अनन्त असाधारण यशके पुंज प्रभुमें पूर्वसे ही चले आ रहे हैं, ऐसा ज्ञापन किया अथवा “संहति”का अर्थ समूह करके कलिरूप कंसके दुष्ट स्वभावके समूहको दूर करनेवाली। प्रथम वसुदेव और देवकीजीको कंसके द्वारा दिए क्लेशसे महान चिंता रही थी। लेकिन भगवान्का प्रवेश होते ही सर्व चिंता शांत हो गई ॥८॥

भक्ति—मार्ग—प्रवर्तकाय नमः ॥९॥

भक्तिमार्ग प्रवर्त करनेवाले श्रीकृष्णको नमन।

मथुरामें निवास करनेवाले सभी पूर्व कर्मोंमें व्यग्र रहनेवाले थे। उनके भगवदीय होनेसे उनका निरोध प्रभुमें हो उसके लिए निमित्तभूत कंस द्वारा उनकी कर्म व्यग्रता, कर्मके मोहको दूर किया। फलका दान करनेके लिए भक्तिमार्गका व्यवहार सभी न देखें ऐसे प्रकट हुए और शुद्ध सत्त्वात्मक उन दोनों वसुदेव—देवकीजीको आनंदका दान करके भक्तिमार्ग प्रकट किया। इससे प्रसन्न होकर वसुदेवजीने १०,००० गाय मनसे दान दीं। वो दोनों दम्पति माहात्म्यज्ञानपूर्वकसुदृढ़स्नेहमें आकुल, व्याकुल बन गये। इससे ही बोले कि “समुद्विजे भवद्धेतोः” आपके लिए हमको कंससे उद्वेग होता है। अपने बंधन और मरनेका विचार दूर करके प्रभुके कारण उद्वेग हुआ है, तो उनका प्रभुमें आत्मासे भी अधिक स्नेह है। वह रसमें अत्यंत निमग्न हो गए हैं और प्रभुको निवेदन करते हैं। प्रभुने इस आनन्द स्नेह रसका दान करके उन दोनोंमें उत्तमोत्तम भक्तिमार्गका प्रथम मंडन किया। ऐसा न किया होता तो उनके मुखमेंसे ऐसे वचन निकलने संभव नहीं होते और वसुदेवजी तो शुद्ध सत्त्वात्मक होनेसे भगवान्का ही आश्रय करनेवाले थे। प्रभुका दृढ़ आश्रय करनेवाले पुरुष भगवदीयजनको किसी भी दिन क्लेश या चिन्ता होनी ही नहीं चाहिए। फिर भी प्रभुने स्वयं ही उनको क्लेश और चिन्ता कराकर अपने स्वरूपानंदका दान किया एवं उनमें भक्तिमार्ग प्रकटाया है। “यस्याहमनुगृह्णामि” इस वाक्यानुसार निजजनोंको सर्वसे पृथक् करके प्रभु उनका अंगीकार करते हैं। इसीलिए भगवान्की इच्छासे उनको क्लेश चिन्ता वगैरह हुई। प्रभु प्रेममें निमग्न बन जाना तथा भक्तिमार्गका उदय होना आदि तभी हो सकता है। श्रीवसुदेव और देवकीजीके अंदर प्रवेश किया और

फिर उनका निरोध सिद्ध हुआ। वो मन, वचन और कायासे प्रभुमें लीन बने और उनमें भक्ति मार्गकी प्रवृत्ति होनेसे ऐसा नाम कहा गया है ॥६॥

भक्तिमार्गकी प्रवृत्ति करनेके बाद सभी भक्तोंको फल किस प्रकारका होगा? एक स्वरूपका होगा कि बहु स्वरूपका होगा? ऐसी शंका करके आगेका नाम कहते हैं—

भक्त—जन—कल्प—वृक्षाय नमः ॥१०॥

भक्तजनोंके कल्पवृक्ष स्वरूप प्रभुको नमस्कार।

भक्तजनोंके कल्पवृक्ष रूप। कल्पवृक्ष जैसे जिसकी जो आकांक्षा हो उसको पूर्ण करता है। उसी तरह जैसा भक्त, जिस तरीकेसे भगवान्का भजन करता है, उसी प्रकार उसको फलदान प्रभु करते हैं, यह भाव है। यह सर्व प्रकार गर्भ स्तुतिमें स्पष्ट दर्शाया हुआ है। उसका सूचन करनेवाला यह नाम है ॥१०॥

अब साक्षात् आविर्भाव समयके नामको दर्शाते हैं : —

देवकी—नन्दनाय नमः ॥११॥

श्रीदेवकी नंदनका वंदन।

अकस्मात् साक्षात् परमानंदके स्वरूपका प्राकट्य होते ही देवकीजीको परम आनंद प्राप्त हुआ है, “नन्दयतीति नंदन” आनंद दे वो नंदन कहलाता है। भगवान् देवकीजीको आनंद देनेवाले हुए। इस तरह “देवक्यां देवरूपिण्याम्” यह आविर्भाव समय श्लोकके कहे अनुसार देवकीजी सर्व देवतामय सर्वदेव स्वरूपिणी थे, इसलिए उनके प्राकट्यके प्रसंगमें सभी देवोंको

भी स्वतः सिद्ध ही आनंदका आवेश हो गया। इसीलिए इस नामकी योजना युक्ति युक्त ही है। “अथ सर्वगुणोपेतः” यहांसे आरंभ करके “प्राच्यां दिशीन्दुरिव” वहां तकके सन्दर्भमें द्योतक यह नाम मानना। इससे जैसे पूर्व दिशामें चन्द्रमाका प्राकट्य हुआ, उसी तरह देवकीजीमें श्रीपुरुषोत्तमका प्राकट्य हुआ है। चन्द्रमा रात्रीमें तारोंको आनंददायी होता है, उसी तरह यह श्रीकृष्णचन्द्र स्त्रीजनोंमें आनंददायी होंगे, ऐसे भी सूचन किया। इसीलिए देवकी पद रखनेमें आया है। यह मूलरूप ही है और इनके ही अवतार रूप हैं, इसीसे जो कार्य सिद्ध करने हैं उस अंशसे अवतार होते हैं। इस प्रकार यह नाम देवकीजीमें प्रद्युम्नांश है। यह समझानेवाला है, तथा बाललीलाके अन्तर्गत ही है ऐसा सूचन करनेवाला है। इसीलिए पुत्रपनेको दर्शानेवाला ‘नंदन’ पद भी दिया हुआ है। श्रीसुबोधिनीजीमें “जायमाने जनार्दने” इस श्लोकके विवरणमें अनिरुद्ध अंशसे धर्मका रक्षण करते हैं, संकर्षण अंशसे ज्ञान द्वारा मुक्तिका दान करते हैं और प्रद्युम्न अंशसे श्रीदेवकीजीमें प्रकट होकर भक्तिमार्ग प्रकटाते हैं। इस तरीकेसे तीन अवतारोंसे तीन कार्य सिद्ध करवानेके तीन व्यूहके तीन अवतार हैं।॥११॥

तदानुसार सकलकला परिपूर्ण सच्चिदानंद स्वरूप भगवान् देवकीजीके और वसुदेव जीके आगे अकस्मात् प्रादुर्भाव हुये। ऐसा आगे आश्चर्य पानेका वर्णन आता है, यह दर्शानेवाले नामका कथन करते हैं :—

वसुदेव—देवकी—पुण्यपुञ्ज—फलाय नमः॥१२॥

श्रीवसुदेव तथा देवकीजीके पुण्यके पुंजराशिके फलरूप
वासुदेवको नमन ।

श्रीवसुदेव देवकीजीके पुण्योंके पुंज समूह फलरूप प्रभु हैं । पुण्य पदसे भाग्य भी समझा जाता है । भाग्य बिना ऐसा फल प्राप्त ही नहीं होता । उनके पुण्यपुंजके अथवा तो भाग्यराशिके फलरूप ही आप प्रकट हुए हैं । भाग्य और पुण्यके बहुत कालसे संचित हुए समूहके समूह जब होते हैं, तभी उसके फलरूप प्रभु प्रकट होते हैं, अन्यथा नहीं । साधारण पुण्योंसे ऐसा परम लाभ नहीं होता है । ऐसा कहकर फलका अलौकिकपना दर्शाया । कार्य और कारण एक जातिके ही हों ऐसा स्वभाविक नियम है । इसीलिए भाग्य और फल यहां अलौकिक ही कहे । पूर्वजन्ममें इन दोनों जनोंने अत्यंत तपका आचरण किया था, वह तप भी साधन कहलाया, ऐसे साधनोंसे प्रभु असाध्य हैं, अर्थात् आपके अलौकिक फलरूप होनेमें मूल इच्छा ही कारण है; वरदान दिया और तप भी अलौकिक है इसीसे भाग्यनिधि भी अलौकिक और उससे उत्पन्न हुआ फल भी सर्वथा अलौकिक है, यह आशय है । अथवा श्रीवसुदेव शुद्ध सत्त्वात्मक भगवान्‌के आविर्भाव स्थानरूप उसी तरह शुद्ध सत्त्वात्मकपनेसे प्रकट हुए । श्रीदेवकीजी सर्व देवतामयी विष्णुरूपा, ऐसे दोनोंके भाग्य समुदाय पुण्य पुंजोंका संयोग प्राप्त होकर प्रभुका प्राकट्य हुआ, इसीलिए पुंज पद रखनेमें आया है । उनकी भाग्यनिधि तथा पुण्यनिधिका निरूपण किया । जो कि सर्वके कार्यके लिए भगवान्‌का आविर्भाव हुआ है, तो भी प्रादुर्भाव स्थान रूप तो यह दोनों ही हैं । इसीलिए उनके भाग्य राशिके फलस्वरूप ऐसा कहनेमें आया है । आगे बाललीलाका अनुभव भी उनको हुआ है । यह “ऐतावन्ति

दिनान्यासन्” वगैरह कंस वधके बादके श्लोकमें कथन करा है।।१२।।

भगवान् जबकि सर्व अलौकिक धर्मके सहित ही प्रकट हुए हैं, फिर भी उन मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिए हैं। इनको धारण करके निरंतर अलौकिक धर्मका प्रत्यक्ष प्राकट्य करें, तो भक्तोंकी ऐसे माहात्म्य रूप ज्ञानसे मुक्ति हो जाए। लेकिन भक्तिमार्गकी रीतिके अनुसार स्वरूपका अनुभव नहीं होगा। इसीलिए भगवान् ने भक्तजनोंमें माहात्म्य ज्ञान होते हुए भी उनमें लौकिक भाव ही दृढ़ करा है। इसीलिए उस प्रकारके नामको दर्शाते हैं:-

देवकी-मनः-प्रमोद-जनकाय नमः।।१३।।

श्रीदेवकीजीके मनको प्रमोद करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

अभी तक देवकीजी परम आनंद प्राप्त करके आश्चर्य रसमें ही निमग्न बनकर स्थित हो गये थे। उसके बाद ऐसे पुत्रमें पुत्र बुद्धि ही हुई माहात्म्य बुद्धि नहीं रही, और “यह मेरा पुत्र” ऐसे स्नेह रसमें सराबोर हो गई। “जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यात्” वगैरह श्लोकसे प्रार्थना करने लगे। भगवान् भी अपना अलौकिक स्वरूप दर्शाके उनके आशय अनुसार लौकिक बालक बन गए। जिनका नाल भी छिदाया नहीं ऐसे प्राकृत शिशुरूप प्रभुको देखकर देवकीजीके मनमें बहुत प्रमोद हुआ। अलौकिक धर्म होते हुए भी उनको प्रकट रखनेमें आये तो वह गुप्त रख नहीं सकते। रूपान्तर हो तो ही अन्यत्र स्थापन कर सके। कंसराजाके करे उपद्रवसे संकट उत्पन्न होनेसे देवकीजीको भय लगा। वो भय दूर होनेसे मनमें पुत्र वात्सल्य रूप धर्म प्रकट होते ही उनके मनमें प्रमोद प्रकट हुआ, उसका कारण स्वयं प्रभु ही हैं।।१३।।

साक्षात् भगवान् प्रकट हुए तो तत्त्वबुद्धि क्यों नहीं हुई?
इस शंकाका निरूपण करते हुए कहते हैं कि :—

ब्रह्मादि—भक्त—वाक्य—परिपालकाय नमः ॥१४॥

ब्रह्मादि भक्तोंकी वाणीका पालन करनेवाले कृष्णको
नमस्कार ।

वसुदेव और देवकीजीको पूर्वजन्ममें ब्रह्माजीने प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा करी। तब इन्होंने अत्यंत तप किया। भगवद्रूप होकर तप किया, उससे भगवान् प्रसन्न हुए। तो भी प्रजा उत्पत्तिकी आज्ञा करी होनेसे कामनासे तप किया है, अर्थात् भगवद् स्वरूपका ज्ञान नहीं होनेसे परम सौन्दर्य युक्त प्रभुको निरखके उन्होंने ऐसे सुतको ही वरदानमें मांगा, तब भगवान् तीन बार पुत्र रूपसे प्रकटे। प्रथम प्रश्निगर्भ, फिर वामन और इस समय देवकीनंदन हुए। अब ब्रह्मन् अंशसे सृष्टिको उत्पन्न करेंगे। इस रीतिसे ब्रह्माजीकी आज्ञाका परिपालन किया अथवा ब्रह्मादिक प्रजासर्ग करने रूप वाक्यका परिपालन करनेवाले ऐसा कहकर लौकिक भाव ही उत्पन्न किया, भगवद्भाव नहीं। इसीलिए “मोहितो मम मायया” मेरी मायासे मोह पाये हुए ऐसा कहा। अथवा ब्रह्मादि देवोंने प्रार्थना करी तब “अहं प्रादुर्भविष्यामि” मैं प्रकट होऊंगा, ऐसे प्रथम जो वाक्य कहे थे, उनका परिपालन करनेवाले सत्य प्रतिज्ञावान भगवान्के लिए ही गोपीगीतमें “विखनसार्थितो विश्वगुप्तये” ब्रह्माजीने प्रार्थना करी तब विश्वका संरक्षण करनेके लिए आप उदय हुये ऐसा श्रीमद्गोपांगनायें गान करती हैं। केवल ब्रह्माजीके वाक्यका पालन किया ऐसा नहीं, परन्तु सर्वभक्तोंको दान करनेका भी जो वचन दिया है, उन सबका भी पालन

करनेवाले ऐसा आगे आदि शब्द और “परि” उपसर्गसे ज्ञापन करते हैं। ऐसा होते हुए मुख्य रूपसे तो जिनका निरोध अपनेमें सिद्ध हुआ है, ऐसे जनोंको आनंदका दान करनेके लिए अविर्भाव हुए, और इसीलिए अलौकिक वेदातीत सदानंद स्वरूपवान होते हुए भी लौकिक बालक बनकर ब्रजमें रमण किया। यहां पर साक्षात् पूर्ण स्वरूपका प्राकट्य हुआ। फिर वैसे स्वरूपके आनंदसे उस अद्भुत स्वरूपका अवलोकन करना, वगैरह “तमद्भुतं” इत्यादि श्लोकोंके नामोंका कथन करना उचित है, फिर भी उनका त्याग करके प्रथम “बभूव प्राकृत शिशुः” इस श्लोकके भावको सूचन करनेवाला नाम, कैसे कहा ? उसका प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं, “पुरुषोत्तमस्तु नन्दगृहे एव” पुरुषोत्तमका प्राकट्य तो नंदरायजीके घरमें ही हुआ है, ऐसी सुबोधिनीजीमें आज्ञा करी है। इस वाक्यसे लीलास्थ भक्तजनोंके लिए प्रधान रूपसे प्रभुका प्राकट्य श्रीनंदरायजीके गृहमें ही है, परंतु वहां हुआ प्राकट्य मायाके आवरण सहित है। लीलास्थ भक्तोंकी तरह राजस सात्विक भक्तोंका निरोध करना चाहिए। इसीलिए श्रीवसुदेव देवकीजीके गृहमें तो मायाके आवरणको दूर करके प्रकट हुए। यह कार्य अभी करना शक्य नहीं, यह विचार कर ऐसे अद्भुत स्वरूपका तिरोधान कर लोकवेदसे अतीत सदानंद स्वरूप प्रकट करके वह ब्रजमें पधारे। इसीलिए अभी ऐसे कार्य कारणके अभावसे अद्भुत बालकके भावका सूचन करनेवाला नाम नहीं कहकर प्रथम प्राकृत भावको सूचन करनेवाला नाम कहा — शिशु, और भगवान्ने प्रथम मुग्धभावको दर्शाकर भक्तोंमें लौकिकभावकी स्थापना कर लीला नहीं करी। इसीलिए वो लीलायें बाललीलाके अन्तर्गत नहीं हो सकीं। इससे प्रथम अद्भुत

लीलाका कथन नहीं करके प्रथम प्राकृत शिशुकी लीला कही है। ऐसा होते हुए भी पूतनादि मारणके प्रसंगमें माहात्म्यका ज्ञान करानेवाले नाम बाललीलामें जताए हैं। प्रौढ़लीलामें तो माहात्म्यका ज्ञानपूर्वक ही स्नेह दृढ़ करवाना है। इसीसे वहां मात्र उन ही नामोंको कहनेमें आया है। ११४।।

मथुरामेंसे निकलते समय मायाका कार्य वृष्टि तथा मेघ गर्जना वगैरह हुआ उससे वसुदेव जी खिन्न हुए हैं। उनके खेदको दूर करने 'शेषोऽन्वगात्' इस श्लोकमें सूचन करनेवाले नामको बताते हैं:—

शेषादि—भक्त—सेवित—चरणाय नमः। ११५।।

शेषादिक भक्तोंके द्वारा सेवित होते हैं चरण जिनके, ऐसे बालमुकुन्दका वंदन।

आदि पदसे शेष माया अर्थात् सभीको व्यामोह करानेवाली वृष्टि और गर्जना हुई। जिससे सब ही लोग जाग्रत नहीं हुए। क्योंकि ज्यादा वृष्टि और ज्यादा गर्जना हो तो ही लोग जाग्रत होते हैं, प्रभुको गुप्त कार्य करवाना था। इसलिए प्रभु इच्छासे ही मंद वृष्टि और मंद गर्जना हुई। प्रभुकी सेवा करनेके हेतुसे ही हुई तो उसे सर्पराज शेषके अलावा सभी का अभाव था, यहां आदि शब्द व्यर्थ जाय। इसीलिए शेषजीके साथ माया, वृष्टि, गर्जना भी थे। शेष तो शैया रूपसे भगवान्‌के निरंतर सेवक ही हैं। उसी प्रकार माया भी प्रभुके कार्यको साधनेवाली दासी रूप ही है, अर्थात् सभीने मिलके प्रभुके चरणोंकी सेवा करी, यह योग्य ही कहा। वृष्टि वगैरह कार्य प्रथम हुआ है, फिर शेषजीका आगमन है, परंतु वृष्टि आदि वसुदेवको दुःखदायक होनेसे वह गौण है और शेष उनका निवारण

करनेवाले होनेसे सुखरूप हैं, इसीसे यह मुख्य हैं। इसीलिए प्रथम शेषका ग्रहण करके शेषादि ऐसा कहते हैं। इस अनुसार शेषराजका निरोध निरूपण करनेमें आया है। प्रभुका प्राकट्य भी निरोधके लिए ही है ॥१५॥

श्रीयमुनाके तटके निकट प्रभु सहित वसुदेवजी आये, उनका निरोध सूचन करनेवाला नाम बताते हैं:—

कालिन्दी—वेग—हर्त्रे नमः ॥१६॥

कालिन्दीके वेगका हरण करनेवाले श्रीबालकृष्णको प्रणाम।

कालिन्दीका वेग दो प्रकारका है। एक स्वभाव सिद्ध वेग “भयानकावर्त” इस श्लोकके विवरणमें गंभीर भयानक अगाध जलसमूहका वेग वायुके कारण तरंगों सहित फेन वगैरह कालकृत वेगके दोष हैं। भयानकपना सैकड़ों लहरोंसे व्यग्रता होना वगैरह स्वभाविक दोष हैं। तदानुसार क्रूर और दुष्ट होते हुए भी भयसे श्रीकृष्णको मार्ग देते हैं। अथवा आगे अनेक गोपीजन रूप लक्ष्मीयोंके साथ मेरे जलमें क्रीड़ा करेंगे, ऐसा समझ सन्तोष प्राप्त करके भी मार्ग दिया। इसीलिए यहां कालिन्दीके वेगका हरण करनेवाले ऐसा कहते हैं। इस प्रकार उभय वेगरूप दोषको दूर करके बादमें उसको अपनी प्रीतिवाली बनाते हैं। ऐसा करनेका कारण है कि यह कलियुगका खण्डन करनेवाली, क्लेशमात्रका हरण करनेवाली सूर्यकी पुत्री हैं। वह ही कालकृत और स्वभाव बुद्धि वेगोंके त्रिविध दोषोंसे ग्रस्त हो तो यह योग्य नहीं है। ऐसी करुणा लाकर उसके प्रवाह स्वरूपको छुड़ाकर अपने सन्मुख कर दिया। इसीलिए यहां श्रीयमुना ऐसा मूल पद नहीं रखकर

कालिन्दी पद रखा। कालिन्दीके वेगसे उत्पन्न हुए त्रिविध दोषोंका प्रभुने हरण किया। उसके बाद वह दोष रहित, निर्दुष्ट श्रीयमुना स्वरूपसे भगवत्प्रीति पात्र बनी; कालिन्दीके स्वभावकी विजय प्रभुने करी, तबसे पितृधर्मवान अर्थात् पिताकी तरह कलिके दोषोंको दूर करनेवाली धर्मको प्राप्त हुई। इसीलिए ही कलिन्द पुत्री कालिन्दी ऐसा पितृनामको सार्थक करनेवाली हुई. अतएव पिताके नामका निर्देश कर यहां कालिन्दी शब्दका प्रयोग किया।

इसी कारण प्रवाहस्थ जीव भी पूर्व स्वभावको त्यागकर उत्तम स्वभाववान होकर भगवान्‌के सम्मुख होते हैं, और प्रभु उनके अन्य दोष भी दूर करके उनको उत्तम स्वभाववान बनाकर शरणमें ग्रहण करते हैं। यह भाव भी प्रकट होता है. तथा कालिन्दी पदसे अन्य आशय भी स्फुरित हैं। कलि अर्थात् भगवान्‌के साथका कलह है, अथवा तो भक्तजनोंका परस्पर कलह है, उस कलहका खण्डन करें ऐसी कालिन्दी श्रीयमुनाजी। कलह तो भगवान्‌का आविर्भाव होनेके बाद उनके संयोगमें उनके साथ है। उस कलहके खण्डन रूप धर्म कैसे सिद्ध हों? इस चिन्तासे उत्पन्न हुए, उस कालिन्दीके वेगका हरण करनेवाले भगवान्‌का प्रादुर्भाव हुआ। उनसे संयोग होगा और कलह भी होगा, उसी तरह कलहको दूर करनेके धर्म भी सिद्ध होंगे ही, इसीलिए संतोषपूर्वक मार्ग दिया ऐसा सुबोधिनीजीमें दर्शाया गया है। इस तरह सर्वकी गति भगवान्‌ होनेसे मार्गदाता तो वह ही हैं, फिर भी भगवान्‌को भी मार्ग देनेवाली ऐसा कहकर कालिन्दीका अत्यंत ही उत्कर्ष दर्शाया है॥१६॥

उसके बाद मार्गकी तरह नदी उतरी तो गोकुलमें गए।
इसके सूचक नामका कथन करते हैं:—

योग—मायाधिपतये नमः ॥१७॥

योगमायाके अधिपतिको नमस्कार।

भक्तोंको योग प्राप्त करवानेके लिए जो अंतरंग माया प्रकट करी उसके अधिपति अध्यापक अध्यक्ष स्वयं ही हैं, अर्थात् आपकी आज्ञाका कार्य मायाने किया। यशोदाजीमें अपना प्राकट्य कर सबको मोह उपजाया और प्रभु उनके अधिपति हैं। इसीलिए ही उनकी आज्ञासे अन्य काशी वगैरह तीर्थोंमें वह माया गई है, ऐसा जताया है ॥१७॥

यशोदाजीके शयनमें स्थापन करनेके बाद गोकुलपति रूपसे प्रकट हुए। उस नामका निर्देश करते हैं :—

गोकुलपतये नमः ॥१८॥ गोकुलके पतिको नमन।

सम्पूर्ण गोकुलके राजा नंद अभी तक पुत्रहीन ही थे। परंतु अब पुत्र होनेसे यह पुत्र आगे गोकुलका पति होगा। सर्वथा पतित्व धर्म तो भगवान्में ही शोभा पाता है। इसलिए पति पद रखा, ऐसा करनेसे सम्पूर्ण गोकुलको अपना ही परिग्रह रूप भगवान्ने अंगीकार किया है, ऐसा जताया। आगे ऊपर “मन्नाथं मत्परिग्रहम्” मैं जिसका नाथ हूं, मैं जिसके आत्मीय रूपमें रहा हुआ है, ऐसे ब्रजका रक्षण करना आवश्यक है। इस तरहसे ही भागवतमें बताया है। सर्व गोकुलके पति होनेसे पतिकी तरह सर्वका परिपालन करनेवाले प्रभु ही हैं ॥१८॥

पतित्व धर्म प्रकट किया वह नाम बताते हैं :-

गोपीजन-वल्लभाय नमः ॥१९॥

गोपीजनोंको अत्यंत प्रिय प्रभुको प्रणाम ।

गोपीजनोंको वल्लभ परम प्रिय अथवा गोपीजन जिसको परम प्रिय हैं, ऐसे परस्परकी परमप्रियता दर्शाकर उन दोनोंमें परम रसात्मक आनन्द स्वरूपका ही अन्योन्य आविर्भाव हुआ, ऐसा सूचन किया । जैसे बहुत कालमें मिले हुए प्रिय और प्रियाको आनन्द प्रकट होता है, ऐसे यहां भी श्रीकृष्ण और गोपीजनोंको परस्पर आनंद प्रकट हुआ है ॥१९॥

प्रकट हुए आनंदसे स्वयं उत्सवरूप हुए वह नाम सूचन करते हैं :-

गोकुलोत्सवाय नमः ॥२०॥

गोकुलके उत्सवरूप श्रीगोकुलेश्वरको नमस्कार ।

समग्र गोकुलके उत्सवरूप, अथवा सर्व गोकुलमें उत्सवरूप. क्योंकि उस समय सर्व निवास करनेवालोंके मनमें परम आनंददायी महोत्सव हुआ था, कारण कि आपका प्रभाव ही ऐसा है । अथवा गोकुलका उत्सव जिनको है, ऐसा कहकर भक्तोंका अवलोकन कर भगवान्को भी महान आनंद रूप महोत्सव हुआ है । ऐसा स्पष्ट किया. इसलिए सर्व जनोंके आगे वहां भूषण अलंकारादि पहन कर आना हुआ ऐसा कहा गया है । इस अनुसार "नन्दस्त्वात्मज" इस श्लोकसे आरंभ कर "नवनीतैश्च चिक्षुषु" इस श्लोक पर्यन्त उत्सवके आनंदको प्रकाश करनेवाला यह नाम है ॥२०॥

दान महोत्सवका सूचक नाम कहते हैं :-

अखिलाशा—पूरकाय नमः ॥२१॥

सर्वकी आशाको पूर्ण करनेवाले नंदनंदनका वंदन।

कितने विद्वान ब्राह्मणों, कितने याचकों, सूत मागध बंदीजनों, कितने स्त्रीजन श्रीनंदरायजीके घर पुत्रका जन्म हुआ है, तो हम आज अभिलाषा पूर्ण करेंगे, ऐसी आशा रखनेवाले थे। भक्तोंको तो प्रभु प्रकट हों यही आशा थी। ऐसे सर्वकी भिन्न भिन्न आशाओंको स्वयं प्रकट होकर पूर्ण किया। ऐसा होते हुए नंदरायजी भी महान मनवाले जिसको जैसी आशा थी, उसको वैसा दान देने लगे। इस रीतिसे नंदरायजी द्वारा उनकी आशाओंको पूर्ण करनेवाले प्रभु हैं। भक्तोंकी आशाओंको स्वयं साक्षात् प्रकट होकर पूर्ण करेंगे, ऐसा कहकर आशापूरक धर्म, प्रभुका निरूपण किया और “अद्यावन्त विचित्राणि” इस वाक्यसे वाजिंत्रोंके नादसे सर्व दिशाओंमें अपनी कीर्ति पूर कर भगवान्का आविर्भाव हुआ। ऐसा आशा पदसे प्रकट किया। ऐसा कहकर असुरोंके सिवाय सर्वको आनंद हुआ यह सिद्ध किया ॥२१॥

यशोदाजीकी भी आशा पूर्ण करी यह कहते हैं:-

यशोदा स्तनन्धयाय नमः ॥२२॥

श्रीयशोदाजीके स्तनपान करनेवाले, प्रभुका वंदन।

श्रीयशोदाजीको सदा सर्वदा यही दुःख था कि मुझे कब पुत्र हो? कब अपने पुत्रको मैं लालन पालन कर स्तनपान

कराऊं? “यच्च दुःखं यशोदायाः” जो दुःख यशोदाजीको था, वह दुःख मुझे कभी हो। ऐसा निरोधलक्षण ग्रंथमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं। वहां यशोदाजीके दुःखको दर्शाया है। वह दुःख अभी प्रभुके प्राकट्यसे नष्ट हुआ। नालछेदन हुआ, फिर स्नान कर माताके पालनेमें स्थापन हुए पुत्र अपने आप स्तनपानकी आकांक्षा रखते हैं। माता भी स्वयं ही स्तनपान कराती है। इसका द्योतक यह नाम है। परंतु यह आशापूरक करनेवाला होनेसे इस प्रकरणमें इसको रखनेमें आया है॥२२॥

इस प्रकार नंदरायजीकी भी आशापूर्ण करी इस आशयको दर्शाने वाले नामका निर्देश करते हैं:—

नन्द—मनो—मोदकाय नमः॥२३॥

नंदरायजीके मनको आनंद देनेवाले नंदनंदनका वंदन।

श्रीनंदरायजीको भी पुत्र उत्पन्न होनेकी आशाके कई मनोरथ हुए थे, वह सर्व पूर्ण हुये। मेरा अहोभाग्य है कि मुझे ऐसा पुत्र हुआ। सौभाग्य दिवस देखनेका प्रसंग आया, ऐसे बहुत आनंदसे प्रभुके लिए उत्तमोत्तम वस्तु लानेके लिए स्वयं मथुरा पधारे। इसीलिए ही “भगवदर्थमुत्तमवस्तूनामानयनार्थं मथुरां गतवान्” भगवान्को रमण करवानेके लिए उत्तम वस्तु लानेके लिए मथुरामें नंदरायजी गये, ऐसा श्रीसुबोधिनीजीमें उपदेश है॥२३॥

पूतनान्तकाय नमः॥२४॥

अविद्या रूप पूतनाका नाश करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

भगवान् भक्तोंको आनंदका दान करने और अपनेमें उनका निरोध सिद्ध करनेके लिए प्रकट हुए हैं। आनंद दान और निरोध यह दोनों पंचपर्वा अविद्याका नाश हुए बिना अशक्य है, असंभावित है। ऐसा निश्चय कर प्रथम अविद्या रूप पूतना मारी, इसलिए श्रीसुबोधिनीजीमें आज्ञा करते हैं “अविद्या पूतना नष्टा, अतः परम् निरोधः सुगमः” अविद्या पूतना नष्ट हुई, उसके बाद उनका निरोध सुगम रीतिसे सिद्ध होगा। इस पूतनाके निमित्तसे ब्रजमें बसते अनेक बालकोंकी भी रक्षा करी, इसीलिए कहा है कि “एकं भगवतः कार्यं बह्वर्थानां च साधकम्” भगवान्का एक कार्य भी बहुत अर्थोंका साधक होता है। अवस्थान्तरमें हो सके ऐसा कार्य आपने बाल्यावस्थामें कर अलौकिकपना दर्शाया तो भी मुग्धभावसे ही, बालभावसे ही कार्यकर सर्वमें अपने संबंधमें बालभाव, लौकिक भाव ही स्थापन किया। उनमें अलौकिक भाव उत्पन्न नहीं कर केवल बाललीलाकी ही चेष्टा दृष्टिमें आई, वैसा ही भाव कायम करा।।२४।।

मुग्धभाव ही सिद्ध किया, तो फिर पूतना मारनेका भाव और उसको मुक्तिका दान कैसे संभव है? इस शंकाका निवारणरूप नाम कहते हैं :-

सुकृतज्ञाय नमः।।२५।।

सुंदर कर्तव्यको जाननेवाले गोकुलेशको नमन।

सुन्दर अथवा अत्यन्त कर्त्तव्यको समझनेवाले यह सब “गाढं कराभ्यां भगवान्” इस श्लोकमें भगवान् पदसे ही निरूपण किया है। यह स्वयं प्रभु स्वतन्त्र होनेसे सर्व कार्य करनेमें समर्थ होनेसे स्त्रीको मारनेमें उनको दोष नहीं है। स्वयंवीर्यवान् ईश्वर हैं अर्थात् उसको मारनेका सामर्थ्य रखते हैं। यशस्वी हैं, जिससे अलौकिक चरित्र करते हैं। श्री युक्त हैं, जिससे दूसरे प्रकारसे उसको नहीं मारते। ज्ञानवान् हैं, जिससे दोष जानकर भी उसको मारना आवश्यक मानते हैं। वैराग्यवान् हैं, जिससे दैत्यपक्षकी पूतनाका वध करनेमें दोष नहीं है, यह समझते हैं। ऊपर जताए हुए षड्ऐश्वर्यके गुणोंको धारण करनेवाले भगवान् धर्मी रूप हैं, जिससे उसको मोक्षका भी दान करें यह युक्त ही है, अथवा पूतनाके सुकृत्यको भी वह स्वयं ही जानते हैं। यह पूतना समस्त ब्रजके बालकोंका भक्षण करनेवाली है। इस समय यह भगवान् हैं इसीलिए उनका भक्षण कर जाऊँ ऐसा उसको भगवद्भाव हुआ है। ऐसे भावसे भक्षण करनेमें तत्पर हुई थी। यह उसका परम सुकृत्य है। इस सुकृत्यके महापुण्यको प्रभु जानते हैं। इसीलिए उसको मुक्ति देते हैं। भगवद्बुद्धिसे ग्रहण करनेमें बालकोंका अन्तरमें प्रवेश हुआ फिर भी उनमें आसुरभावका प्रवेश नहीं हुआ। यह भी उसका सुकृत्य ही है, परम पुण्य ही है। यह आप जाननेवाले होनेसे मोक्ष दिया। ऐसा होनेसे भगवद्सम्बन्ध हो तो भी भगवान् स्वकीय फलका दान करते हैं, ऐसा भाव रहा हुआ है। वैसे पूतना भगवान्के भ्रमसे बालकोंका भक्षण करती अर्थात् मेरे लिए इन ब्रजके बालकोंने आसुर संबंध प्राप्त किया, जिससे उन बालक संबंधी सुकृत्यको भी आप समझते हैं। इसीलिए उसके प्राण द्वारा अपने अंदर प्रवेश कराकर उनको हृदयमें

धारण किया और पूतनाको मुक्ति दी। यह सर्व आशय भी इस नाममें रहे हुये हैं।।२५।।

पूतनामोक्षदात्रे नमः।।२६।।

पूतनाको मोक्षका दान करनेवाले बालकृष्णको नमस्कार।

अविद्या दूर कर भक्तोंका निरोध किया उसका सूचन करनेवाला नाम कहते हैं:—

भक्त—मनो—रोधकाय नमः।।२७।।

भक्तजनोंके मनका निरोध करने वाले प्रभुको प्रणाम।

इतने दिनों तक हम असावधान थे। इसीलिए पूतना घरमें प्रवेश कर बालकोंके पास आ पहुँची। अब सावधान रहना चाहिए। ऐसा सर्वजनोंने भगवान्में निष्ठाकर अपना चित्त प्रभुमें स्थिर किया। इस प्रकार भक्तोंके मनका निरोध हुआ। अतएव भक्तोंके मनका निरोध करनेवाले प्रभु ऐसा निरूपण किया।।२७।।

पूतनाको मारा फिर उसके स्वरूपको देख तथा शब्दको सुनकर सभी भयभीत हो गए। परंतु भगवान् तो उसके हृदयके ऊपर निर्भय होकर क्रीड़ा कर रहे थे, अर्थात् अपनेसे श्रेष्ठ यह निर्भय बालक है, ऐसा सर्वजन देखने लगे। इस आशयको स्पष्ट करनेवाला नाम कहते हैं :—

गोकुलाभयदान—चरित्राय नमः।।२८।।

गोकुलको अभयदान देनेवाला जिनका चरित्र है ऐसे प्रभुको नमस्कार।

पूतनाके हृदयके ऊपर क्रीड़ा करके अपना अभयपना दिखाया, इससे सर्व गोकुलको भी आजसे अभय है, ऐसा सर्वको निश्चय हुआ। भयकारक प्रसंग आ पहुंचे तो भी वह नष्ट ही होगा, ऐसा तबसे सर्वको निश्चय होने से उनका भय सर्वथा नष्ट हो गया॥२८॥

भगवान् निरोधका दान करनेके लिए पधारे हैं। जब प्रपंचमें आसक्ति हो तब निरोध सिद्ध नहीं होता, इसीलिए प्रभुने उनके प्रपंचकी निवृत्ति करी है। इसका सूचन करता नाम बताते हैं:—

भक्त—प्रपञ्च विस्मारकाय नमः॥२९॥

भक्तको प्रपंचका विस्मरण करानेवाले प्रभुका वंदन।

पूतनाके वक्षःस्थलमें विराजमान भगवान्को उठाकर स्नान अभिषेक वस्त्र अलंकार वगैरह पहराकर अभ्युदय सूचक विधान, विघ्न दूर हो; ऐसी विधि यशोदाजी करने लगीं और उनके उत्सवमें तल्लीन बन गईं। उनको भगवान्में विशेष आसक्ति हुई, प्रपंचको भूलने लगीं इस प्रकरणका सूचन करनेवाला यह नाम है॥२९॥

फिर बालकको निद्रा प्राप्त हुई। उनको पोढ़ाया। उसके बाद उत्सवमें आये हुए लोगोंका सम्मान करनेमें यशोदाजी वगैरह प्रभुको भूल गये, लौकिकमें आसक्त हो गये। उसी तरह

दूसरे अभ्यागत ब्राह्मणोंके स्वागत करनेमें व्यस्त हो गये, और उस दान वस्तुको ग्रहण करनेमें ब्राह्मण भी आसक्त हुए। उनको भी भगवद् विचार नहीं हुआ। ऐसे सर्वकी बहिर्मुखता हो गई। 'संजात निद्राक्षम्' इस श्लोकमें यह जताया है। ऐसे भगवान्की ज्ञानशक्तिका तिरोधान होते ही परमार्थ दृष्टि तिरोभूत हो गई, ऐसा होनेसे बहिर्मुखता आ जाए तो यह सहज ही है। जब प्रभु साक्षात् स्वयं विराजमान हों तो भी उनको त्यागकर अन्यत्र आसक्ति हो यह तो अत्यंत ही अयुक्त माना जाता है। इस कारण उस आसक्तिको भी प्रभुने दूर किया ऐसा नाम दर्शाते हैं:—

शकट—भेदन—बाल—चरित्राय नमः ॥३०॥

शकटको तोड़ने रूप बालचरित्र जिनका है, ऐसे बालकृष्णको नमन।

जब सभी जनोंको लौकिकमें आसक्त हुए देखा, तब ये मेरे होते हुए भी लोकमें आसक्त हैं। ऐसा जानकर आपने रुदन नहीं किया क्योंकि ऐसे कार्य सिद्ध नहीं होगा, ऐसा मान कर स्तनपानकी इच्छा कर शकटको ही उल्टा फेंक दिया। भगवान्के ऊपर अन्य रस स्थापन करने योग्य नहीं, शक्य नहीं, ऐसा करनेसे बहिर्मुखता होती है। ऐसा करना प्रभुकी इच्छा नहीं है। अतएव आपने किसीको भी बहिर्मुखता नहीं हो, ऐसा विचार कर सर्व रसोंको गिरा दिया। छायामें शकटके नीचे पौढ़े हुए प्रभु अन्य रसोंसे प्राप्त बहिर्मुखता और उसकी छायाको भी अंगीकार नहीं करते। यह सिद्ध करनेके लिए शकटको गिराया। उनके लौकिक रसोंका नाश किया। यह एक प्रकारका उत्पात हुआ। ऐसा मानकर भयके कारण प्रभुमें

निष्ठा करने लगे। इन दोनों नामोंसे प्रपंचकी विस्मृति कराकर भक्तोंका निरोध सिद्ध किया है। “लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे”;
“लोकार्थी चेत् भजेत् कृष्णम्”; प्रभु लौकिकमें तथा वैदिक मर्यादामें निजजनोंका स्वास्थ्य नहीं करते। प्रभु तो जो लौकिकका सेवन करने वाले हैं, उनके लोकका सर्वथा नाश ही करते हैं। महाप्रभुजीके वाक्यानुसार यहां भी भगवान्ने सर्व भक्तजनोंके लौकिक रसोंको दूर कर अपने भगवद्‌रसमें निष्ठावाला किया। अपनी स्वरूपासक्तिका दान दिया। पूर्वमें पूतना रूपी अविद्याका नाश कर रक्षा करके वाणीका विनियोग वाचिक निरोध अपनेमें सिद्ध किया। इस प्रकार वाचिक और कायिक निरोध प्रभुमें सिद्ध हुआ॥३०॥

अब मानसिक निरोध सिद्ध किया यह बताते हैं:—

तृणावर्त—विमर्दकाय नमः॥३१॥

तृणावर्त नामके दैत्यका मर्दन करनेवाले श्रीकृष्णको प्रणाम।

चक्रवात रूप तृणावर्त आया, तब अपने द्वारा ही स्थापन करे हुए स्थानमें प्रभुको ढूंढने पर प्राप्त नहीं होनेके कारण यशोदा वगैरह माताओंको मूर्छा प्राप्त होने तकका महा शोक हुआ। उनका मन प्रभुमें एक निष्ठावाला हो गया। यह उनके मनका निरोध है। आगे भी तृणावर्तको मारनेके बाद प्रभु प्राप्त होते ही “मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्” मृत्युके मुखमें से बच गए, उनको निरखके परम् आश्चर्य पाकर उनको सर्व प्रपंचकी विस्मृति हो गई। केवल भगवान्में आसक्ति होनेसे परम आनंद स्वरूपमें लीन हो गए। यह भी मनका निरोध हुआ। ऐसा

प्रभुका आश्चर्यकारक चरित्र इसमें सर्व नन्दादिक भी विचार करने लगे कि “अहो बतात्यद्भुतम्” अहो इस बालकको क्रूर राक्षस दूर ले गया फिर भी यह वापस आ गया। और हिंसक राक्षस अपने स्वयंके पापसे ही मृत्युको प्राप्त हुआ। यह कैसा अत्यन्त आश्चर्यकारक बना है। ऐसे आश्चर्य पाकर अपने पुत्रमें कृत्रिम भगवतत्त्वका ज्ञान हुआ॥३१॥

परन्तु जब तक भगवान्में असंभावना दूर नहीं होगी, तब तक उनमें दृढ़ आसक्ति भी नहीं होगी। इसीलिए असंभावनाकी निवृत्ति करनेके लिए आपके स्वरूपमें ही वैसे भगवत् स्वरूपमें दृढ़ आसक्ति हो, लेकिन भक्ति बिना साक्षात् भगवान्का गान नहीं कर सकते इसीलिए प्रथम भक्ति निरूपक नाम कहते हैं:—

भक्ति—स्वासक्ति—जनकाय नमः॥३२॥

भक्तिके द्वारा अपनेमें आसक्ति उत्पन्न करानेवाले कृष्णको नमस्कार।

एक समय पुत्रको स्नेहसे अपनी गोदीमें पधराकर परम सुन्दर स्मित हास्य सहित मनोहर मुखका लालन करते हुए श्रीयशोदा मोह पाकर प्रभुमें आसक्त हो गई। यहां भक्तिरूपसे अपनेमें स्नेहासक्ति श्रीयशोदाकी दर्शायी। भगवान् भक्ति रूपसे अपनेमें स्नेह प्रकट करते हैं। इसीलिए भक्ति यह प्रभुकी आसक्तिकी साधिका है, ऐसा सिद्ध होता है। इस नाममें यह निरूपण किया॥३२॥

भक्ति कहनेके बाद ज्ञानका निरूपण करनेके लिए उसको ज्ञापन करने वाला नाम कहते हैं:—

यशोदा—मोह—नाशकाय नमः ।।३३।।

यशोदाजीके मोहका नाश करनेवाले श्रीहरिको नमन ।

भक्ति होनेके बाद अपने मुख कमलमें अखिल ब्रह्माण्ड दिखाया। उसका दर्शन करते ही प्रपंचके आधार रूप स्वयं होनेसे ब्रह्मज्ञान भी उनको हुआ। जिससे प्रभुमें उनकी असंभावना बुद्धि थी, वह दूर हुई और मोह नाश हुआ। इस प्रकारका भावयुक्त यह नाम है।

यशोदामाताका स्नेह पुत्रके ऊपर स्वरूपसे जो कि अलौकिक था तो भी पहलेसे ही ऐसा लौकिक धर्मसे विरुद्ध स्नेह हो तो पुत्रमें अलौकिकत्व बुद्धि हो। यह पुत्रमें लौकिक विरुद्ध अलौकिक धर्मका दर्शन भयजनक होनेसे कभी विपरीत संभावना होते ही जीवन ही न टिक सके। इसीलिए ज्ञान संपादन कर, उन सबका तिरोभाव कर दिया, बादमें लौकिक अनुसार विस्मयता प्रकट कर लोकसिद्ध पुत्रत्व भावरूप स्नेह स्थापन किया, अथवा पुत्रके वैसे स्वरूपका दर्शन होनेसे विस्मय पाकर मोहित हो गई, इसीलिए ऐसे विस्मय जनक मोहको दूर कर पुत्र रूपके भावका स्थापन किया। इस रहस्यका सूचक यह नाम है ।।३३।।

नामकरण संस्कार समयका नाम दर्शाते हैं:—

रामानुजाय नमः ।।३४।। बलरामके छोटे भाईको नमन ।

श्रीभागवतमें “बालयोरनयोः संस्कारान्कर्तुमर्हिसि” तुम इन दोनों बालकोंका संस्कार करने योग्य हो ऐसा कहकर नंदरायजीको अपने पुत्र और वसुदेवके पुत्रमें कोई भेद नहीं

यह बताते हैं। कारण कि अत्यंत स्नेही जनोंका हृदय सरल और निर्मल होता है। उनका स्वभाव ही ऊंचे प्रकारका होता है। गर्गाचार्य भी नंदरायजीकी अभेद बुद्धि जानकर पहले बलरामका नामकरण करते हैं। ऐसा नहीं हो तो नंदरायजीके घर तो बड़े श्रीकृष्ण हैं, इसीलिए बलरामका प्रथम नामकरण नहीं करें, लेकिन अभेदभावके कारण ही ऐसा हुआ। राम पहले अपने घर आया हुआ है, इसीलिए राम बड़ा और श्रीकृष्णके पीछे प्रकट होकर पधारनेसे वह छोटा। जिससे रामके अनुज-छोटे भाई ऐसा कहा है।

अथवा पहले रामके पधारनेसे हमारा भाग्य खिला और इसी कारण श्रीकृष्ण प्रकटे। उनके चरण पड़नेसे ही हमारे यहां श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ। इसीलिए राम अग्रज पहले पधारे हुए हैं। उनका नामकरण पहले होना चाहिए। इसीलिए राम अग्रज बड़े भाई और श्रीकृष्ण ही छोटे भाई। इस प्रकार नंदरायजीका आशय समझकर यह रामानुज नामसे प्रभुका निरूपण करते हैं।

यहां निरोध कराकर अपनेमें आसक्ति उत्पन्न करवानी है, यह तो जब रसका स्थाई भाव होकर रस वृद्धिगत होगा तब ही बनेगा। तो अब श्रृंगार रसका स्थाई भाव रति है। रतिको बढ़ानेके लिए स्वरूप धर्म होना चाहिये जो कि राम हैं। इसीलिए 'रमयतीति रामः' रमण कराये, वह राम ऐसा कहकर रामका रतिवर्धकत्व प्रतिपादन किया। ऐसे रामके अनुज अर्थात् रतिवर्धक धर्मरूप रामके पीछे प्रकट हुए प्रभु। राम रूपसे रतिवर्धक स्वरूपसे सबके हृदयमें रतिको बढ़ाकर पहले अंतरमें प्रकट होते हैं। इसीलिए रामानुज ऐसा कहा।

अथवा राम ही वेदात्मक क्रियाशक्ति रूप हैं। इसको लक्ष्यमें रखकर ही आप प्रकट होते हैं। जहां वेदोक्त धर्म हो, वहां आप प्रकट होते हैं। इसीलिए आप लीलास्थल पर बलदेवजीको साथ में रखते हैं। उनको आगे कर ही आप सर्व लीला करते हैं। वहां भी बलदेवजीको साथमें रखा है, इसीलिए इस नामकी योजना करी है॥३४॥

उसके बाद भक्तजनोंके अन्तःकरणमें रतिको बढ़ाकर भाव रूपसे आप स्थित हुए इस भावको दर्शानेवाला नाम कहते हैं:—

कृष्णाय नमः ॥३५॥ श्रीकृष्णचन्द्रका वंदन हो।

भावात्मक आनंदकंद रसघन श्रीकृष्ण हैं, सदा सर्वदा आनंद रूपसे ही आप विराजमान हैं। स्वयंही निजजनोंके अन्तःकरणमें प्रकट होकर स्वरूपानंदका दान करते हैं, इसीलिए श्रीकृष्ण नामसे आपका मुख्य रूपसे व्यवहार होता है॥३५॥

वासुदेवाय नमः ॥३६॥ श्रीवासुदेवका अभिनंदन।

वासुदेव प्रभु मोक्षका दान करनेवाले हैं। प्रपंच विस्मृति होते ही भगवदासक्ति होनेसे स्वरूपानंदका अनुभव होता है। जिससे क्षण क्षण भक्तोंकी आपमें लयावस्था होती है। जिससे यह नाम कहा। “प्रागयं वसुदेवस्य” इस श्लोकमें पहले यह वसुदेवके पुत्र रूपसे प्रकट हुए ऐसा वासुदेव पदका अर्थ स्पष्ट दर्शाता यह नाम है॥३६॥

अनन्त—गुण—गभीराय नमः ॥३७॥

अनंत गुण होनेसे जिनको न जाना जा सके, ऐसे श्रीहरिको नमस्कार।

अनन्त गुणोंसे गंभीर कोईसे भी न समझे जा सकें, ऐसे अगाध। इसीलिए “बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि” प्रभुके नाम और स्वरूप अनन्त हैं, इनका पार नहीं पाया जा सके ऐसा। इस श्लोकके आशयका सूचन करनेवाला यह नाम है ॥३७॥

गुणोंकी गंभीरता बताकर अब रूपकी गंभीरता बताते हैं :-

अद्भुत—कर्मणे नमः ॥३८॥

जिनके अद्भुत कर्म हैं, ऐसे श्रीकृष्णको नमन।

जिनके बहुत ही आश्चर्यकारक कर्म हैं। जिससे जैसे गुण, जैसा रूप, वैसे कार्य एक निष्ठा रखकर चिंतन करना चाहिए, ऐसा करने वाले प्रभुका सूचन किया ॥३८॥

अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णका ज्ञान कैसे हो ? यह समझानेवाले नामका उपदेश करते हैं:-

गोकुल—चिन्तामणये नमः ॥३९॥

गोकुलमें चिन्तामणि रूप गोकुलेशको प्रणाम।

गोकुलमें चिन्तामणि अर्थात् जैसे चिन्तामणि चिन्ता करनेके साथ ही उस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति कराती है, और दुःखका नाश करती है। उसी तरह यह प्रभु रूप चिन्तामणि चिन्ता (विचार) करते ही इष्ट प्राप्त कराती है और दुःखका नाश करती है। ऐसा चिन्तामणिपना प्रभुने कहां बताया, यह दर्शाते हैं— पूतनाके पयका पान किया तो गोकुलके श्रेयके लिए उसके द्वारा पंचपर्व अविद्याका नाश किया, संसारात्मक शकटका भंग

किया, अविद्याके कार्यरूप और मोहात्मक तृणावर्तको मारा। इस तीनों दोषोंको दूर कर आगे विश्वरूपका दर्शन कराकर ज्ञान उत्पादन किया “एषः वः श्रेय आधास्यदग्रेपि करिष्यति” इस श्लोकके विवरणमें श्रीमदाचार्यचरणने ऊपरके अनुसार स्पष्ट दर्शाया है। इस रीतिसे गोकुलके श्रेय विधाता भगवान् चिंतामणि रूप हैं ॥३६॥

स्वरूप ज्ञानसे अनिष्टकी निवृत्ति होती है, ऐसा उपदेश कर इष्ट प्राप्तिके स्वरूपका कथन करते हैं:—

गोप—गोकुल—नन्दनाय नमः ॥४०॥

गोप, गोपीजनों और गोकुलको आनंद देनेवाले श्रीगोकुलेन्दुका वंदन।

गोप पदसे श्रीगोपीजन भी हैं। असलमें श्रीमद्गोपीजन गुप्त हैं, प्रियायें हैं। और गोकुल पदसे गोकुलमें निवास करनेवाले सर्वका सूचन किया है। ऐसे गोपीजन आदि सर्वको परमानंदका दान करनेवाले आप बिराजे हैं, यह निरूपण किया ॥४०॥

यह मुख्य नाम बताकर गोकुलमें बसते सर्व समूहके संकटोंका संहार किया। इस नामका सूचन करते हैं:—

भक्त—सर्व—दुःख—निवारकाय नमः ॥४१॥

भक्तोंके सर्व दुःखको दूर करनेवाले प्रभुका अभिवंदन।

भक्तोंके सर्व संकट हरे, और आगे भी हरेगे। भागवतमें गर्गाचार्यजीने कहा है “अनेन सर्व दुर्गाणि यूयमञ्जस्तरेष्वथ” श्रीकृष्णसे तुम सर्व संकटोंसे तर जाओगे। यह दुर्ग रूप

दुःखोंमें तुम्हारे अन्तःकरणके काम क्रोधादिक शत्रुओंका भी निश्चित ही नाश करेंगे। पूर्वमें इसने साधुजनोंका रक्षण करके दुष्ट डाकुओंका नाश किया था। यह तुम्हारा अवश्य ही रक्षण करेगा। इस आशयका सूचन करनेवाला यह नाम है॥४१॥

यह कर्मसूचक नामको कहकर गुणसूचक नाम कहते हैं:—

महानुभावाय नमः॥४२॥

महानुभाव भगवान्को नमस्कार।

महानुभाव अर्थात् महागुणवान् “ये एतस्मिन् महाभागाः” इस श्लोकमें गुणोंका महानुभावत्व प्रकट किया है कि जो महा भाग्यवान् मनुष्य प्रभुमें प्रीति करते हैं, उनके शत्रु तथा काम क्रोधाधिक दुराशय भी पराभव पैदा नहीं कर सकते ऐसी आपकी महानुभवता है। विशेष रीतिसे यह अंबरीषादिके चरित्रमें सुप्रसिद्ध है। यह बतानेवाला यह नाम है।

परंपरासे इन गुणोंका अनुभव कहा। साक्षात् स्वरूपके गुणोंका अनुभव कौन जाननेमें शक्तिमान् है? कारण कि वह अनंत है। उस अनन्ताके सूचक नामको बताते हैं:—

अचिन्त्यगुणकर्मणे नमः॥४३॥

चिंतन न कर सकें ऐसे अनन्त गुण और कर्म जिनके हैं, ऐसे श्रीहरिको नमस्कार।

नारायणाय नमः॥४४॥ श्रीनारायणको नमस्कार।

गर्गाचार्यजी कहते हैं कि “नारायण समो गुणे” यह तुम्हारा बालक गुणोंमें नारायण समान है। तीन प्रकारके

नारायण हैं— (१) अक्षर (२) पुरुष (३) पुरुष अन्तर्यामी। इन तीनों नारायणोंके गुणोंके द्वारा तीन नारायण समान प्रभु हैं, कर्म भी उनकी अपेक्षा आपके अधिक हैं। अनुभावादि माहात्म्य भी इन तीनोंसे विशेष हैं। नरसे उत्पन्न हुआ नार—जीव, यह जिनका अयन स्थान है। इन अक्षर पुरुष नारायणके पक्षमें जितने जीव सृष्टिमें हैं, उन सर्व भगवद्गुणोंका स्थान करनेवाला है। इतने गुणोंका स्थापन करनेके लिए उतने स्वरूप आप हुए। (द्वितीय पुरुष नारायणके संबंधके योग्य जीवोंका अंगीकार करवाकर अपनी समानता प्राप्त करवानेके स्वभाव को निवृत्त—निवारण करने वाले अनुभाववान गुणोंको कहनेमें आया)। तृतीय पुरुष अन्तर्यामी नारायण जीवके सर्व कार्योंको प्रेरणा करनेवाला है। इसीलिए वहां भक्ति उत्पन्न करनेवाले असाधारण गुण बताए। ऐसे तीनों नारायणोंके तीनों प्रकारके गुण भगवान् श्रीकृष्णमें रहे हुए हैं और वो गिने न जा सकें ऐसे अगणित अनंत हैं। इसीलिए गुणोंसे यह नारायण समान ऐसा कहा और वह अनेक धर्मरूपसे अर्थात् श्री शोभामें, सौभाग्यमें, कीर्तिमें महानुभावपनेमें भी नारायण समान है। पहले कहे हुए नारायण भी ब्रह्माण्डसे परे हैं। ब्रह्माण्डमें भी ऐसे नारायण तीन हैं। एक बैकुण्ठमें, लक्ष्मी सहित नारायण, दूसरे सूर्यमण्डलमें सर्व वेद सहित विराजमान नारायण और पृथ्वीपर सर्व ब्राह्मणोंमें यज्ञनारायण रहे हुए हैं। ऐसे सर्व जगत् जननी अक्षरानन्द रूपी सर्व शोभा मात्रके निधानरूप लक्ष्मीजी सब जगत् जनकत्व परमानन्दपना और सबसे अधिक शोभा 'व्यापि वैकुण्ठ'में रहे नारायण करते हैं। उसी तरह श्रीकृष्ण भी ब्रजसीमंतिनी श्रीगोपीजननोंको परम आनन्दपना सर्वाधिक शोभा वगैरह करते हैं, वह श्रीगुण है। उसी तरह कीर्ति सूर्यमें रही

हुई है। कारण कि वह सर्व शीतलता, अंधकार, अज्ञान आदि दुःखोंका नाश करता है। उसी तरह भगवान् भी सर्व भक्तोंके जन्मोंके अज्ञान आदि अनेक दुःखोंका निवारण कर सुख देकर अपनी कीर्तिका स्थापन करते हैं। सूर्यकी तरह भागवतादिकमें आप प्रकाश युक्त रहे हुए हैं, यह कीर्तिगुण है। जैसे यज्ञनारायण आधिदैविक रूपसे सर्वदा कार्य सिद्ध करते हैं, दूर रहकर अपना माहात्म्य दर्शाते हैं वैसे महानुभावी भगवान् भी अपना माहात्म्य अनुभाव दर्शा रहे हैं, यह उनका अनुभावी गुण हैं। ६ नारायण स्वरूप से ६ गुणोंके साथसे समानता निरूपण कर श्रीकृष्णके धर्मरूपका निरूपण किया है। इसीलिए परम निधान रूप यह श्रीकृष्ण हैं। उनका सावधानतासे प्रपंचको भुलाकर रक्षण करो, ऐसा गर्गाचार्य मुनिने कहा। इस हार्द्रको दर्शानेवाला यह नाम है ॥४४॥

इस प्रकार निरोध कर्ता रूपमें उत्सव संबंधी नामोंका निर्देश कर बैठे हुये श्रीबालकृष्णका थोड़ा थोड़ा चलना होता है, ऐसी लीलाका नाम कहते हैं:—

ब्रजांगण—रिंगण—जानु—चरणारविन्दाय

नमः ॥४५॥

ब्रजके आंगनमें रिंगण करनेवाले ऐसे घुटने और चरणारविन्द जिनके हैं, ऐसे ब्रजेश्वरको नमन।

ब्रजांगणमें श्रीयशोदाजीके आंगनमें, रिंगण—अल्पगतिवाला रमण जिसका है, ऐसे घुटने और चरणारविन्द जिनके हैं, ऐसे श्रीकृष्ण। “जानुभ्यां सह पाणिभ्याम्” इस मूल श्लोकके सम्बन्धका यह नाम है। मूलमें राम और केशवके पद हैं, जिससे रमण कराने वाले, रतिकी वृद्धि करनेवाले और अत्यंत

सुंदर ऐसे ये युगल बालक हैं, यह द्योतन करते हैं। उनके चरणारविंद पदसे भी चरण कमलकी अत्यंत कोमलता और मनोहरताका सूचन करते हैं। यह प्रभुका ब्रजके आंगनमें रिंगण सर्व रीतिसे अतीव रमणीय है। उसमें भी बीच बीचमें अल्प गतिसे चलने वाले, कोई समय भूमिमें सोते सोते ही गति करते, कोई समय उठके गति करते आदि। अनेक विध स्वरूप हास्य करते क्षणमें बिराजे हुए, क्षणमें चलायमान होते प्रभुका रमण यशोदाजी आदिको अत्यंत प्रिय लगता था। इस प्रकार पहले गतिका निरूपण किया।।४५।।

आगे गतिका ज्ञापन करनेवाले नाम बताते हैं:-

ब्रज-पंकांग-लेपनाय नमः।।४६।।

ब्रजके पंकका लेपन जिनके अंगमें हैं, ऐसे ब्रजके वल्लभका अभिनन्दन ।

श्रीअंगमें ब्रजके पंकका कर्दम-कीचका लेपन जिनको हुआ है। ऐसे आंगनमें खेलते बालकके अंगमें पंकका लेपन हुआ, निरखके इस लोकमें सर्वको ही आनंद होता है। अत्यंत शोभाजनक लगते हैं। बालकके निर्दोष रमणको निहार कर लौकिकमें भी किसको आनंद नहीं होता? तो फिर इन अलौकिक बालकोंके सम्बन्धसे पंकका अंगराग प्राप्त होकर अलौकिक शोभा, दिव्य आनंद प्रकट हो इसमें क्या आश्चर्य? अरे कर्दमकी भी अलौकिकता सिद्ध हो गयी तो उनके सम्बन्धसे अन्यके दोष दूर होकर अलौकिक बनें इसमें क्या संदेह? परन्तु भगवत्सम्बन्ध तो हर प्रकारसे अपेक्षणीय ही है। वह संबंध हुये बिना, ब्रह्मसंबन्ध हुए बिना ऐसा नहीं होगा, यह निर्विवाद ही है। इस नामसे “तावंग्रियुग्मम्” से आरंभ कर

“मुग्धस्मिताल्पदशनम्” यहां तक जितने गतिके विलास, जितने मोहक माधुर्य विलासादिक सहित स्वरूप सभीका निरूपण करा समझना। इन दोनों नामोंसे बैठे बैठे अल्पगतिवाले प्रथम चलना, फिर आलस्यसे आगे बढ़ना आदि, सहित चलना चलाना तथा माताके साथ कई प्रकारकी चलनेकी क्रिया वगैरह विविधलीलाओंका निरूपण हुआ है।।४६।।

इतने चरित्रोंसे भक्तोंका निरोध सिद्ध हुआ या नहीं? ऐसी परीक्षा करनेके लिए आगेके लीलारूप चरित्र करे हैं। उनका सूचन करनेवाला नाम कहते हैं:-

भक्त-परीक्षा-परिपालकाय नमः।।४७।।

भक्तोंकी परीक्षाका परिपालन करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

उनको निरोध सिद्ध हुआ कि नहीं इस रीतिसे भक्तोंकी परीक्षाका सर्व रीतिसे पालन करनेवाले, रक्षण करनेवाले, उस प्रकारकी लीलाओंसे वैसा भाव उत्पन्न कर स्वयं ही उनका पालन करनेवाले हैं। इस नाममें भक्तोंका तथा माताओंका निरोध बताया है। इसमें “यर्हङ्गने” इस मूल श्लोकमें स्त्रीयों और “श्रृंग्यग्निदंष्ट्री” इस श्लोकमें माताओंका निरोध दर्शाया। स्त्रीयां कौतुकाविष्ट, रसाविष्ट और कामाविष्ट ऐसी तीन प्रकारकी हैं। कौतुकाविष्ट स्त्रीयां प्रभुके दर्शन मात्रमें ही निष्ठा रखनेवाली हैं। रसाविष्ट स्त्रीयां प्रियके दर्शन, कटाक्ष, स्पर्श आदिसे रसावेश पाकर स्थिति करनेवाली हैं। कामाविष्ट स्त्रीजन एकाकी प्रियतम पधारे हुए हैं, यह जानकर उनमें ही रसाविष्ट हो गई हैं। प्रभुने ऐसी त्रिविध स्त्रीजनोंका निरोध अपने स्वरूप द्वारा करा है। उनकी परीक्षाका पालन भी आपने ही करा है। इसी तरह माताओंकी तथा मातृभावकी परीक्षा “न

तज्जनन्यौ शेकात” उनकी मातायें उसका निवारण करने में शक्तिमान न हुईं, यह मूलके अनुसार स्वयं ही करा है। इसीलिए सर्व समुदायवाचक यह नाम कहा है।

अथवा भक्तजनोंका परीक्षण—चारों तरफसे अवलोकन करना। यह भक्त अनुरक्त स्त्रीजन सर्व समक्ष कुछ भी करनेमें अशक्तिमान हैं। इसीलिए एकान्तमें समयका अवलोकन ही करा करते हैं। उनका परिपालन करनेवाले अर्थात् उनको आकर्षित करनेके निमित्तसे एकान्त कर उनके मनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेवाले यह भी भाव है। “यर्हङ्गना दर्शनीय कुमार लीला” इस पदमें ब्रजांगनाजनोंको दर्शन करने योग्य कोटि कंदर्प लावण्य स्वरूपके दर्शनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेका स्पष्ट सूचन किया है॥४७॥

ब्रजहीरमणये नमः॥४८॥ ब्रजके हीरामणी रूप श्रीकृष्णको नमन।

हीरेकी मुख्य मणियोंमें गिनती होती है। सम्पूर्ण ब्रजमंडल भूषण रूप है। वह ब्रजभूषण ब्रजरूप अलंकारके हीरामणि रूप प्रभु हैं। अलंकारके मध्यमें रहा हुआ, मणि उसमें मुख्य होता है। उसी तरह सर्व ब्रजमें प्रभु मुख्य नायक हैं, अथवा सर्व ब्रजके शिरोमणि हैं। उसमें भी समस्त ब्रजके बालकों में मुख्य विराजमान सभीको प्रकाश करनेवाले आप प्रकट हुए हैं। “ततश्च भगवान्कृष्णो वयस्यैर्ब्रजबालकैः” उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपने समान वयके मित्ररूप बालकोंके साथ बलराम सहित ब्रजांगनाओंको आनंद उत्पन्न कर क्रीड़ा करते थे। इस मूल श्लोकके भावको प्रकट करनेवाला यह नाम है॥४८॥

राजकुमारता दर्शाकर उच्छृंखल चरित्र दर्शानेवाले नामको कहते हैं:—

गोकुल—धूर्त—चरित्राय नमः ॥४६॥

गोकुलमें धूर्तवत् चरित्र जिनका है, ऐसे श्रीहरिको नमस्कार ।

गोकुलमें धूर्तके जैसा जिनका चरित्र है। “वत्सान मुञ्चन्” यहांसे आरम्भ कर “एवं धार्ष्ट्यानी” यहां पर्यन्त बछड़ोंको समय बिना छोड़ देना, घरके बालकोंको जागृत करना, माखन चोरी कर बंदरोंको खिला देना, वगैरह प्रभुके अत्यंत चरित्र एक धूर्तके करे जैसे लगते हैं, पर स्वरूपसे धूर्त नहीं हैं। उनका चरित्र भी धूर्त नहीं है, परंतु धूर्तवत् भासमान होते हैं। धूर्त किसीको ठगता है तो उसमें दुःख होता है। पर प्रभुके चरित्रसे सबको आनंद ही प्रकट होता है। इसीलिए यह धूर्तवत् चरित्र दिखते हैं, वास्तविक रीतिसे देखें तो आनन्दरूप होकर भक्तजनोंको अपनेमें निरोध सिद्ध करवानेके लिए हैं ॥४६॥

इस प्रकार धूर्त चरित्र उपरान्त उलाहना देने आई हुई गोपीजन प्रभुके श्रीमुखका अवलोकन करते ही सर्व उलाहनेकी बात भूल जाती हैं और मनमें रंजन पाने लगती हैं। ऐसे हार्दवाला नाम सूचित करते हैं:—

भक्त—वशीकरण—चरित्राय नमः ॥५०॥

भक्तोंको वशमें करें ऐसे चरित्र करनेवाले ब्रजराज कुमारको प्रणाम ।

सुंदर चरित्रोंसे कुमारावस्थाके चापल्यसे भक्तोंके मनका रंजन कर नंदकुमार उनको अपने आधीन बना लेते हैं, ऐसा कर उनके मनका निरोध करते हैं।।५०।।

अपने घरके द्रव्यकी हानि होते हुए भी वो उनको वशमें करनेवाला कैसे हो सकता है? यह दर्शानेवाला नाम कहते हैं :-

नवनीत—लवाहाराय नमः।।५१।।

नवनीतके लेशका भक्षण करनेवालेका वंदन।

“स्तेयं स्वाद्वत्ती” यह मूलके आशय अनुसार चोरी करे हुए माखनमेंसे थोड़ा जो अत्यंत स्वादिष्ट होता है, उसका ही भोजन करनेवाले हैं। जो गोपीजन नवनीत आदि तैयार कर जब भगवान् पधारेंगे तब कुछ दूंगी! ऐसा विचार कर घरमें रखती हैं, उसका किंचित नवनीत आप अंगीकार करते हैं और जो गोपीजन माखन तैयार करके कामकाजके लिये बाहर जाती हैं, उनका नवनीत आप अंगीकार नहीं करते, परंतु सब बंदरोंको भक्षण करा देते हैं। जिनका थोड़ा नवनीत आप स्वीकार करते हैं वे कृतार्थ हो जाते हैं परन्तु दूसरोंको हानि नहीं होती। संतोष पानेसे प्रभुके वशमें हो जाते हैं। इससे आपका प्रथम कहा हुआ वशीकरण भी सहज सिद्ध होता है। श्रीयशोदामाताके पास जाकर उलाहना देती हैं। यह तो मात्र ऊपरका दिखावा ही है।

नवनीत प्रभुको बहुत प्रिय है, क्योंकि यह कोमल और रसरूप है। प्रभुको जो प्रिय हो वह थोड़े में थोड़ा भी अर्पण करनेमें आये तो फलदाता होता है। ऐसा गोपीजनोंके मनका भाव है। अथवा नवनीतमें रस रूपता होनेसे वह स्नेहरूप ही

है। मेरे नवनीत स्नेहका लेश भी प्रभु अंगीकार करें तो मैं कृतार्थ हो जाऊं। ऐसा भी गोपांगनाओंका आशय सिद्ध होता है। धूर्त चरित्रसे भी सबको संतोष होता है, स्नेह कम नहीं होता। यह उनके स्नेहकी परीक्षा है। और स्नेहसे ही नवनीतका स्वाद लेते परमानंदको प्राप्त होकर वह वशीभूत बन जाती हैं। यह वशीकरण रूप है, ऐसा ऊपरके दोनों नामोंका सुंदर भाव है।।५१।।

जहां स्नेहकी उत्पत्ति होती है, वहां प्रभुमें प्रीति होती है। इसका सूचक नाम कहते हैं:—

दधि—दूध—प्रियाय नमः।।५२।।

दही और दूध जिनकों प्रिय हैं, ऐसे कृष्णको नमस्कार। दूधको ताप देकर क्लेश देनेमें आता है। दहीको मंथन कर देनेमें क्लेश होता है। यह दोनों दूध और दही प्रभुके लिए क्लेश प्राप्त करते हैं। यह उनमें असाधारण धर्म रहा हुआ है। इसलिए यह भगवान्को बहुत प्रिय लगते हैं। ऐसा होनेसे मेरे धूर्तपनेसे भी भक्तोंका स्नेह जो मेरेमें स्थिर रहेगा, तो वो भी मेरे प्रीतिपात्र बनेंगे। इस आशयसे प्रभुने चोरी आदि धूर्तवत् कार्य किये हैं। दूधका विकार रूपान्तर दही है। उसको इस नाममें पहले रखकर बादमें दूध रखा है। इससे विकारमय स्थितिमें भी मेरेमें स्नेह प्रकट हो, तो भी मुझे प्रिय बनते हैं, ऐसा सूचन किया।।५२।।

जिनका उलाहना भी निरोधको साधनेवाला है। इसका ज्ञापन करनेवाला नाम दर्शाते हैं:—

क्षीर—कणावलीढ—मुखारविन्दाय नमः ॥५३॥

दूधके बिंदुओंका आस्वाद करनेवाले होनेसे उससे युक्त जिनका मुखारविन्द है, ऐसे प्रभुको नमन ।

बालक दूधका पान करे तब मुखके ऊपर दूधके बिंदु देखनेमें आते हैं । प्रभुके मुखारविन्दके ऊपर भी दूधका आस्वाद लेते बिंदु देखनेमें आते हैं । दूधपान चोरीसे चुपचाप करते हैं तो भी दूधवाला मुख प्रत्यक्ष देखनेमें आते हुए भी जैसे कुछ ना किया हो ऐसे साधुकी तरह समीपमें खड़े रहते हैं । “सुप्रतीकोयमास्ते” इस श्लोकके आशयका यह नाम है ।

अथवा क्षीरबिंदुओंके द्वारा जिनके मुखारविन्दका आस्वाद लिया गया है । जो कि क्षीरका स्वाद भगवान्ने लिया है, तो भी उनके मुखारविन्दसे संबंध होकर उसका आस्वाद क्षीरको भी हुआ है । बिंदु रूपसे उसमें चोंट कर स्वयं उसका आस्वाद लेते हैं । इस भावका अत्यंत उद्दीपक यह नाम है ।

अथवा श्रीमुख ऊपर दुग्ध बिंदुओंके दर्शनसे ऐसा दर्शाते हैं कि भक्तजनोंको सर्वरस मुझे ही निवेदित करने चाहिये, मुझे ही पिलाना चाहिये । इस प्रकारका प्रभुका शोभा युक्त मुखारविन्दका अवलोकन करनेमें ऐसे प्रकारके भाव हृदयमें उभर आये और उससे वह भगवदीय प्रभुमें अनुरक्त तल्लीन बन जाते हैं । “श्रीमुखालोकिनीभिः” इस मूलमें वह सर्व गोपीजन प्रभुके श्रीमुखका दर्शन करने पधारे हैं, ना कि उलाहना देने, उलाहना देना तो ऊपरका मात्र दिखावा है ॥५३॥

मृत्तिका भक्षण किया वह नाम कहते हैं:-

मृत्स्नाभक्षण—भीत—यशोदा—ताडन—सन्त्रास

नयनारविन्दाय नमः ।।५४।।

माटीके भक्षणसे भयभीत हुए और यशोदाके डरसे त्रास गए हैं, नयनकमल जिनके, ऐसे श्रीकृष्णका अभिवंदन ।

“यशोदाभय सम्भ्रान्त प्रेक्षणाक्षम्” इस श्लोकके आशयको सूचित करता यह नाम है। स्वयं महापुरुष हैं, श्रीयशोदाजी ताड़न करें तो अपने स्वरूपमें रहे हुए अनन्त जीवोंको क्लेश होय। जिससे महापुरुषोंका द्रोह होनेसे उनको कदापि भविष्यमें होनेवाला ज्ञान नहीं होगा। ऐसा यशोदाजीके संबंधमें उनको भय था। प्रभुको तो कोईका भय है नहीं, परंतु यशोदाजी अपराधी होय तो वह ज्ञानकी अधिकारी नहीं होंगी। ऐसे भयसे ही मात्र त्रासपूर्वक देखना, जिनके नयनकमलमें रहा हुआ है। वास्तविक रीतिसे देखें तो भगवान्को भय भी नहीं और त्रास भी नहीं। भगवान्को भय और त्रास सहित ईक्षण कर ताड़न करवानेकी बुद्धि हर ली, और प्रश्न पूछनेकी प्रेरणा करी। इसीलिए यशोदाजीने माटी खानेका प्रश्न पूछा ऐसी श्रीसुबोधिनीजीमें आज्ञा करते हैं। माटीके भक्षणमें विह्वलताको सूचन करनेवाला यह नाम है।५४।।

माताके वाक्यको सुनकर मैंने माटी नहीं खाई, यह आपका कथन हुआ है। इस आशयको सूचन करता नाम दर्शाते हैं :-

सर्वविमोहकाय नमः ।५५।।

सर्वको विशेष मोह करानेवाले प्रभुका वंदन ।

भगवान् ने सत्य ही कहा है कि मैंने माटी नहीं खाई, तो भी उनके स्वरूपका ज्ञान नहीं हुआ। मैंने माटी खाई नहीं लेकिन इन बालकोंके लिए माटी खाई है। यह सभी मेरे संबंधमें मिथ्या भाषण करते हैं, ऐसा कहना सर्वथा सत्य है। भगवान् कोई भी वस्तुके भोक्ता नहीं होते। मैंने खाया या भोगा, यह प्रभुने नहीं वो तो निवेदनसे ही संतुष्ट होते हैं। “यस्य ब्रह्म च क्षत्रम् ‘अत्ता चराचर ग्रहणात्’ ‘भुक्ते विश्वभुक्’ इस श्रुतिसूत्रके वाक्य ब्रह्मको भोक्ता, अत्ता, भोगनेवाला, खानेवाला ऐसा प्रतिपादन करते हैं, लेकिन यह वाक्य अक्षरब्रह्म परत्व हैं। पुराण पुरुषोत्तम संबंधमें तो निवेदन ही मुख्य है। निवेदन करनेसे ही सर्व अंगीकार कर निजजनोंको प्रसादका निज अधरामृतका दान करते हैं। प्रभुके ऐसे ज्ञानका उनको स्फुरण कहाँ था? कारण कि आपने ही उनको विशेष मोहयुक्त कर दिया था॥५५॥

‘समक्ष पश्य मे मुखम्’ प्रत्यक्ष मेरे मुखमें देखों इस आशयका नाम निरूपण करते हैं:—

माहात्म्य—प्रदर्शकाय नमः॥५६॥

माहात्म्यको दर्शानेवाले भगवान् का वंदन।

निरोध सिद्ध करनेके लिए आपने सर्व चरित्र करे हैं। परंतु दुष्ट आशय आ जाय तो निरोध सिद्ध नहीं होगा। इसीलिए विश्वका दर्शन अपने मुखारविन्दमें करवाकर अपना माहात्म्य दर्शाया। इसीलिए यशोदाजीके चित्तमें उत्पन्न हुआ दोष माहात्म्य दर्शाकर दूर किया, ऐसा यह नाम सिद्ध करता है॥५६॥

ऐसा दर्शन कर जैसा ज्ञान हुआ उस नामको प्रकट करते हैं:—

परब्रह्मत्व—बोधकाय नमः ।।५७।।

परब्रह्मताका बोध करानेवाले भगवान्‌को नमस्कार ।

विश्वरूपका दर्शनकर बालक श्रीकृष्णके ऊपर परब्रह्मका भाव श्रीयशोदाजीको सिद्ध हुआ । माताको परब्रह्मपनेके बोधक स्वयं ही हुए हैं । उनको स्वतः ज्ञान नहीं हुआ, ऐसा नहीं माननेमें आये तो ज्ञान उत्पन्न होनेके बाद स्नेहका अंगीभूत मोह संभव नहीं होगा । माहात्म्यज्ञानपूर्वक स्नेह ही भक्ति है । ऐसा होनेसे माहात्म्य तो यथास्थित ज्ञानको ही माना जाता है, यह भाव है । भगवान्‌का प्रकट किया हुआ, माहात्म्य ज्ञान ही श्रेष्ठ है, यह ही सर्वोत्तम ज्ञान है । ऐसा ज्ञान स्वकीयको ही होता है, अन्यको प्रभुबल बिना प्राप्त हुआ ज्ञान परोक्ष ज्ञान है । यह विपरीत होनेसे अपनेमें ही आत्मपना अहं भाव उत्पन्न कराता है । पूर्वोक्त भगवद्‌कृपासे प्राप्त हुआ ज्ञान ही अत्यंत योग्य है । गीता में भगवान् ने “मय्यावेश्य मनो ये माम्” यहांसे आरम्भ कर “ये तु सर्वाणि कर्माणि” इस श्लोक तक स्पष्ट रीतिसे उपदेश किया है कि परोक्ष ज्ञानसे अव्यक्त ब्रह्म स्वरूपमें आसक्ति होते ही अधिकतर अत्यंत क्लेशका अवकाश है । परंतु जो मुझमें मन पिरोके निरंतर परम श्रद्धापूर्वक मेरी सेवा करता है, तो वो परम भक्तियोगवान कहलाता है । सर्व कर्म मुझे समर्पण कर मेरे परायण रहकर अनन्य भक्तियोगसे मेरा ध्यानकर मेरी सेवा करता है, उसका उद्धारकर्ता मैं होता हूं । ऐसी भगवत्सेवासे कृपा प्राप्त करके संपादन करा हुआ ज्ञान ही भगवद्‌भाव स्थिर करता है, परब्रह्मत्वका बोध—प्रकाश

आपने ही करा है। इस तात्पर्यको व्यक्त करता यह नाम है॥५७॥

भगवान्‌के ब्रह्मानन्दसे भजनानन्द महान है। इसीलिए भक्ति सिद्ध होनेके लिए ही यशोदाजीको परब्रह्मका ज्ञान करवाकर उनको पुनः मोहासक्त कर दिया, इस आशयको जतानेवाला नाम कहते हैं:—

सर्वजनीन—माहात्म्याय नमः॥५८॥

सर्वजनोंसे गान करनेमें आए ऐसा जिनका माहात्म्य है, ऐसे श्रीकृष्णको नमन।

“इत्थं विदिततत्त्वाया” यहांसे शुरू कर “हरिं सा मन्यतात्मज” इस श्लोक पर्यंतके तात्पर्यको दर्शानेवाला यह नाम है। ऋग्, यजुः और साम ये वेदत्रयी उपनिषद सांख्य योग शैव वैष्णव आदि सर्वजनोंने जिनका यशोगान गाया है। ऐसे माहात्म्यवान पुत्रको यशोदाजी मानने लगे। इसीलिए प्रभुने अपनी आधिदैविक रत्नेहमयी भक्तिभाववाली मायाका विचार कर उनको मोहासक्त करा यह सिद्ध हो जाता है॥५८॥

माताकी संसारासक्ति दूर करनेके लिए जो किया उस चरित्रको कहते हैं:—

दधि—भाण्ड—भेत्त्रे नमः॥५९॥

दहीके बर्तनोंको भंग करनेवाले भगवान्‌का वंदन।

प्रथम “क्षौमं वासः” इस श्लोकमें यशोदाजीकी महान संसारासक्तिका सूचन किया। उसका निवारण करनेके लिए स्तनपानकी कामना करके अपनेमें प्रीति हो, इस प्रकार किया।

दही बिलोनेवाले दण्डको पकड़कर निषेध करने लगे। अतएव श्रीयशोदाजी स्तनपान कराने लगे। उस समय मुखकमल निरखनेसे संसारासक्ति दूर हो गई पर उसी समय चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफनने लगा। अतएव अतृप्त प्रभुको छोड़कर दूध उतारने चली गई। इससे प्रभुको क्रोध हुआ। प्रथम दधिमंथनका कार्य त्याग करवाया पर यशोदाजीके इस कार्यको स्वीकार नहीं किया। अतएव क्रोधित हो दधिमंथनके पात्रको फोड़ डाला। “लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा” यहां महाप्रभुजीके वाक्यके अनुसार लौकिक आसक्ति विशेष रखे तो यह प्रभुको सहन नहीं होता, उसका लौकिक नष्ट करते हैं। ऐसे माताका लौकिक—दूधके करते भी जिसको जीवनकी तरह सम्हालके रखते उस ही वस्तु दधि आदिका नाश किया और दधिमंथन कर उत्पन्न हुआ नवनीत भी घरके अन्दर गुप्त रखतीं थीं अर्थात् सर्वथा माताको गृहमें ही आसक्ति है, आपके भजनमें ऐसी गृहासक्ति हो तो प्रभुको किस प्रकार सहन होगी? इसीलिए दधिमंथन भी छुड़ानेवाले ऐसे श्रीकृष्ण प्रभु॥५६॥

अतृप्त प्रभुको छोड़ गई यह प्रकट दोष हुआ है, तो भी उनका निरोध तो करना ही चाहिए। स्नेहका विनियोग प्रभुमें हो तो ही दोष दूर हो, इसीलिए घरके अन्दर प्रवेश कर स्नेहरूपी नवनीत खाया। इसका अनुसरता नाम दे रहें हैं:—

चौर्यविशंकितेक्षणाय नमः॥६०॥

चोरीके कर्मसे शंकायुक्त जिनके नेत्र हैं, ऐसे नवनीत प्रिय प्रभुको प्रणाम।

लोक दृष्टिमें भगवान्ने नवनीतकी चोरी करी है, ऐसा दिख रहा है। सहीमें देखें तो ऐसा नहीं है। चोरी तो मातृचरण

यशोदाजीने ही करी है। कारण कि प्रभुके ऊपर बहुत प्रीति करती हैं। ऐसा नवनीत जो स्नेह रूप है उसको भगवान् नहीं जानें इस तरह गुप्त रखा, उनको दिया नहीं। इसीलिए नवनीतका भक्षण कर माताके स्नेहको अपनी तरफ दौड़ाया। ऐसा करनेसे दोषकी निवृत्ति होते ही पुत्रको ऊखलके ऊपर चढ़ा देख कर माताको क्रोध उत्पन्न न हुआ, हास्य हुआ। तामसके आवेशसे संपादन करा हुआ नवनीत था, वह नहीं स्वीकार कर बंदरोंको दिया। इस रीतिसे माताके दोषको दूर करते हुए भी सर्वथा उनका दोष दूर नहीं हुआ। इसीलिए लौकिक दृष्टिसे प्रभुको शिक्षा करनेकी बुद्धि हुई। ऊखलके साथ बांधने लगीं परंतु बारंबार डोर दो अंगुल छोटा होने लगा। ऐसा कर भगवान् स्वयं बंधन रहित हैं, यह दर्शाया। इस रहस्यको स्फुट करता हुआ, यह नाम है ॥६०॥

मातासे स्वयंको बंधन करनेमें बहुत ही श्रम हुआ जानकर स्वयं ही कृपा कर बंध गए। इस तात्पर्यका कथन करते नामका उपदेश करते हैं:-

भक्ताधीनाय नमः ॥६१॥ भक्तके आधीन भगवान्को नमस्कार ।

प्रभुने स्वयं ही बंधन प्राप्त कर भक्ताधीनता दिखाई। यह नाम इस तत्त्वको प्रकट करनेवाला है ॥६१॥

दामोदराय नमः ॥६२॥

रस्सी जिनके उदरमें है, ऐसे श्रीदामोदरका वंदन ।

“एवं सन्दर्षिता ह्यंग हरिणा भक्तवश्यता” इस श्लोकमें दर्शाये अनुसार प्रभुने रस्सीसे बंधकर मैं भक्तके वशमें हूं यह दर्शाया है। सभीको बंधनसे छुड़ानेवाले होने पर भी अत्यंत कृपा कर स्वयं बंधन स्वीकार करते हैं। ऐसी कृपा शिव विरंचि, ब्रह्मादि देवोंने भी प्राप्त नहीं करी। वह यह गोपी प्राप्त करती हैं, यह उनका अहोभाग्य है। प्रभुको हुआ रस्सीका बंधन भी उनकी कीर्तिको बढ़ानेवाला ही बना, परम शोभा रूप हुआ। लोकमें दाम जिसके उदर पर है, ऐसे दामोदर भगवान्। इस नामसे उनका सर्वत्र यशोगान होने लगा ॥६२॥

प्रभुको आधीन कर यशोदाजी गृहकार्यमें व्यग्र हो गईं। उस दोषको दूर करनेके लिए आगेका चरित्र किया है। उस चरित्र दर्शक नामको कहते हैं:—

यमलार्जुन—भज्जनाय नमः ॥६३॥

यमलार्जुन नामके वृक्षोंको भंग करनेवाले भगवान्को नमन।

कुबेरके पुत्र गुह्यक संसाराक्त होकर मदाविष्ट हो गए थे। इस दोषसे उनको वृक्षपना मिला। उनके दोषोंको दूर करनेके लिए अपनी तरफ उनकी वृत्ति हो, निरोध सिद्ध हो, इसीलिए यह चरित्र किया। इस आशयको व्यक्त करता यह नाम है ॥६३॥

भगवान् भक्तोंका उद्धार करनेके लिए प्रकट हुए हैं। इसीलिए यह कार्य आपको करना पड़ा। उसी तरह भक्त

नारदकी वाणी पूर्ण करनी ही चाहिए तो उस अर्थका समर्थन करनेवाला नाम बताते हैं:—

भक्त वाक्य परिपूरकाय नमः ॥६४॥

भक्तके वाक्यको परिपूर्ण करनेवाले नंदकुमारको नमस्कार ।

भक्त श्रेष्ठ नारदजीने गुह्यकोंको शाप देकर वृक्ष बनाया और उनकी शाप मुक्ति प्रभुसे बतायी। इसीलिए अपने परमभक्त नारदकी वाणी आपको परिपूर्ण करनी ही चाहिए, ऐसा जानकर वृक्षोंको भंग किया और भक्तोंकी वाणीका पालन कर भक्ताधीनता बतायी ॥६४॥

कुबेरके पुत्रोंका उद्धार करा फिर कदाचित् उनकी स्थिति पूर्व जैसी ही रहे ऐसा संदेह हो। उसका निवारण करनेके लिए पूर्वावस्थाके अभावका सूचन करनेवाले नामका निर्देश करते हैं:—

भक्तिदात्रे नमः ॥६५॥ भक्तिका दान करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

‘वाणी गुणानुकथन’ इस मूल श्लोकके अनुसार यक्षोंने प्रभुसे प्रार्थना करी है — “हमारी वाणी आपका गुणानुवाद गानेवाली हो, कान आपकी कथामें तत्पर हों, प्रत्येक इन्द्रिय आपके ही कर्ममें तल्लीन हो। इसीलिए प्रभुने ‘संजातो मयि वामीप्सितः परमो भव’ मेरे विषे तुम्हारा भाव हो यह उनको आज्ञा कर, भक्तिका दान किया। इस भाव को स्पष्ट करता यह नाम है ॥६५॥

प्रथम यशोदाजीके बंधनमेंसे मुक्ति कही। यह बंधन भी अपनी इच्छासे ही प्राप्त किया है और बंधन मुक्त भी आप

स्वेच्छासे ही होते हैं। भगवान्‌को बंधन कैसे किया, यह होता ही नहीं। प्रभुको बंधनका सर्वथा अभाव ही है। यह दर्शाने वाला नाम बताते हैं:—

सर्वेश्वराय नमः ॥६६॥ सर्वके ईश्वर परमेश्वरका अभिवंदन।

सर्वके ईश्वर सामान्य रूपसे सर्वके नियंता, सर्वके प्रेरक प्रभु हैं; उसमें भी श्रीमद्‌गोकुलमें तो आप साक्षात् पधार कर वैसे चरित्र करनेके लिए वैसी प्रेरणा स्वयं ही करते हैं, अर्थात् आप को अन्यकृत बंधन हैं ही नहीं ॥६६॥

बंधन भी लोकवत् नहीं था, रूपात्मक था। अर्थात् आत्मासे आत्माका बंधन होता ही नहीं यह स्पष्ट करते हैं:—

सर्वाय नमः ॥६७॥ सर्वके ईश्वर—परमेश्वरका अभिनंदन।

सर्व स्वरूप प्रभु स्वयं ही हैं। इस न्यायसे दाम भी आप स्वयं ही हैं। इसीलिए किससे बंधन हो? 'कृपायासत्स्विबंधने' इस मूल वाक्यके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपनी कृपासे ही यशोदाजीके बंधको स्वीकार कर स्वयं ही मुक्त हुए हैं, क्योंकि स्वयं ही सर्वरूप हैं, सर्वके नियामक हैं ॥६७॥

श्रीनंदरायजीका निरोध भी करना ही चाहिए, ऐसा विचार कर उनको भी प्रेरणा करी। उनके द्वारा बंधन मुक्त हुए ऐसा नाम कहते हैं:—

नन्द—विमोचित—बन्धनाय नमः ॥६८॥

श्रीनंदरायजीने जिनको बंधन मुक्त किया है। ऐसे श्रीकृष्णको नमन।

कौनने ऐसा बंधन किया? किसका ऐसा कठोर कर्म? ऐसा पश्चाताप कर नंदरायजीने सत्त्वर प्रभुको बंधनमुक्त किया छुड़ा दिया, यह विपरीत देखनेमें आता है। भगवान् स्वयंसे प्राप्त करे हुए बंधनको स्वयं ही छोड़ सकते हैं, अन्य नहीं। नंदरायजीने अपने संसारका ही बंधन, मायाका बंधन मुक्त किया है।।६८।।

आगे चरित्रका विस्तार करनेके लिए अन्य गोपोंका भी निरोध सिद्ध करा हुआ है, ऐसा नाम कहते हैं:—

उपनन्दप्रियाय नमः।।६९।। उपनन्दको प्रिय प्रभुको प्रणाम।

उपनन्दगोप सर्व गोपोंमें वृद्ध थे। जैसे नंदरायजी उसी तरह उपनन्द भी महान प्रशस्त प्रसिद्ध थे। उनका भी प्रेम प्रभुमें अपूर्व था। इसीलिए वह गोकुलमें अनेक उत्पात होते देखकर “उत्थातव्यमितोरस्माभिः” इस श्लोकके कथन अनुसार गोकुलसे वृन्दावनमें जानेकी सलाह करने लगे। विशाल वनमें क्रीड़ा करनेके बाद वृन्दावनमें क्रीड़ा करनेकी आपकी इच्छा हुई। इसीलिए भगवान्ने ही उपनन्द गोपमें प्रेरणा करी। उनके द्वारा वृन्दावनमें प्रवेश करने लगे।।६९।।

वृन्दावनमें गमन करते समयका नाम दर्शाते हैं:—

मातुरुत्संग—गताय नमः।।७०।।

माताके उत्संगमें रहे हुए यशोदोत्संग लालितको नमस्कार।

गोकुलसे वृन्दावन तरफ जाते तथा “यशोदारोहिण्यौएकं शकटमास्थिते” इस श्लोकके अनुसार कृष्ण और बलरामको

उत्संगमें लेकर उनकी कथाको श्रवण करनेमें उत्सुक यशोदाजी और रोहिणी दोनों एक ही शकट—गाड़ामें बैठे हुए शोभा पा रहे थे। इस प्रसंगके अनुकूल यह नाम है।।७०।।

वहांसे आगे जाकर सामान्य लीलाका ज्ञापन करनेवाला नाम कहते हैं:—

वृन्दावन—क्रीडा—रताय नमः।।७१।।

वृन्दावनकी क्रीडामें रत आनंद देनेवाले वृन्दावन बिहारीका अभिनंदन।

“वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोरिहे” वृन्दावनको निहार कर आप श्रीकृष्ण और बलरामजीको उसके ऊपर उत्तम प्रीति होने लगी। इस आशयका यह नाम है।।७१।।

वृन्दावनकी लीलामें प्रथम वत्सचारण प्रसंग आता है। वह नाम कहते हैं:—

वत्स—वाट—चराय नमः।।७२।।

बछड़ोंको वाटमें, गोचरमें, चरानेवाले वत्सपाल प्रभुको प्रणाम।

जहां ब्रजमें बसनेवाले सभी माता पिता वगैरह देख सकें, ऐसे ब्रजकी समीपकी भूमिके मार्गमें यह वत्सचारण लीला करते थे। “अत्राविदूरे ब्रजभुवः” यहांसे आरम्भकर “चेरतुः प्राकृतौ यथा” इस श्लोक तककी सभी क्रीड़ाओंका अनुसंधान इस नाममें रहा हुआ है। जबकि यह क्रीडा बालकोंका रंजन करने, उनके दोषोंको दूर करनेके लिए करी हुई थी, फिर भी

ब्रजवासियोंके देखते हुए करी हुई होनेसे उनका भी निरोध करा है। इस आशयका यह नाम है।।७२।।

पालनीय पशुओंके दोषोंका विदारण करनेवाले नामका निरूपण करते हैं:-

वत्सासुर-हन्त्रे नमः।।७३।।

वत्सासुरका वध करनेवाले विभुका वंदन।

जो लौकिक जीव होय वो ही लौकिक पशुओंको चराये, भगवान् तो अलौकिक हैं। वह तो निर्दोष पशुओंको, निर्दोष जीवोंका ही पालन करते हैं। अर्थात् सभी बछड़ोंका जो आसुर भाव वह वत्सासुर दैत्य रूपसे हुआ था। उसका वध कर बछड़ोंके अन्तरमें रहे हुए आसुरभावको दूर किया है।।७३।।

अपने चरित्रसे बालकोंको प्रपंच रहित बनाकर उनके दंभ दोष रूप बकासुर, जिसकी दोनों चोंचें लोभ और असत्यरूप थीं, उसको मारा। इस नामका उल्लेख करते हैं:-

बक-विदारणाय नमः।।७४।।

बकासुरको मारनेवाले, बकके अरिको नमन।

इस प्रकार लौकिक और अलौकिक ऐसे उभय चरित्रका दर्शन कराकर उनकी महिमा जाननेसे आश्चर्य रसमें निमग्न हुये सर्व भाग्यवंत गोपगोपीजनोंके दंभ, लोभ और असत्यका निवारण कर उनको भगवान्ने अपने परायण बनाया। इससे उनके सर्व संसारके तापोंकी शांति हुई। “इति नन्दादयो गोपाः” इस श्लोकमें नंदरायजी वगैरह गोपगोपीजन श्रीकृष्ण

और बलरामजीकी कथाओंसे प्रसन्न होकर कथन करते रमण आनन्द करते संसारकी वेदनाको भूलने लगे ।।७४।।

अब “निलायनै सेतुबन्धै” इत्यादि श्लोकमें कही कुमारलीलाको यहां रख कर पौगंड लीला प्रकट करी, इस तरह बारहवें अध्यायके नामोंका निरूपण कर प्रथम वृन्दावनके दैत्य संबंधसे हुए दोषोंका निवारण करनेका सूचन करनेवाले नाम कहते हैं:—

वृन्दावन—चारिणे नमः ।।७५।।

वृन्दावनमें विचरण करनेवाले विभुको नमस्कार ।

“वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः” इस मूल श्लोकके वचनसे अपने चरणकमलके सम्बन्धसे वृन्दावनको पुण्यवान लीला योग्य कर ‘अहो अमी देववर’ वगैरह श्लोकसे बलभद्रको बोध करते दस रस सहित क्रीड़ायें भगवान्ने करी हैं। इसीसे ‘वृन्दावनं’ यहांसे आरंभ कर “एवं निगूढात्मगतिः” वहां तकके नामोंका निरूपण किया ऐसा जानना ।।७५।।

जहां तक मैं, मेरा देह ऐसा होता देहाध्यास न जाए तब तक निरोध नहीं हो सकता। इसीलिए उसका निवारण करनेवाला नाम कहते हैं:—

धेनुकासुर—खण्डनाय नमः ।।७६।।

धेनुकासुरका खण्डन करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

धेनुकासुर दैत्य—यह देहाध्यास रूप है। इसीलिए धेनुकासुरका विनाश करके ब्रजवासीजनोंका देहाध्यास रूप

दोष ही दूर किया है। ऐसा करनेसे उनका देहाध्यास नाशको प्राप्त हुआ। उनको भगवान्का ही सत् अध्यास होने लगा। इससे प्रभुमें निरोध सिद्ध होनेमें सरलता हुई।।७६।।

अध्यास नष्ट होकर फल प्राप्ति होनी चाहिए, तो उसका सूचक नाम बताते हैं:—

उत्ताल—ताल—भेत्त्रे नमः।।७७।।

ऊंचे ताल शब्द करवानेमें आए ऐसे ताल वृक्षोंको तोड़ डालनेवाले भगवान्का अभिनंदन।

ऊंचे तालवाले जो ताल वृक्ष, ऊंचे गये हुए ताल शब्द जो क्रियामें होते हैं वैसे अथवा ऊंचे गए हुए, ताल शब्द जैसे होय ऐसे ताल, ताड़ वृक्षोंको तोड़नेवाले इस अनुसार मात्र धेनुकासुरका ही नहीं परंतु उसके दूसरे बहुतसे साथियोंका भी नाश किया ऐसा सूचन करते हैं। उसके संबंधसे ही सब ताड़के झुण्डके झुण्ड गिर पड़े इसीलिए ताड़ोंको तोड़नेवाले ऐसा कहते हैं।।७७।।

ऐसा करनेसे सर्वको सुख हुआ, इस अर्थको समझाता नाम दर्शाते हैं:—

सर्व—प्राणी—सुख—सञ्चार—कर्त्रे नमः।।७८।।

सर्व प्राणी मात्रको सुखका संचार करनेवाले असुरके अरिको नमस्कार।

वह ताड़वन सुंदर तृण—लता—तरु—फल वगैरहसे भरपूर था, परंतु धेनुकासुरके रहते वहां कोई भी जा नहीं सकता था। प्रभुने उसका संहार किया, क्योंकि सर्व प्राणी मात्र उसमें सुखसे संचार करने लगे। “तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने”

धेनुकासुरका संहार होनेसे उस वनमें तृण चरने लगे इस आशयको अनुसरता यह नाम है ।।७८।।

दिनमें वनमें लीला कर सायंकालको प्रभु ब्रजमें पधारे हैं । इस तात्पर्यको प्रकट करता नाम कहते हैं:—

गोकुल—सुख—वासाय नमः ।।७९।।

गोकुलमें सुखपूर्वक वासकरनेवाले गोकुलेश्वरका वंदन ।

“कृष्णः कमल पत्राक्षः” कमलदल समान नयनधारी जिनका श्रवण कीर्तन पुण्य—परम पावन रूप है, ऐसा अनुसरण करनेवाले गोप बालकोंसे स्तुति कराते भगवान् श्रीकृष्ण बलराम सहित वनमेंसे ब्रजमें पधारे । दिनमें वृन्दावनमें और रात्रिको गोकुलमें प्रभुका निवास है । ऐसा इस नामसे स्पष्ट किया है ।।७९।।

प्रभुकी सर्व लीलायें रसमय हैं, रस स्वरूप हैं और पुरुषार्थ रूप हैं, वह सब लीलायें प्रभुने गोप बालकोंके साथ वनमें प्रकट करी हैं । गोकुलमें स्थित ब्रजभक्तजनों, गोपीजनोंने उन लीलाओंका दर्शन नहीं करा, परंतु भगवान् जब वनमेंसे गोकुल पधारते उस समय उनके स्वरूपमें ही लीलाओंका अनुभव उनको होता था । अर्थात् जिससे उस रसमय लीलाका ज्ञापन करनेवाले प्रथम पुरुषार्थ रूप नामका निवेदन करते हैं:—

गोरजः—च्छुरित—कुन्तलाय नमः ।।८०।।

गायोंकी रजसे व्याप्त केशधारी गोपलको नमन ।

धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष यह चारों पुरुषार्थ इस नाममें समाविष्ट हैं। गाय धर्म है, रज—रजोगुण यह अर्थ है। इस रजकी व्याप्ति काम है, और अलक, केश यह मोक्ष रूप है। वह मोक्ष स्थानीय केशमात्र सत्यका ही अवलम्बन करनेवाले हैं। धर्म—अर्थ—काम सहित हो तो उसका ही मोक्ष होता है। यह दर्शानेके लिए ही सबकी एक वाक्यता करी है। और बालके गुच्छे काम रूप हैं। रज यह रजोगुण है और गाय रस पोषक अनुभाव है। उससे पुष्ट होता शृंगाररस निरूपण होता है। मयूरपिच्छ तथा उसका बंधन यह वीर और अद्भुत रस वनमें प्रकट हुआ। पुष्पोंके संबंधमें भयानक और हास्यरस, प्रभुके सुंदर नयन कमलसे करुण रस, मनोहर मंदहास्यसे रौद्ररस तथा वेणुनादसे शांत रस उपजाते हैं। ब्रह्मानंदको प्रकट करते ही अनुसरण करनेवाले सेवकोंने जिनका यशोगान गाया। यह भक्तिरसका प्रकाश करता है। इस प्रकार सर्वरसयुक्त रसघन भगवान्का श्रीगोपीजन दर्शन करती हैं। यह भाव यहां स्फुरित होता है॥८०॥

यह प्रभु ऐसे सर्व रसमय होकर वेणुनाद करते हैं। तब सर्व भक्तजन वशीभूत हो जाते हैं, ऐसा नाम बताते हैं:—

वेणुवाद—विशारदाय नमः॥८१॥

वेणु बजानेमें प्रवीण प्रभुको प्रणाम।

वेणुनाद करनेमें सात स्वरों सहित तान—मूर्छना सहित प्रभु गान करते हैं। इससे “गायन्तं स्त्रिय कामयन्ते” स्त्रियां गानेवालेकी कामना करती हैं। ऐसा स्वभाविक दृष्टिगोचर होता है। अर्थात् गान करनेसे श्रीगोपीजन वश हों यह सहज है, ऐसा कर उनका निरोध अपनेमें सिद्ध किया है। उनकी

मनोवृत्तियोंको अपनेमें खेंचा है। वेणु बजानेमें वाक्यरूप सरस्वती जिसको विशेष प्रकट होती है। जैसे जिन भक्तजनोंके साथ संकेत स्थानमें दिनमें जो लीलायें करीं उन लीलाओंका अनुभव जतानेवाले वचन सहित गान करनेमें आते ही भक्तजन वश हो जाते हैं। इस पक्षमें उस वेणुनादका श्रवण जिसको जैसा संकेत हो तो उसको वैसा ही होता है। अन्यको उसका कोई भी सूचन नहीं होता। यह ही आपश्रीके वेणुनादकी महत्ता है। जो घरमें रहते हुए भी उनको अपनी विरहार्तिका ज्ञापन करनेवाले वाक्य सहित पान करनेमें आयें तो उसका श्रवण अत्यंत आनंददायक ही हो यह निःसंदेह है। ऐसे वेणुवादनमें परम चतुर प्रियतम कृष्ण हैं। उनका अभिवंदन करते हैं॥८१॥

इस प्रकार धर्म सहित नाम कहकर केवल रसरूप बताते हैं:—

वन—कुसुमावली—रचिताकल्पाय नमः॥८२॥

वनमें पुष्पोंकी पंक्तियोंसे नटके वेषको रचते विभुका वंदन।

वनमें पुष्पोंकी पंक्तियोंसे जिनने रमणीय नाट्यकारके समान परम सुंदर वेष सजाया है। जिसमें ऊपर जताये हुए सर्व रस मूर्तिमान हो रहे हैं, ऐसे प्रभुका रसात्मक स्वरूप इस नाममें दर्शाया है॥८२॥

नटवर वेषसे सर्वमें भक्ति प्रकट करतें हैं, यह सूचन करते हैं।

अनुग—गीयमान—यशः पुञ्जाय नमः ॥८३॥

अनुसरण करनेवाले भक्तजनोंके द्वारा जिनके यश समूहका गान किया है, ऐसे पुण्यश्लोकका अभिनंदन।

जो लीलाएं वनमें अनुभवमें आईं उन ही लीलाओंका गान भक्तजन करते हैं, ऐसा करके उनका निरोध प्रभुमें सिद्ध होता है। ८०—८१—८२—८३ यह नाम गोरजश्छुरति इस श्लोकके संपूर्ण आशयको प्रकट करनेवाले हैं ऐसा जानना ॥८३॥

ऐसे परमरमणीय भगवत् स्वरूपके दर्शन कर दिनमें उत्पन्न हुआ विरहताप शांत हो जाता है। इस अर्थका समर्थन करते नामका उपदेश करते हैं:—

गोपी—ताप—हारकाय नमः ॥८४॥

गोपीजनोंके संतापको हरनेवाले श्रीहरिको नमस्कार।

श्रीमन्मुकुंद अखण्ड आनंदकंद प्रभुके वदनारविंद रूप मकरंदका पान नेत्ररूप भौरोंसे करके श्रीब्रजांगनाओंको दिनमें प्रकट हुए प्रभुकी वियोगाग्निका ताप शांत हो जाता था। ऐसा “तापं जहुर्विरहजम्” इस श्लोकके तात्पर्यको व्यक्त करनेवाला यह नाम है ॥८४॥

उन ब्रजांगनाओंसे सत्कार प्राप्त करके आपका भी परिश्रम शांत हो जाता था। यह सूचन करते हैं:—

गोपी—नयनारविन्दार्चिताय नमः ॥८५॥

श्रीगोपीजनोंके नयनारविन्दसे अर्चन कराते नटवर विभु को नमन।

श्रीमती गोपांगनाओंके लज्जा, हास्य और विनय पूर्वक कटाक्षोंका वर्षण होना यह ही प्रभुका अर्चन सन्मान था। ऐसे

परम मनोहर सन्मानको मान्यकर आप ब्रजमें पधारते। प्रथम 'अक्षिभृङ्गः' ऐसा मूलमें भृङ्गपना निरूपण किया, और यहां पर उनके नेत्रोंको अरविन्द रूपसे बताते हैं। अर्थात् प्रभुके मुखारविन्दके मकरंद रसका, मधुर रसका, पान करवानेमें उनके नेत्र भृङ्गरूप रूप बने थे, इसीलिए वहां उनके नेत्र भ्रमर रूपसे भृङ्ग रूप कहे। ऐसे ही यहां प्रभु भी उनके नयन कमलका पान करनेके लिए भ्रमररूप हुए हैं। इसीलिए उनके नेत्रोंको कमल रूपसे बताते हैं। भगवान्‌के रसस्वरूपका दर्शन गोपीजनोंको होता है। और गोपीजनोंके नेत्रोंसे सन्मान पाकर प्रभु भी प्रसन्न हो जाते हैं। अर्थात् दोनों में परस्पर रसज्ञता होने से दोनों में भृङ्गत्व सहज सिद्ध है, ऐसा सूचन करते हैं। और अर्चन पद कहकर जैसे देवताओंका अर्चन करनेमें आनेसे वो देवता संतुष्ट होते हैं, पुष्ट होते हैं। ऐसे भगवान्‌में वैसे सर्व धर्म रहे हुए हैं, इसीलिए "श्रीमद्गोकुलदृक् पुष्टः" श्रीमान् गोकुलस्थ भगवदीयोंकी दृष्टीसे पुष्ट प्रसन्न प्रभु ऐसा कह कर श्रीमद्प्रभुचरण भगवत्स्तुति करते हैं। ॥८५॥

गोकुलमें प्रवेश करनेके बाद माताओंने श्रमको दूर करनेके लिए मर्दन, स्नान, आभूषण, भोजनसे लेकर शयन पर्यन्त सत्कारका सूचन करनेवाले नाम कहते हैं:—

लौकिक—लीला—प्रदर्शकाय नमः ॥८६॥

लौकिक लीला दर्शानेवाले भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम।

"तयोर्यशोदारोहिण्यौ" वहांसे आरम्भकर "संविश्य वरशय्यायाम्" इस श्लोक पर्यंतका यह नाम है। माताएं प्रभुको मर्दन स्नान कराकर कोमल दूधसे तैयार करे हुए अन्न

वगैरहसे प्राशन करवाकर शयन योग्य वस्त्रादिकसे सजाकर मनोहर शय्यामें पौढ़ाते, ऐसा मूलमें कहा है। इसका आशय यह है कि आप माताओंके साथ शयन नहीं करते, परंतु सम्पूर्ण ब्रजमें स्वप्रियाओंके साथ सुखपूर्वक शयन करते थे ॥८६॥

इन्द्रियोंका अध्यास रूप कालियानाग — ब्रजमें यमुनाजलमें निवास करता है। उसका निवास भी सिद्ध करना चाहिए। अभी तक अपनी तरफ ब्रजभक्तोंका निरोध सिद्ध हुआ है कि नहीं ? इसकी भी परीक्षा करनी चाहिए। आगे श्रीयमुनामें जल क्रीड़ा करनेके लिए उनको निर्दोष, विशुद्ध करना ही चाहिए। इसीलिए इन सब अभिप्रायोंको ज्ञापन करनेवाला नाम कहते हैं:—

विषमूर्च्छित—गो—गोपाल—जीवनदृष्टयेनमः ॥८७॥

विषसे मूर्च्छित गाय और गोपालों पर जीवन रूप दृष्टि जिनकी हैं, ऐसे प्रभुका वंदन।

कालिन्दी कालियानागके विषसे दूषित हुई हैं। उनके जलका पान करनेसे गाय, गोपाल सर्व मूर्च्छित हो गए, उनको भगवान्ने अमृतमय दृष्टिसे देख जीवनदान दिया, 'एवं स भगवान्' यहांसे आरम्भकर "ईक्षयामृत वर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्" इस श्लोक तकके आशयको दर्शाता यह नाम है ॥८७॥

कालियके निवाससे हुए दोषोंको देखकर उसका दमन करनेके लिए स्वयं ही श्रीयमुनाजीमें प्रवेश किया, यह नाम कहते हैं:—

भक्त—परीक्षकायः नमः ॥८८॥

भक्तोंकी परीक्षा करनेवाले भगवान्का अभिनंदन।

स्वयं श्रीयमुनाजीमें प्रवेश नहीं करते तो भी अन्य तरीकेसे आप उसका दमन कर सकते थे। फिर भी उसमें प्रवेश कर नागोंसे घिरकर अपनी तरफ ब्रजजनोंका कैसा प्रेम है, उसकी परीक्षा करी। वे सब श्रीयमुनाजीमें गिरने लगे, ऐसी उनकी परीक्षा कर स्वयं उनके अनन्य पति हैं। यह मान्य कर सांपके बंधनसे अपने आप मुक्त हो गए। इस आशयका सूचन करता यह नाम दर्शाया ॥८८॥

परीक्षा करनेके बाद उनको आश्वासन देनेवाला नाम कहते हैं:—

कालिय—फणि—माणिक्य—रंजित—श्रीपदाम्बुजाय

नमः ॥८९॥

कालियनागके फणोंमें मणिके स्थान पर रंजित किये हैं चरणारविंद जिनने, ऐसे नागदमन प्रभुको नमन।

कालियनागके मस्तकके ऊपर विराजमान होकर आपने नृत्य किया। श्रीकृष्ण स्वयं शेषषायी ही हैं। उनको सर्प प्रसंगका निरंतर अभ्यास है। उसी प्रकार करना यह तो लीला मात्र ही है। उसके विषमय मस्तकोंके ऊपर नृत्य करना यह भी सकल कलामें कुशल कृष्णके लिये कोई कठिन कार्य नहीं। ऐसी लोकोत्तर नृत्यलीला दर्शाकर ब्रजवासियोंको आश्वासन दिया। श्रीनटवर प्रभुका अलौकिक नृत्य देखकर उन सबको जीवन प्राप्त हुआ। इस भावका सूचक यह नाम है।

॥८९॥

कालियको दंड दिया इसीलिए अनुग्रह भी करना चाहिए। इसीसे उस प्रकारका नाम निर्देश करते हैं:—

नागपत्नी—समर्चिताय नमः ॥९०॥

नागपत्नियोंके द्वारा सुन्दर रीतिसे अर्चन कराते प्रभुको नमस्कार ।

नागपत्नियोंने प्रभुका अर्चन किया, उनकी स्तुतिकी । वह अर्चन सामान्य नहीं किया, परंतु स्वात्मार्पण पूर्वक किया है । भक्तिमार्गकी पद्धतिके अनुसार किया है । इसीलिए सुन्दर अर्चन ऐसा कहते हैं । पर उनका करा हुआ अर्चन कामनायुक्त होनेसे उनको ब्रजभक्तों जैसी फल प्राप्ति नहीं हुई ॥६०॥

भक्ताश्रय—जल—स्थल— विशोधकाय नमः ॥६१॥

भक्तोंके आश्रयरूप जल और स्थलको विशेष रीतिसे शुद्ध करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

ब्रजभक्तोंको जल लेनेके लिए स्नानादिक कार्यके लिए उपयोगमें आता यमुना जल तथा श्रीवृन्दावनादि स्थल भी शुद्ध हो तो ही भक्तजन उसमें सुन्दर रीतिसे आश्रय कर सकते हैं । इसीलिए उनके पति संरक्षक प्रभुको ऐसे जल स्थलको विशेष करके शुद्ध करना अवश्य कर्तव्य है । अभी तक वहां तृण आदि भी निकलते नहीं थे । पशुपक्षी भी लाभ पा नहीं सकते थे । स्वयं की भी लीलामें अन्तराय करनेवाला था । जिससे वह जल और स्थल अच्छी रीतिसे शुद्ध कर सर्वोपयोगी एवं लीलोपयोगी बनाया ॥६१॥

सर्वशुद्धिका संपादन कर नानाविध क्रीड़ाएं भी आपने उस स्थलमें करी हैं । यह दर्शानेवाले नामका निर्देश करते हैं:—

नाना—विध—क्रीडा—रताय नमः ॥६२॥

विविध प्रकारकी क्रीडामें अनुरक्त प्रभुको नमन ।

यह नाम पूरे १५ अध्यायके आशयको निरूपण करता है। उसके पहले १४ अध्यायमें दावानल पानका चरित्र आया है। यह चरित्र आगे १६ अध्यायमें आनेसे यहां नहीं कहकर श्री यमुनाजीकी शुद्धि करनेके बाद क्रीड़ा ही कर्तव्य है। इसीलिए उस नामका प्रथम निरूपण किया है।

विविध प्रकारकी जल और स्थलकी अनेक क्रीड़ाओंमें प्रभु अनुरक्त हैं। ब्रजमें क्रीड़ा करते करते ग्रीष्म समय प्रकट हुआ। परंतु उसके तापके दोषको दूर कर वृन्दावनके वसंत समान सुंदरगुणोंको निरखके रमण करनेके लिए भगवान्ने उसमें प्रवेश किया। ऐसा बतानेके बाद “प्रवालबर्हस्तबकः” इस श्लोकसे आरंभकर “एवं तौ लोक चेष्टाभिः” यहां तककी क्रीड़ाओंका निरूपण करनेवाला यह नाम कहा है।।६२।।

वहां रमणके समयमें प्रलंबासुर आया यह नाम बताते हैं:—

प्रलम्ब —घातकाय नमः।।६३।।

प्रलम्बका नाश करनेवाले भगवान्का अभिनंदन।

अन्तःकरणके दोष रूप प्रलंबासुरको मारकर भक्तोंके अन्तःकरण दोषको दूर किया है। यद्यपि उसका वध बलभद्रने करा है तदपि उस समय बलभद्रके स्वरूपमें प्रभुका ही आवेश हुआ है। उनके द्वारा भगवान्ने ही उनका नाश किया है।।६३।।

परमात्म दोष रूप अज्ञानी आत्मारूप दावाग्नि है। उसका निवारण प्रभुने किया। इस आशयका नाम निरूपण करते हैं:—

दावाग्नि—पतित—गोकुल—रक्षकाय नमः ।।६४।।

दावाग्निमें पड़े हुए गोकुलका रक्षण करनेवाले गोकुलपतिको नमन।

यहां उनका निरोध आपमें सिद्ध हो इसीलिए ही यह चरित्र है। गायोंने चारेके लोभसे गाढ़वनमें प्रवेश किया। सभी गोपालों, गोपबालकोंका प्रभुमें अपने ही तुल्य ज्ञान होनेसे रमण करनेमें आसक्त हुए। यह उनकी आत्मामें अज्ञानपना आया, ऐसा होनेसे शरणभाव न रहनेसे क्रीड़ा नहीं हुई। इसीलिए वहां मुंजाटविमें उनके क्लेशका निरूपण किया। इतनेमें अपने आत्मदोष रूप दावाग्नि प्रकट होनेसे उनने भगवान्की शरणागतिको स्वीकार किया। तो प्रभुने उनकी रक्षा करी इसका सूचक यह नाम है ॥६४॥

अग्निमुखाय नमः ॥६५॥

अग्नि जिनके मुखमें हैं, उनको नमस्कार।

प्रभुका मुख—अग्नि हैं। इसीलिए उत्पन्न हुई दावाग्नि आपने अपने मुखमें समाई। जिससे अग्नि अपने आधिदैविक अधिष्ठान रूप भगवान्के वदनकमलमें ही लीन हो गई, ऐसा कर प्रभुने सर्व भक्तजनोंके दोष दूर कर उनका निरोध सिद्ध किया ॥६५॥

१७ अध्यायमें क्रीड़ामें उपयोगी वर्षा और शरद ऋतुओंका वर्णन और उनके कार्य १८ अध्यायमें हुए हैं। यह नाम दर्शाते हैं:—

सर्वर्तु—क्रीडा—विलासाय नमः ॥६६॥

सर्व ऋतुओंकी क्रीड़ाओंमें विलास करनेवाले श्रीकृष्ण को नमस्कार।

सर्व ऋतुओंका राजा वसंत माना जाता है। वह रससहित सुंदर श्रृंगारके आत्मरूप है। सर्वऋतुएं वसंतमें प्रकट होती हैं। उनका पति वसंत निरंतर सर्वऋतुओंका धर्म सहित प्रभुका

सेवन करता है। कारण कि उस वसंतके पति रक्षक प्रभु हैं। इसीलिए वह उनका सेवन करता है। इस रीतिसे शरदऋतुमें सर्वऋतुओंके धर्म प्रकट होते हैं, इसीलिए यह ऐसा नाम कहा है ॥६६॥

इस श्लोकमें विभाव, अनुभाव, उद्दीपन वगैरह रसके धर्मोंका निरूपण कर सर्वत्र रसका उद्बोध करानेके लिए प्रभुने वेणुनाद किया। इसका सूचक नाम कहते हैं:—

गोकुल—चारु—विचित्र—चरित्राय नमः ॥६७॥

गोकुलमें मनोहर आश्चर्यकारक जिनके चरित्र हैं, ऐसे गोकुलेशका वंदन।

कार्यके द्वारा ही कारणका निरूपण किया जा सकता है। प्रभुके वेणुनाद करनेके साथ ही उसका श्रवण करते ही ब्रजभक्तोंके मनका हरण हुआ। यह श्रवण जो लीलास्थ भक्तजन थे, उनको ही हुआ, अन्यको नहीं। विचित्र अत्यंत विस्मयकारक आपका चरित्र है। ॥६७॥

यह वेणुका कूजन मात्र तो धर्म कहा, बादमें गान किया यह कहते हैं:—

गोपिका—धैर्य—विमोचक—वेणुनादाय नमः ॥६८॥

गोपिकाओंके धैर्यका विमोचन करे ऐसे वेणुनाद करनेवाले बंसीधर भगवान्का अभिवंदन।

गोपिकाओंने यह वेणुनाद सुना तो धैर्य नहीं रह सका। कामवेगसे वह स्थिर रहनेमें भी अशक्त बन गए। श्रीकृष्णके चरित्रका स्मरण करते करते भी उनको विस्मरण होने लगा

और विक्षिप्त मनवाले हो गए। ऐसे धैर्यको विशेष रीतिसे छुड़ा दे वैसा वेणुनाद करनेवाले श्रीकृष्ण हैं ॥६८॥

वेणुनादके वर्णनकी आवश्यकता है। इसी से जैसे वर्णन हो वैसे उसका ज्ञापन करनेवाला नाम बताते हैं:—

गोपिका—नयन—पानैक पात्राय नमः ॥६९॥

गोपिकाओंके नयनोंसे पान करनेके एक पात्र रूप प्रभु को प्रणाम।

गोपिकाओंके नयनोंका पान करनेके एक ही मात्र पात्र प्रभु हैं। उनको भगवान्‌के दर्शन बिना दूसरा कोई भी दृश्य दर्शन करने योग्य है ही नहीं। अपनी दृष्टि रूप अंजलि द्वारा भगवान्‌के दर्शन यह ही मात्र “नेत्रवालों का परम फल है। “चक्षुष्मतां फलमिदम्” इस श्लोकमें श्रीगोपीजन इसको ही फल तरीके मान्य करती हैं। चक्षु शब्दसे सर्व इन्द्रियोंका परमोत्कृष्ट फल भगवान्‌ हैं, यह भी आशय है। यह नाम “बर्हापीडं नटवरवपुः” इस श्लोकके अर्थका समर्थन करने वाला है। जैसे पात्रमें रहे हुए रसका पान करनेके लिए तैयार हुआ पुरुष पात्र हाथमें धारण करता है। उसी तरह स्वरूपात्मक रसका दान ब्रजांगनाओंको करने के लिए प्रभुने गोपीजनोंके नेत्र रूप पात्रके लिये भव्य दिव्य नटवरवपु अंगीकार किया है। ऐसा इस नामका आशय है। ॥६९॥

इस स्वरूपका अनुभव करनेके बाद उसका वर्णन किया, वह नाम दर्शाते हैं:—

श्रुतिरूपगोपिकावर्णित—निखिलगुणायनमः ॥१००॥

श्रुतिरूप गोपिकाओंने वर्णन किये हैं सर्व गुण जिनके, ऐसे विभुका वंदन।

“अक्षण्वतां फलमिदम्” इस श्लोकसे आरंभ कर “गा गोपकैरनुवनम्” इस श्लोक पर्यन्त अर्थात् अध्याय १७—१६ इस श्लोक पर्यन्तका यह नाम है। यह श्रुतिरूपा गोपीजन श्रीगोकुलेशके गुणानुवाद गाते—गाते तन्मय बन गई, भगवत्क्रीडामय हो गई। प्रभुके अंतरकी प्राप्ति उनको हुई। इस तरीकेसे उनका इस स्थान पर प्रभुमें मध्यम निरोध निरूपण किया है।।१००।।

श्रुतिरूपा गोपिकाओंका निरोधकर अब अनन्यपूर्वा गोपकन्याओंका प्रभुमें निरोध निरूपण करनेवाला नाम कहते हैं:—

गोपकन्या—व्रत—फलाय नमः।।१०१।।

गोपकन्याओंके व्रतके फलरूप भगवान्का अभिवन्दन।

“हेमन्ते प्रथमे मासि” यहांसे प्रारम्भ कर “कुमार्यःकृष्णचेतसः” यहां तक निश्चयपूर्वक दृढासक्ति निरूपण करी है। इसी तरह गोपकुमारीयोंके व्रतका अन्य फल भी दर्शाया है। वह सर्व फलका दान करनेवाले प्रभु हैं। अन्तरमें प्रभुका साक्षात्कार अनुभव करनेमें बहिर्गत पूजन अंतरके अनुभवमें अन्तराय रूप होता है। इसीलिए उस पूजनका परित्याग कर आसक्ति स्वभावसे प्रभुका ही गुणगान वो करती हैं। कालिन्दी कलह वगैरहका नाश करनेवाली हैं। भगवान्के निरोध होनेमें अन्तराय रूप गिनाते तीन दोषोंको दूर करनेवाली हैं। आधिभौतिक—आध्यात्मिक—आधिदैविक; ऐसे त्रिविध दोष प्रभुकी प्राप्तिमें अन्तराय रूप हैं। ब्रजकुमारिकाओंके उन दोषोंको प्रभुने उनमें आसक्तिका दानकर श्रीयमुनाजी द्वारा हर लिए। यह फल प्राप्ति सिद्ध

होनेसे ब्रजकुमारिकाएं यमुना जलमें स्नान कर विहार करने लगीं ।।१०१।।

भगवान्‌के मुख्य फलका दान करनेके लिए वहां जाकर जो किया वह बताते हैं:—

जलक्रीडा—समासक्त—गोपी—वस्त्रापहारकाय

नमः ।।१०२।।

जलक्रीडामें आसक्त गोपिकाओंके वस्त्रोंका हरण करनेवाले श्रीहरिको नमन ।

जलक्रीडामें अच्छी रीतिसे आसक्त ऐसा कहकर जलविहार करते अन्तरमें प्रभुके अनुभवसे ही पूर्णता मानकर आसक्त हो गई हैं। उनको बाहरके संगमकी अपेक्षाका ज्ञान भी नहीं। इसीलिए उन सबमें कन्या, कुमारीका भाव ही रहा हुआ है। गोपीपदसे भी इन्द्रियोंके संरक्षण पूर्वक भगवान्‌के भोग्य वह हैं, यह स्पष्ट करते हैं। वस्त्रोंका त्याग कर स्नान करना, कर्म मार्गकी रीति मौन, वस्त्रोंका त्यागकर क्रीडा और देहका विस्मरण यह चार दोष गिनाते हैं। परंतु भगवदासक्तिमें तो यह सर्वगुणरूप ही हैं। उनके सर्व कर्म तो भगवान्‌में आसक्ति होते ही दूर हुए हैं, ऐसे कर्म दूर होनेसे अनेक कर्म जनित दोष दूर करनेके लिए स्वयं पधारे हैं। क्योंकि दीन स्त्रीजनोंका हित करनेवाले प्रभु परम कृपानिधान हैं। उनकी भी मांग प्रभु हमारे पति बने ऐसी ही थी। इसीलिए उनके अंतरकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए अपना पतित्वका दान करनेके लिए स्वयं पधारकर उनके और अपने अन्तराय रूप वस्त्रोंका हरण किया ।।१०२।।

उनका सर्व सिद्ध किया परंतु उनके सर्वका विनियोग अपनेमें होना चाहिए। पुरुषत्व धर्म उनमें नहीं है, तो वह भी

स्थापन करना चाहिए। जिससे मित्रवर्गके साथ वहां आना पड़ा ऐसा नाम कहते हैं:—

मुक्तोपसर्पकाय नमः ॥१०३॥

जिनके समीपमें प्राप्त होनेवाला मुक्त हो जाता हैं, ऐसे श्रीकृष्णको नमस्कार।

मुक्तजीवोंको अपने अंतरमें प्राप्त करनेवाले वह तो मुक्त हैं ही, अपने अंतरमें रहे हुआंको प्रकट कर अन्य न जान सकें ऐसे अपने संगमें लिए हुए हैं, ऐसी सुबोधिनीजीमें स्पष्ट आज्ञाकरी है। और आगे वस्त्रदानके साथ उनके अन्तरमें ही ब्रजकुमारिकाओंका प्रवेश हुआ है, ऐसा निरूपण किया है। इस प्रकार गोप कुमारिकाओंका भी निरोध निरूपण किया। फिर “अथ गोपौः परिवृत” ऐसा कहकर आप गोपमंडलीसे घिरे हुए गए अर्थात् उन सब कुमारिकाओंका निरोधकर गोप बालकोंमें मिल गए ॥१०३॥

गोप बालकोंको हुआ लीला संबंधी ज्ञान कर्तव्य से विपरीत अनिष्टका परिणाम करने वाला हो यह ठीक नहीं। इसीलिए उनको ज्ञानका उपदेश किया, यह सूचित करते हैं:—

वृन्दावन बोधकाय नमः ॥१०४॥

वृन्दावन संबंधी बोध करनेवाले कृष्णको प्रणाम।

“निदाघार्कतपेतिग्मे” यहांसे आरंभ कर “इति प्रवालस्तबक” वहां तकके तात्पर्यको कहनेवाला यह नाम ब्रजमें उत्पन्न हुआ है। वृक्ष ज्यादा श्रेष्ठ हैं। इस वृन्दावनमें सब

भगवद्रूप हैं। यहांके यह वृक्ष भी सर्वको भगवद्रूप समझकर छाया, पत्र, फल वगैरह देकर सभीका सम्मान करते हैं। यह उनमें अत्युत्तम भगवदीयपना रहा हुआ है, ऐसा ज्ञान हुआ यह इससे सूचन करते हैं ।।१०४।।

गोप बालकोंको यहांके सब पदार्थ भगवद्रूप भगवान्के लिए ही हैं, यह ज्ञान हुआ है। इसीलिए उसको ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसा मानकर उन गोप बालकोंको भूख उत्पन्न होने पर वे प्रभुके पास प्रार्थना करने लगे, नहीं तो वह वृक्षादिकके फलादिको ग्रहण कर अपनी भूख शान्त कर सकते थे। भगवान्ने अपने स्वरूपकी प्राप्तिमें उपयोगी जितना ज्ञान उतना उनमें स्थापन करनेके लिए प्रथम बाललीलाकी सिद्धिके लिए लोकानुकूल ज्ञान हो, बादमें भगवद् प्राप्तिका ज्ञान हो ऐसे दोनों ज्ञान प्राप्त करानेके योग्य ब्राह्मणोंका अन्न है, यह विचारा। ब्राह्मणोंमें बहिर्मुखता है और ब्राह्मण पत्नीयोंमें भक्तपना है। ऐसा जताने तथा तिरस्कार करनेवाले ब्राह्मणोंका भगवान्के संबंधमें अज्ञानपना दर्शाया। उनसे याचना करनेका उपदेश करते हैं। इस आशयका नाम दर्शाते हैं:—

यज्ञभोक्त्रे नमः ।।१०५।। यज्ञ भोक्ता भगवान्का वंदन।

यह नाम वैदिक ज्ञान कर्मका निर्णय करता है। कर्मके ज्ञान प्रभु संबंधमें हो तो शोभायमान है। उनके संबंध बिना सत्वशोधक नहीं होते। कर्म और ज्ञानमें निपुण ब्राह्मणोंने गोपवाक्यों द्वारा स्मरण किया, तो भी उनको भगवद् स्वरूपकी स्फुरणा नहीं हुई। क्योंकि उनको ज्ञान और कर्ममें भगवद् संबंध है, यह भान नहीं हुआ। भगवत् संबंध होनेमें तो कोई

तादृशी भगवदीय जनका समागम हो, परम्परासे भक्ति हो, तब वह सर्व कर्मज्ञानका विनियोग प्रभुमें हो सकता है। ब्राह्मणोंकी पत्नीयोंमें कोई एक ब्राह्मण पत्नी भक्तिमती थी। उनके समागमसे दूसरी ब्राह्मण पत्नीयोंमें भगवद्भाव देखकर उनके संगसे ब्राह्मणोंमें ज्ञान सहित भक्ति प्रकट हुई और “देशः कालः पृथग द्रव्यं मन्त्र तन्त्रे” देश काल द्रव्य मन्त्र तन्त्र वगैरह सर्व यज्ञादिक भोक्ता, अधिष्ठाता फलदाता भगवान् ही हैं, उनके बिना कर्मज्ञान बेकार है। इस आशयका नाम निवेदन करते हैं ।।१०५।।

सर्व भोक्ता होते हुए भी याचना क्यों करी ? उसका समाधान करते हैं:-

यज्ञ-भाग-भुजे नमः ।।१०६।।

यज्ञके भागको भोगने वाले भगवान्का अभिनन्दन।

यज्ञमें स्त्रियोंका भी भाग होता है। स्त्रियां आपकी भक्त हैं। उनके भागको उनके द्वारा अंगीकार करना, उनको अपने स्वरूपका दान करना निरोध करना, ऐसा प्रभुका अभिप्राय है। इसीलिए याचना करी यह अयुक्त नहीं है। उनके अन्नका भगवान्में विनियोग होनेसे उनकी भक्ति भी सिद्ध करी। सुबोधिनीजीमें धर्म रक्षण करना, भक्तिका रक्षण करना और अपने वाक्यका रक्षण करनेके लिए आपने याचना करी है, यह आज्ञा करी है। ऐसा कर यज्ञके भागको भोगा है। ।।१०६।।

धर्म—रक्षकाय नमः । ॥१०७॥ धर्म रक्षक प्रभुको प्रणाम ।

यज्ञ संबंधी अन्नका आधिदैविक संबंधके द्वारा यज्ञरूप धर्म सिद्ध हुआ और भगवदीय अन्न भोजनसे भक्ति भी सिद्ध हुई तथा “तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि” ऐसा उच्चार करे हुए अपने वाक्यका भी संरक्षण हुआ ॥१०७॥

यज्ञपत्नी—प्रसादकाय नमः ॥१०८॥

यज्ञपत्नीयों पर अनुग्रह करनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

जैसा जिसका अधिकार होता है, उस अनुसार यज्ञपत्नीयों पर प्रभुने अनुग्रह किया। मुख्य अनुग्रह तो एक विप्र पत्नीको हुआ जिसके द्वारा सामान्य प्रसाद अनुग्रह सबको हुआ इसीलिए उन स्त्रियोंका वहां जाना हुआ था ॥१०८॥

वहां जानेके बाद क्या हुआ ? यह स्पष्ट करते हैं:—

सर्वाज्ञान—निवारकाय नमः ॥१०९॥

सर्वके अज्ञानका निवारण करनेवाले भगवान्को वंदन ।

उनके जानेके बाद उनके दर्शन कर ब्राह्मणोंका अज्ञान जाता रहा। भगवत्संबंधी ज्ञान उनको प्रकट हुआ। इसीसे ब्राह्मणोंमें भगवद् भक्ति भी उत्पन्न हुई। एक ज्ञान और भक्ति दोनों भी उनको प्राप्त होनेके लिए अज्ञानको नाश करनेवाले प्रभु हैं, ऐसा कहा ॥१०९॥

यहां तक बाललीलाके नाम हैं। इनका उपसंहार करते हैं:—

इति बालचरित्रस्य नाम्नाम् अष्टोत्तरं शतम् ।

कृष्णभक्तिहृदानन्दि कीर्तनाद्भक्तिबोधकम् ॥१॥

इस प्रकार बाल चरित्रके १०८ नामोंसे श्रीकृष्णकी भक्ति से हृदयमें आनंद देने वाले, कीर्तन करनेसे भक्तिका उपदेश करनेवाले हैं, ऐसा समझना ॥१॥

॥इति बाललीला — नामावली ॥

॥अथ प्रौढलीलानामानि ॥

बालचरित्रके फल कहकर आसक्ति करनेवाले भगवद् चरित्रका कथन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं:—

नामान्यथ प्रवक्ष्यामि यैः सन्तुष्यति केशवः ।

वक्ष्यामि भक्तहृदये परमानन्ददायकः ॥१॥

अब ऐसे नाम कहता हूं कि जिन नामोंके कथनसे भक्तजनोंके हृदयमें बाहर और आन्तर दोनों प्रकारके परमानन्दका दान करनेवाले, ब्रह्मा और शंकरको मोक्ष देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण संतुष्ट हों। ऐसा कहकर प्रौढलीलाके नामोंका सूचन करते हैं ॥१॥

प्रतिज्ञा कर नामोंका सूचन करते हैं:—

अद्भुत—बालकाय नमः ॥१॥

आश्चर्य कराने वाले बालकको नमस्कार ।

बालक पदसे बाललीलाका सूचन होता है, तो भी अद्भुत पदसे प्रौढलीलाका ही सूचन होता है। अलौकिक हो वह ही

अद्भुत आश्चर्यकारक होता है। प्रभु बालक दिखते हैं, तो भी उनमें सर्व धर्म अलौकिक हैं, लोकवत् नहीं। बाल अर्थात् बालकोंको जिससे “क” अर्थात् सुख है। बाल=पुत्र जिनके क अर्थात् ब्रह्मा हैं। बल संबंधी सर्व बाल उनके क = शिररूप अर्थात् बलवानोंके मस्तक मणिरूप ऐसे अद्भुत धर्मवान् यह बालक श्रीकृष्ण हैं। इसके अनुसार माहात्म्यका ज्ञापन करनेवाले अलौकिक धर्म यहां होनेसे यह प्रौढ़लीलाका सूचन करनेवाला है। इसीलिए जन्म प्रकरण गत नामोंको प्रौढ़ लीलामें रखा हुआ है।

यद्यपि प्रथम कही हुई बाललीलाके नामोंमें अवस्थाके साधनोंसे विरुद्ध चरित्र कहे हुए हैं, तदपि वहां माहात्म्यका ज्ञान कोई भी स्थलमें करा नहीं है। लौकिक भाव ही सर्वमें आपने संपादन किया है। भक्तजनोंको भी बाल्यसहित ही अन्य प्रकारसे संतोष दिया है। इसीलिए वहां अलौकिक रीति जरा भी प्रकट नहीं करी। अतएव इसे बाललीला कह सकते हैं। यहां ऐसा नहीं है, माहात्म्यज्ञानपूर्वक— सुदृढ़स्नेह ही यहां स्थापन किया है। इसीलिए माहात्म्यज्ञान सूचक अलौकिक लीला करी होनेसे सर्वथा प्रौढ़लीलामें समावेश हो सकता है। प्रकट होते समय माहात्म्य सहित स्वरूपका दर्शन दिया है, फिर भी श्रीदेवकीजीको बालक बुद्धि ही हुई। यह जतानेके लिए अद्भुत बालक यह एक पदसे नामका निर्देश करते हैं, नहीं तो मूलमें अद्भुत और बालक ऐसे दो पद होनेसे यहां एक पद न कहकर भिन्न कहते और श्रीवसुदेव देवकीजीको प्रभुके अलौकिक स्वरूपका ज्ञान हुआ था। स्वरूप लोकमें और वेदमें प्रसिद्ध हैं, परंतु अभी प्रकट हुआ है। अर्थात् यह देखनेमें

आ सकता हैं, लेकिन स्मरण करनेमें वर्णन करनेमें पार पा सकें ऐसा नहीं हैं। ऐसा अद्भुत पदसे सूचन करते हैं।।१।।

रूप दर्शाकर अब अलौकिक शोभाको दर्शन करानेवाला नाम कहते हैं।

अम्बुजेक्षणाय नमः।।२।।

कमल समान नयनधारी देवकीनन्दनका वंदन।

अंबुज—कमल समान नेत्रवाले; अंबुज—लक्ष्मी जिनके नेत्रोंमें है। अंबुज—सूर्यचन्द्र जिनके नेत्र हैं। अंबुजे—पंचाग्निविद्यासे साध्य करे हुए पुरुषमें जिसका ज्ञान है। अंबुज—लक्ष्मीको ‘ई’—काम यही जिसका क्षण—सुख है। अंबुजे—जलमेंसे उत्पन्न हुए ब्रह्माण्डमें पालन करनेके लिए ईक्षण—दृष्टि जिनकी है, अथवा अंबुज—पृथ्वीमें जिसका ईक्षण—जैसा है। ऐसे यह विविध प्रकारसे भगवान्की श्री शोभाका निरूपण किया है। तथा यह सर्व प्रभुके अलौकिक धर्मोका ज्ञापन करता है। और अंबुज पदसे रसात्मकताका भी ज्ञापन किया। इसीलिए ही आगे फल प्रकरणमें स्निग्ध स्नेहवाले दम्पतिके भावरूप रसात्मकता दर्शानेमें आई है। नेत्र ज्ञानेन्द्रिय हैं, जिससे ज्ञानशक्तिका निरूपण करनेमें आया है।।२।।

अलौकिक ज्ञान शक्ति कहकर क्रिया शक्ति बताते हैं:—

चतुर्भुजात्तचक्रासि—गदाशंखाद्युदायुधायनमः।।३।।

चार भुजाओंमें चक्र, पद्म, गदा, शंख जल रूप आयुध जिनने धारण किये, ऐसे चतुर्भुजका अभिवंदन।

चारों भुजायें क्रिया शक्ति हैं। जब भगवान् चतुर्विध कार्य करनेके लिए प्रकट होते हैं तब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन

चारों पुरुषार्थोंके कार्योंका चार भुजाओंसे निरूपण करते हैं। इसीसे चार भुजाओंमें तेजसत्त्वरूप चक्र है, भुवनतत्त्वरूप पद्म है, प्राणात्मकवायुतत्त्वरूप गदा हैं, तथा जलतत्त्वरूप शंख ऐसे आयुध रहे हैं। इसीलिए अलौकिक क्रिया शक्तिका सूचक यह नाम है। इसी तरह चतुर्व्यूहमें प्रद्युम्न स्वरूपसे रसात्मकताका भी सूचन करते हैं।॥३॥

माहात्म्य दर्शाने वाला नाम कहते हैं:-

श्रीवत्स-लक्ष्मणे नमः ॥४॥

श्रीवत्सका चिह्न जिनके हैं, ऐसे प्रभुको प्रणाम।

श्रीवत्स यह अक्षरब्रह्म रूप हैं। सर्वात्मक भगवाका श्रीवत्स ब्रह्म का मुख्य लक्षण है। आपने इसको ही हृदयमें धारण करा हुआ है। श्री- लक्ष्मी स्पर्श सुखको स्पष्ट करनेके कारणरूप हैं। इसके जनक-उत्पन्न करने वाले आप हैं। इसीलिए इसको धारण करनेकी आपकी वत्सलता और रसज्ञता सिद्ध होती है। इस नाममें माहात्म्य और स्नेह दोनों ही आ जाते हैं ॥४॥

कौस्तुभाभरण-ग्रीवाय नमः ॥५॥

कौस्तुभमणिके आभरण जिसमें हैं, ऐसे कंठवाले श्रीकंठ प्रभुको नमन।

जीवमात्रके आधिदैविक स्वरूपके रूपसे यह मणि रही हुई हैं। मुक्त जीवोंकी वहां ही स्थिति होती हैं। भगवान् मुक्त जीवोंको समीपमें प्राप्त करने योग्य हैं। ऐसे मुक्त जीव लीलास्थ ही जानने, ऐसे जीवोंको आपने कंठमें भूषणके तरीकेसे स्थापन किया है। इसीसे प्रभु रससे — प्रेमभक्ति

रससे परवश हो जाते हैं, यह सूचन किया। इस नामसे माहात्म्य और रसाभिज्ञता दोनोंका ही ज्ञापन कर दिया।।५।।

ऐसे स्वरूपके दर्शन करनेसे माहात्म्य ज्ञानपूर्वक स्नेह प्राप्त करनेसे श्रीदेवकी माताकी मुक्ति ही होय तो उसका अभाव कैसे हुआ ? यह कहते हैं:—

पीताम्बर धारिणे नमः।।६।। पीताम्बरधारी प्रभुको नमस्कार।

पीताम्बर माया, उसको धारण करनेसे मोह उत्पन्न करते हैं। माताको माहात्म्य ज्ञान प्रत्यक्ष हुआ फिर भी मायासे मोह प्राप्त कर मुक्ति न हुई और बालभाव उत्पन्न हुआ।

प्रथम कौस्तुभमणिके वर्णनमें श्रीसुबोधिनीजीमें श्रीमदाचार्यचरणने जीवोंके दो प्रकार कहे हैं। क्रियानिष्ठ जीवोंसे ज्ञाननिष्ठ जीव उत्तम हैं। इसीलिए ऐसे मुक्त जीवोंको आप कंठमें आभरण रूप धारण करते हैं, ऐसा कहा और क्रियानिष्ठता प्रभुकी मायामें फंसाती है। इसीलिए उनकी मुक्ति नहीं होती। ऐसे मायारूप पीताम्बर धारण करनेवाले प्रभु हैं। यह पीताम्बर मायारसका भी आच्छादन करता है। इसीलिए भगवान्‌के रस स्वरूप होते हुए भी रसका आच्छादन मायासे होता है। ऐसा भी इस नामसे सूचित करते हैं।।६।।

रस स्वरूप द्योतक नामका निर्देश करते हैं:—

नील—मेघ—श्यामाय नमः।।७।।

नीलश्याम मेघके जैसे श्याम सुंदरका वंदन।

नवीन श्याममेघ जैसे सभीको अपने समयमें सुंदरता देते हैं, जलवृष्टि कर तापका शांत करते हैं, अन्न देते हैं, सर्व को

परमानंदका दान करते हैं। ऐसे भगवान् भी पृथ्वीको, स्वर्गको, धर्मको तथा भक्तजनोंके अनिष्ट दूर कर इष्टवस्तुकी प्राप्ति कराकर अत्यंत आनंद देनेवाले हैं। यह इस नामसे प्रतिपादन करते हैं ॥७॥

इस स्वरूपका निरूपण कर उसके योग्य आभरण दर्शानेवाले नाम कहते हैं:—

नाना—कल्प—विराजिताय नमः ॥८॥

नाना प्रकारके आभूषणसे विराजमान भगवान्का अभिनंदन।

यह नाम “महार्हवैदुर्य किरीट” इस श्लोकमें बताए हुए आभरणोंसे संशोभित भगवान्के स्वरूपको प्रकट करता है ॥८॥

परम सुंदरता दर्शानेवाले नामका निवदेन करते हैं:—

**आत्म—विस्मापक—मानुष—वेष—सौन्दर्य—निधये
नमः ॥९॥**

आत्माको आश्चर्य उत्पन्न करे ऐसे मनुष्य वेशके सौन्दर्यके निधिरूप प्रभुको प्रणाम।

सर्वकी आत्माको आश्चर्य उत्पन्न करे, ऐसा आपका सौन्दर्य है। इसीलिए प्रथम अद्भुत पद कहा था। उस प्रथमके बालक पदसे तथा मानुषवेषसौन्दर्य वगैरह पदसे अत्यंत सौन्दर्यका द्योतन होता है। “त्रैलोक्यलक्ष्म्यैकपदम्” यह आगेके श्लोकमें तीन लोकोंकी लक्ष्मीके एक ही स्थान रूप वपुको धारण करनेवाले ऐसा कहा है। अतएव तीनों लोकोंमें जो भी सौन्दर्य है, वह प्रभुके सामान्य अंश रूप ही हैं। ऐसा निधि पदसे निरूपण करते हैं। इस प्रकार सर्वांशसे पूर्ण प्राकट्य

करनेमें “अनिर्वचनीय माहात्म्य”का ज्ञापन होता है। “विरोचमान वसुदेव ऐक्षत” इस श्लोकके भावको दर्शानेवाला यह नाम है॥६॥

ऊपर कहे अनुसार अद्भुत बालकका आगे प्रयोजन नहीं होनेसे अन्यरूपसे ब्रजमें पधारें, अर्थात् लक्ष्मी भी वहां आकर उनकी सेवा करती है। इस माहात्म्यका सूचन करनेवाले नामको दर्शाते हैं:-

रमा-लालित-पाद-पद्माय नमः॥१०॥

रमाने लालन किए हैं चरणकमल जिसके ऐसे विभुको नमस्कार ।

रमा निरंतर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी सेवामें एकनिष्ठ रहने वाली है। वह यहां ब्रजमें आई हुई है। जब तक भगवान्का ब्रजमें सानिध्य है, तब तक लक्ष्मी भी प्रभुके सन्निधानमें रहनेके लिए भगवान् पधारे, तबसे ब्रजमें रमाका रमण भवन बना। “तत आरभ्य नन्दस्य” यहांसे आरंभकर “रमाक्रीडमभूतृप” वहां तकका यह नाम है॥१०॥

ऊपरके नामोंमें माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रभुमें सुदृढस्नेह प्रकट किया परन्तु मुग्ध भाव सहित उनके चरित्र सम्बन्धी नामोंका यहां निरूपण नहीं करा, कारण कि प्रथम बाललीलामें होते हुए भी प्रौढ़लीलामें कहकर, उनको छोड़कर आगे २१वें अध्यायसे शुरू होते नामको बताते हैं। आरंभमें भक्तोंको अन्य भजन वगैरह निषिद्ध हैं। इसीलिए उसके निवारणका सूचक नाम कहते हैं:-

भक्त-हितोपदेशकायनमः॥११॥

भक्तोंके हितका उपदेश करनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

नंदरायजी वगैरहके इन्द्रयागके उद्यमको देखकर अपने भक्तोंको आपके चरण भजन बिना अन्य योग्य नहीं, ऐसे हितकारक वचनोंका उपदेश प्रभुने किया हैं। इस आशयको बताने वाला यह नाम है।।११।।

बालकके उपदेश मात्रसे परंपरागत धर्मके बड़ा होने पर भी कैसे त्याग किया इसका सूचन करनेवाला नाम कहते हैं:—

हविर्मन्त्र—देवता—मूल—बोधकाय नमः।।१२।।

हवि—मन्त्र तथा देवताओंके मूलका बोध करानेवाले प्रभुको प्रणाम।

प्रथम श्रीकृष्णने नंदरायजीसे प्रश्न किया, तब उनसे “पर्जन्यो भगवानिन्द्र” ऐसा कहकर पर्जन्य भगवान् ही देवता रूपमें रहे हुए हैं। मेघ उसके अवयव मन्त्र हैं। वृष्टिका जल यह हवि द्रव्य है, जिससे अन्न पकता है। जल और अन्नसे ही सर्वजीवोंका जीवन चलता है। अतएव यह इन्द्र देवता सर्वके सेवा करने योग्य हैं। इसीलिए सर्व उनका अर्चन करते हैं और हम भी वैसा करनेके लिए तैयार हुए हैं। तब प्रभुने यह उत्तर दिया कि “तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्वेश्वारभ्यतां मखः” गाय, ब्राह्मण और पर्वतके यागकी शुरुआत करो। अपना करा यज्ञ वैदिक नहीं है। इसीलिए वैदिक यज्ञ करना चाहिए। जिसमें हवि—मन्त्र और देवता भी मूलभूत यह गाय—ब्राह्मण और गिरिराज हैं, ऐसा बोध करानेवाले प्रभु हैं।।१२।।

कृत—वेष—मोहित—देव—परीक्षकाय नमः।।१३।।

करे हुए वेषसे मोहित हुए देवोंकी परीक्षा करनेवाले विभुका वंदन।

स्वयंके रचे हुए वेषसे मोह पाते हुए इन्द्रदेवकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णने विचारा कि कहां तक मेरी स्पर्धा कर सकता है? इसीलिए सात दिवस पर्यन्त गोर्वधनको छोटी अंगुलीके ऊपर धारणकर उस इन्द्रकी परीक्षा करी। उससे भी विशेष जो इसने वृष्टि करी होती तो वह खुद ही अपने स्वरूपसे नष्ट हो जाता और करे हुए वेषसे मोहित इन्द्रके निमित्तसे भक्तोंकी परीक्षा करने वाले हैं।

अथवा इन्द्रके करे हुए क्लेशसे भक्तोंके ऊपर करुणा लाकर उनकी रक्षा करनेके लिए चारों तरफ दृष्टि करने वाले “गोपाये स्वात्मयोगेन” यह विचार पूर्वक जो देखा उसको करनेवाले अथवा वो करे हुए वेषसे मोहित हुए इन्द्रको ज्ञान होते ही प्रभुके चरणोंकी शरण आया। शरण आनेके बाद प्रभुने भी उस पर पूर्ण कृपा करी है ॥१३॥

यज्ञ भंग होनेसे कोपायमान हुए इन्द्रने प्रलयके समय मेघोंको छोड़ वृष्टि करी तो पूरा जगत् डूबना चाहिए, ऐसा हुआ नहीं। उसके कारणको दर्शानेवाला नाम दर्शाते हैं:—

एक—देश—वृष्टि—वायुदेवता क्षोभजनकाय

नमः ॥१४॥

एक देशमें ही वृष्टि और वायुके क्षोभको उत्पन्न करनेवाले भगवान्का अभिवंदन।

एक देशमें ही मात्र ब्रजमें ही वृष्टि और वायुसे क्षोभ उत्पन्न करनेवाले अथवा एक समय सर्वदा जो ईश नहीं ऐसे इन्द्रके मुखसे ही वृष्टि—वायु देवताको क्षोभ उत्पन्न करनेवाले, स्वयं प्रभुने प्रत्यक्ष आज्ञा नहीं करी, इन्द्रने करी है। इसीलिए जिसके ऊपर इन्द्र क्रोधित हुआ, उतने प्रदेश ऊपर ही उसने उतना क्षोभ प्रकट किया। “नंदादिभ्य— श्चुकोप” नंदादिकोंके

ऊपर वह कोपायमान हुआ, ऐसा इसीलिए ही कहा। सर्व प्रलय करनेवाली जब भगवदाज्ञा हो, तब ही ऐसा हो सकता है, ऐसा समझना ॥१४॥

मूलमें तो इन्द्रने मेघादिकको क्षोभ उत्पन्न किया, ऐसा कहा है। यहां तो भगवान् क्षोभ उत्पन्न करने वाले हैं। ऐसा जताया इसका क्या कारण ? इसका निराकरण करते नामको प्रतिपादित करते हैं:—

सर्वरूपाय नमः ॥१५॥ सर्व रूप प्रभुको प्रणाम।

यहां तो कालात्मक भगवान्ने इन्द्रके गर्वका परिहार करनेके लिए यह करा है। इन्द्र—वृष्टि—वायुदेवता, यह सर्वरूप भगवान् ही हैं। उनको प्रेरणा करनेवाले भी प्रभु ही हैं। ऐसा न हो तो कोड़ी मात्रकी कीमतका इन्द्र प्रभुके स्थान पर उपद्रव करनेमें कैसे समर्थ है? मेरे योगसे ही सर्वका रक्षण करूं, ऐसे सर्वका रक्षण करनेमें निजयोगसे युक्त होकर सर्वमें स्वयं प्रवेश कर सर्वरूप होकर सर्वकी रक्षा करी ॥१५॥

वेदमार्ग—रक्षकाय नमः ॥१६॥

वेदमार्गका रक्षण करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार।

पाखण्ड मार्गको दूर कर वैदिक—श्रौत वैष्णवमार्गका संरक्षण किया। ऐसा अपने भक्तजनोंका अन्यका सेवन सर्वथा अयोग्य है, भगवत्सेवामें बाधक है। यह इस नामसे दर्शाया ॥१६॥

वह सर्व अन्तराय दूर कर अपनेमें ही निजजनोंको निष्ठावाला किया। इसीसे आप भक्तिमार्गके भी प्रवर्तक हुए वह नाम कहते हैं:—

भक्तिमार्गप्रवर्तकाय नमः ॥१७॥

भक्तिमार्गका प्रवर्तन करनेवाले भगवान्‌को नमन ।

प्रभुने श्रीमद्‌गोपीजनोंको अपनेमें निष्ठावाला किया ।
इसीलिए वह चरणोंकी शरण आये 'पादमूलमुपाययः' यह मूलमें
कथन किया ॥१७॥

रक्षा करी, वह भी अपने स्वरूपसे ही करी है, अन्य
साधनोंसे नहीं । अगर अन्य साधनोंसे करते तो निजजनोंको
अन्य संबंध होता, उनका निरोध सिद्ध नहीं होता । यह बताते
हैं :—

गोर्वधनोद्धरण—धीराय नमः ॥१८॥

श्रीगोर्वधनका उद्धरण करनेमें धीर श्रीकृष्णका वंदन ।

गोर्वधन गिरिराजनें केवल स्वकीयताका संपादन कर
माहात्म्यके दर्शन कराए । सात दिवस तक पर्वतको धारण कर
सर्वकी भूख—प्यास वगैरह देह धर्म हर लिए और सर्वमें
माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सर्वसे अधिक सुदृढ़ स्नेह प्रकट किया ।
ऐसा कर भक्तिमार्गीय धर्मका पोषण किया हैं ॥१८॥

मात्र अपने ही भक्तजनोंको माहात्म्यज्ञानके दर्शन कराये,
इतना ही नहीं पर सर्वको ही वैसा ज्ञान कराया यह बताते
हैं:—

सर्वजनीन—माहात्म्य—बोधकाय नमः ॥१९॥

सार्वजनिक माहात्म्यका बोध करानेवाले हरिको
नमस्कार ।

देह मनुष्य वगैरह सर्व प्राणिमात्रको गिरिवर धारणकर
अपना माहात्म्य दर्शाया । सर्वको माहात्म्यज्ञान हुआ होनेसे
इन्द्रको भी वह हुआ है ॥१९॥

भक्त—विस्मापकायनमः ॥२०॥

भक्तको विस्मय करनेवाले गोवर्धनधारीको नमन ।

इन्द्र भी भक्त ही है । प्रभुने उसको अधिकार दिया होनेसे उसको मद हुआ है । भक्तको ऐसा गर्व हो, यह प्रभुसे सहन नहीं होता । इसीलिए मोहमुग्ध बने इन्द्रका उद्यम निष्फल कर उसको विस्मय पैदा किया । उसके गर्वको उतारा **और उसके संकल्पको निष्फल किया ॥२०॥**

मोहनप्रबोधोभयरक्षकादभुत—चरित्राय नमः ॥२१॥

मोह और ज्ञान ऐसे उभयका रक्षण करे ऐसा अद्भुत जिनका चरित्र है, ऐसे भगवान्‌का वंदन ।

इन्द्रको मोह भी आपने ही किया और प्रबोध ज्ञानोपदेश भी आपने ही किया । ऐसे उभय प्रकारके चरित्र प्रभुमें बहुत अद्भुत रहे हुए हैं । इसीलिए इन्द्र पदसे भ्रष्ट न करके उसके अपराध—दोषों का ही नाश किया । लौकिक प्रभुकी तरह अधिकारसे भ्रष्ट नहीं किया, यह अद्भुतता भी प्रभु की ही है ॥२१॥

लोक—वेदोल्लंघनकर—प्रपन्नभक्त—सर्वदुःख—निवारकाय नमः ॥२२॥

लोक और वेदका उल्लंघन करनेवाले शरणमें आए हुए, भक्तोंके सर्वदुःखोंका निवारण करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

भगवान् परम कृपानिधान हैं, अक्लिष्टकर्मा हैं । लोकमें और वेदमें भी निंदा करनेमें आये, ऐसे कर्मोंको करनेवाला हो, फिर भी आपकी शरणमें आये तो उसके ऊपर करुणाकर उसके अपराध क्षमाकर दुःख निवारण करते हैं । इन्द्रने प्रथम

अपराध किया, परंतु पुनः विवेक प्राप्त कर भक्त होकर शरण आनेसे उसके सर्व दुःख दूर हो गए “मयातेऽकारि मधवन्” यहांसे आरंभ कर “गम्यताम्” इस वचन तक ऊपरका सर्व बताया है। इसके बाद ऐसा निंदित कर्म नहीं करना, यह भी आपने उपदेश दिया है। यह सर्वका अनुसंधान इस नामसे करना ॥२२॥

केवल इन्द्रके दुःखोंका निवारण किया इतना ही नहीं, लेकिन उसके ऊपर महान अनुग्रह भी किया यह कहते हैं:-

इन्द्र-सुरभी-प्रसादकाय नमः ॥२३॥

इन्द्र तथा कामधेनुके ऊपर अनुग्रह करनेवाले श्रीहरिको अभिवंदन।

इन्द्र और कामधेनु इन दोनोंकी एक ही स्थिति है। अनुग्रह भी एक ही प्रकारका है, इसीलिए एक पदमें दोनोंका समावेश किया। प्रभुके अभिषेककी प्रार्थना कामधेनुने करी इन्द्रने अभिषेक करा। ऐसा दोनोंने अपना सेवक धर्म यथार्थ बताया। जिससे प्रभुने प्रसन्न होकर उनके ऊपर अनुग्रह किया। इन्द्रका इन्द्रत्व दूर कर कामधेनुसे अभिषेक करवाया होता तो परस्पर वैमनस्य होनेका प्रश्न आया होता, वह नहीं हुआ। इसीसे दोनोंमें समतानता रही होनेसे एक पदमें ही कहा ॥२३॥

प्रभुका इन्द्रत्व सूचक नाम प्रदर्शित करते हैं:-

गोविंदाय नमः ॥२४॥ गोकुलके इन्द्रको नमन।

इन्द्रके भी इन्द्र प्रभु हैं। ऐसा अपना माहात्म्य आपने प्रकट किया। इसीलिए ही मूलमें कहा है कि “निर्वैराण्य

भवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः” क्रूर होनेके बाद भी सर्व रीतिसे निर्वैर हो गया। परमात्माके माहात्म्यसे ही यह सर्व बनना शक्य है। अभिषेक पानेसे आप गोविंद, गोकुलेन्द्र, ब्रजेन्द्र, गोपेन्द्र, इन्द्रेन्द्र, देवेन्द्र, सुरभीन्द्र वगैरह नाम धारण करनेवाले हुए। यह माहात्म्य ज्ञान सहित सुदृढ़ स्नेहसे सर्वका निरोध किया।।२४।।

इतने चरित्र करने पर भी सर्वथा माहात्म्यका परिज्ञान नहीं हुआ। जिससे गोवर्धन धारण करनेके बाद जिस स्थानमें वे थे उनको वहां ही स्थापन किया, पर भगवान्‌का मिलन लौकिक रीतिसे ही करनेमें आया, अलौकिक भाव स्फुरा नहीं। इसीलिए आगेका चरित्र करनेमें आया वह नाम कहते हैं:—

अत्यन्त-भक्त-निरोधकाय नमः।।२५।।

अनन्य भक्तोंका निरोधकरनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार।

जो भक्त हो, वह तो अनुभवसे दृढ़ आश्रय कर भगवान्‌का ही भजन करता है। उसमेंसे जो निरोधमार्गीय होय तो उनका प्रभु अवश्य निरोध करते ही हैं। नंदरायजीका अन्य भजन हुआ, उतने अंशमें उनका भाव प्रभुमें न्यून हुआ। इसीलिए उनका निरोध सिद्ध करनेके लिए भगवान्‌की प्रेरणासे वरुणके दूत उनको ले गए, वहां प्रभु पधारे तब वरुण देव दासकी तरह भजन स्तुति करने लगे। माहात्म्य निरीक्षण कर भगवान्‌के ऊपर अलौकिक बुद्धि उत्पन्न हुई। यह नाम इस आशयको व्यक्त करता है।।२५।।

वरुणादि-देव-प्रबोधकाय नमः।।२६।।

वरुणादिक देवोंको उपदेश करनेवाले विभुका अभिवंदन।

वरुणदेव उनके स्थानमें निवास करते हैं। वहां अन्य देव—स्त्रियां भी निवास करती हैं। उन सबको अपने ज्ञानका बोध कराने वाले हैं। यह सर्व वरुणादिक जानकर प्रभुके गर्भदास होकर उनका सेवन करने लगे। इस तात्पर्यको प्रकट करता यह नाम है।।२६।।

वरुणलोकमें वरुणादि देव प्रभुके दास हैं। यह जानकर भगवान्का माहात्म्यज्ञान दृढ़ हुआ। इससे प्रभुके परम उत्कर्ष देखनेकी इच्छा होनेसे नंदादिकोंको उसका दर्शन कराया, यह कहते हैं:—

व्यापि—वैकुण्ठ—प्रदर्शकाय नमः।।२७।।

व्यापि वैकुण्ठके उत्कर्षकी रीतिको दर्शाने वाले प्रभुको नमन।

व्यापिवैकुण्ठके दर्शन कराकर उनकी अविद्याकी निवृत्ति होनेसे अक्षरानंदका अनुभव होनेसे उनका लय—मोक्ष हो जायगा परंतु उससे उत्तम भजनानंदकी प्राप्ति नहीं होयगी। इसीलिए मोक्षानंदका सुख दर्शाकर उसमेंसे उनका उद्धार किया। यह भाव इस नाममें रहा हुआ है।।२७।।

वैकुण्ठमेंसे उद्धार करनेका स्पष्ट कथन करते हैं:—

**वैकुण्ठ—स्थित्यधिक—भक्त—गृह—स्थितिबोधकाय
नमः।।२८।।**

वैकुण्ठमें स्थिति करनेसे अधिक भक्तके गृहमें स्थिति है। इसका बोध करानेवाले हरिका वंदन।

व्यापिवैकुण्ठमें निवास कर मोक्षानंद मिलनेसे भक्तजनके गृहमें निवास करना अत्यंत उत्तम है। कारण कि वैकुण्ठमें सर्वोपरि जो परब्रह्म हैं, वो ही मेरे गृहमें प्रकट विराजमान हैं।

उनकी मैं सेवा करता हूँ। उनको सर्व निवदेन कर मैं प्रसाद ग्रहण करता हूँ। उनकी प्रत्येक आज्ञा के आधीन रहकर प्रत्यक्ष भजनानंद को भोगता हूँ। यह सुख यह आनंद मोक्षानंदसे अनेकानेक रीति ज्यादा उनका परमानंद है, ऐसा उपदेश करने वाले हैं॥२८॥

मदनगोपालाय नमः॥२९॥ मदनमूर्ति गोपालको प्रणाम।

वैकुण्ठमें तो मोक्षावस्थाका अनुभव है। यहां साक्षात् मदनमोहनमूर्ति परमलावण्यके निधान स्वयं ही गोपाल रूपसे प्रकट होकर आनंद प्रदान कर रहे हैं। यह नंद वगैरह गोपोंको ज्ञान प्रकट हुआ। 'कृष्णेन चोद्धृता' इस श्लोकके अनुसार कृष्ण पदके अर्थका समर्थन करता यह नाम है॥२९॥

गोकुलमें भगवान्का उच्छृंखल चरित्र देखनेमें आता है। तो उसका उनको निर्दोषज्ञान कैसे हुआ इस प्रश्नका प्रत्युत्तर रूप नाम कहते हैं:—

अनादि—ब्रह्मचारिणे नमः॥३०॥

अनादि ब्रह्मचारी श्रीकृष्णको प्रणाम।

जिसका कोई आदि नहीं, जो सर्वका आदि है। इसीलिए सर्वके आदिभूत ब्रह्मचारी प्रभु स्वयं ही हैं। जो पुरुष अभी ब्रह्मचर्य व्रत करता है, वह सर्वके मूल भगवान् ही हैं। कारण कि वह स्वयं सर्वत्र "ब्रह्मरूपेण चरति व्याप्नोति" ब्रह्मरूपसे व्याप्त रहे हैं। सर्व पदार्थोंमें प्रभुकी आत्मबुद्धि ही रही हुई है। आत्मसे अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है। इसीलिए ब्रह्मचर्य भी प्रभुमें ही यथार्थ रहा हुआ है। जो सर्वथा निजानंदसे परिपूर्ण

है, उनको अन्य आनंदकी अपेक्षा ही नहीं। स्वयंसे अन्य वस्तुमें आनंद है ही नहीं अर्थात् सर्व स्वयंही हैं। उनका ब्रह्मचर्य खंडित होता ही नहीं। जिससे अनादि ब्रह्मचारीत्व प्रभुमें ही सिद्ध है। वेदोंसे स्तुति पाते हुए श्रीकृष्णके स्वरूपको देख नंदादिकों को उनका निर्दोष ज्ञान हुआ। सामान्य ब्रह्मचारियोंको वेदाध्ययन करना, उसमें रहे हुए धर्मके अनुसार आचरण करना वगैरह हो, परंतु वेद ही जिसकी स्तुति-यशोगान गाते हैं, उनको वैदिक धर्मकी आवश्यकता ही नहीं। यह प्रभुका अनादि ब्रह्मचारीपना दर्शाया, यह यथार्थ ही है॥३०॥

यह निर्दोष ज्ञान होनेसे अब फलका ज्ञान होना चाहिए। इसीलिए फल प्रकरणकी शुरुआत दर्शाते हुए नामको कहते हैं।

कन्दर्प—कोटि—लावण्याय नमः॥३१॥

करोड़ो कामदेवके समान जिनका सौन्दर्य है, ऐसे विभुका वंदन।

‘भगवान्पि’ इस मूल श्लोकमें भगवान् पद षड्गुण ऐश्वर्य सम्पन्न स्वरूप, कोटि कोटि कामक तिरस्कार करे, ऐसे कमनीय लावण्यको धारण कर रहे प्रभुके स्वरूपको सिद्ध करता है। इस नामसे यह ही दर्शाया है॥३१॥

कोटि कामदेवके समान कमनीय प्रभुका स्वरूप श्रुतियोंमें कहीं भी सुननेमें नहीं आता, फिर भी तुम कैसे कहते हो? इस शंकाका निवारण करते नामका निवेदन करते हैं:-

सर्वोपनिषत्—तात्पर्य—गोचराय नमः॥३२॥

सर्व उपनिषदोंके तात्पर्य रूप दृष्टिगोचर हुए श्रीकृष्णको नमन।

सर्व उपनिषदोंके जो तात्पर्य “रसो वै सः” वह परमात्मा रस स्वरूप हैं। यह श्रुतिने ही निरूपण किया है। रसात्मक स्वरूप कोटि—कोटि कंदर्पके लावण्यरूप ही हो सकता है और करोड़ों कामदेव भी इस स्वरूपके आगे लज्जा पाते हैं। अथवा सर्वोपनिषदरूप श्रीब्रजसीमिन्तनियोंको बाहर फल रूपसे अनुभवमें आते—दृष्टिगोचर हुये रसात्मक स्वरूप। श्रुतियोंके लिए ही, श्रीगोपीजनोंके लिए ही आपने उस कोटिकंदर्प लावण्य स्वरूपको प्रकट किया। अथवा सर्व उपनिषदोंका तात्पर्य फलमें अर्थात् फलरूप रासलीलामें रहा हुआ है।

इस प्रकार सर्व उपनिषदोंके तात्पर्य रूप दृष्टिगोचर होनेसे यह लीला नित्य है। मात्र हमारे लिए इस लोकमें प्रकट करी है। इसीलिए ही कहा है कि “अत्रैव लोके प्रकट माधिदैवकमुत्तमम्” इस लोकमें उत्तम आधिदैविक चरित्र आपने प्रकट किया है।।३२।।

फलस्वरूपको जताने वाला नाम कहते हैं:—

गोपिका—रमणाय नमः।।३३।।

गोपिकाओंको रमण करानेवाले भगवान्का अभिवंदन।

अभी तक ईश्वर भाव आपमें रहा हुआ था। परंतु शरदऋतुसे प्रफुल्ल फूलोंवाली, परिपूर्ण चन्द्रमण्डलसे मंडित आधिदैविक रात्रियोंको देख आपने समस्त ब्रह्मधर्मोंका परित्याग कर नायक भावसे रमणकी इच्छा प्रकट करी। इसीसे आपने गोपिकाओंसे रमण किया।।३३।।

इसीलिए विलंबका सहन नहीं करनेसे यह कार्य साधनेके लिए योगमायाका आश्रय किया। इसका सूचन करता नाम कहते हैं:—

सकल—योगाधिपतये नमः ॥३४॥

सर्वयोगके अधिष्ठाता योगेश्वरको नमस्कार ।

सर्वयोगमात्रके अधिष्ठाता पति भगवान् हैं । अलग-अलग कार्यको साधनेके लिए उस योगमायाका आश्रय करते हैं । यह कार्य योगमाया ही सिद्ध कर सकती है । इसीलिए आपने उसका आश्रय किया । योगमाया ही वस्तुको जैसी होय वैसीकी वैसी दूसरे स्थान पर स्थापन कर सकती है । जैसे प्रभुकी आज्ञासे बलदेवजीको देवकीजीके उदरमेंसे रोहिणीजीके उदरमें स्थापन किया । इस समय भी इसमें उसकी स्वभाविकता होनेसे उसका ही आश्रय किया—स्वीकार किया है । इसीसे आप सर्व योगेश्वरोंके भी योगेश्वर हैं ॥३४॥

भगवान् ने नवीन मन रचा । लीलाके उपयोगी सर्व सामग्री भी नवीन रची, ऐसे काम भी नवीन ही प्रकट किया यह नाम कहते हैं:—

अलौकिक—पूर्णकाम—जनकाय नमः ॥३५॥

अलौकिक पूर्णकामको उत्पन्न करनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

जब रसके नायक भावसे आपको रमणकी इच्छा उत्पन्न हुई तब काम भी स्वरूपात्मक अलौकिक दिव्य—नवीन ही आपने प्रकट किया । भक्तजनोंमें भी वेणुद्वारा अलौकिक काम ही उत्पन्न किया । इसीलिए ही श्रीसुबोधिनीमें आज्ञा करी हैं कि “काम को उसके पितामह मनसे उत्पन्न किया, (मनसे संकल्प और संकल्पसे काम होता है)।” जिससे कामका पितामह—पिताके पिता मन” ऐसा कहा । किसी जगह “अलौकिक पूर्ण कामबीज जनकाय नमः” ऐसा पाठ हो तो

कामबीज — वेणुनादसे उत्पन्न करनेवाले ऐसा अर्थ करना।
कारण कि वेणुनाद कामजनक स्वयं ही है॥३५॥

भगवान्की रसरूपताका निरूपण कर उस रसके उद्दीपक भी स्वयं ही हैं। इस आशयको प्रकट करता नाम बताते हैं:—

आशा—पूरक—सत्यात्मकाम—दीपकाय नमः॥३६॥

आशाको पूर्ण करनेवाले सत्य आत्मरूप कामके दीपकका उद्दीपन करनेवाले चंद्ररूप श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम।

जब आपने दिव्य मन प्रकट किया उस ही समय आधिदैविक चन्द्र उदित हुआ। आपका मन यह आधिदैविक देवता चन्द्र है। यह चन्द्र रमणकी इच्छासे हुआ है। “गोपिका रमणाय नमः” इस नाममें इसका समावेश हो जाता है, परंतु उनका स्वरूप कथन करना चाहिए। इसीलिए यहां विशेष रीतिसे स्वरूपको दर्शानेवाले मूलमें “ककुभः करैर्मुखं प्राच्यां विलम्पन्” किरणोंसे प्राची—पूर्व दिशाके मुखको लेपन करता” ऐसा कहा। इस अर्थका सूचन होता है अथवा चर्षणीयोंकी आशाको, उनके शोकको दूरकर पूरा किया है। इसीसे भी वह आशापूरक चन्द्र है। चन्द्र उडु, नक्षत्रों, के अधिपति हैं। यह बात सही है, पर नक्षत्रके मध्यमें रहे हुए वह चन्द्र नहीं, कि जो सत्वर अस्त हो जाए। यह चन्द्र तो उदय पाकर आकाशके मध्यमें आकर वहां ही स्थिर हो जाते हैं, इसीलिए सत्यरूप हैं। रमण पूर्ण न हो तब तक उनका अस्त ही नहीं होता है वगैरह अलौकिक धर्म यहां उनमें दर्शानेमें आए हैं। लौकिक चन्द्र नहीं होनेसे ही वह रसके उद्दीपन भाव रूप हुये हैं॥३६॥

ऐसे चन्द्रको देख वेणुनाद किया। उसका गान सुन श्रीगोपीजन वहां पधारे। इसका सूचक नाम दर्शाते हैं :-

शृंगार विभावादियुक्ताय नमः ॥३७॥

शृंगारके विभावादि धर्मोंसे युक्त विभुका वंदन।

मुख्य रस जब उसके विभावदिक भेदोंसे युक्त हो, तब तक ही रह सकता है। आलंबन विभाव, उद्दीपन विभाव, स्थायी भाव वगैरह रसके धर्म हैं। यहां अलौकिक शृंगाररसमें श्रुतिरूप, श्रीमद्गोपीजन और रसात्मक प्रभु श्रीकृष्णके परस्पर आलंबनसे हुआ विभाव है। उसी तरह शरदऋतुके सौभाग्यसे सभी प्रफुल्लित मल्लिकायें जैसे झोटा खा रही हैं। इस वरदानमें दी हुई अलौकिक रात्रीयां तथा अलौकिक आधिदैविक स्वरूपात्मक चन्द्र यह उद्दीपन विभाव हैं। इस रसके नामसे सूचन किया है ॥३७॥

ऐसा करनेमें प्रथम प्रतिज्ञा करी थी वह ही कारण रूप हैं, यह कहते हैं:-

सत्यवाचे नमः ॥३८॥

जिनकी वाणी सत्य है, ऐसे प्रभुको प्रणाम।

“मयेमा रंस्यथा क्षपाः” इस श्लोकमें सूचन करे अनुसार वस्त्रहरण लीलाके प्रसंगमें आपने ब्रजकुमारिकाओंको रात्री वरदानमें दी थी। यह अपनी वाणीको सत्य करनेके लिए रमणका यह प्रसंग उपस्थित कर सर्व लौकिक रचना करी हुई हैं, यह अपनी प्रतिज्ञा सत्य करी। इसीलिए सत्य बोलनेवाले विभु यह आशय व्यक्त करते हैं ॥३८॥

गोपीजनोंके पधारनेके बाद धर्मसूचक नाम कहते हैं:

कामोन्मत्त—गोपांगना—मुक्तिदात्रे नमः ॥३६॥

काममें उन्मत्त हुई गोपांगनाओंको मुक्ति देनेवाले
मुकुन्दका वंदन ।

“निशम्य गीतम्” इस मूल श्लोकमें वर्णित अनंगवर्धक कामोत्पादक गान श्रवण करनेके साथ ही ऐसा अनंग वृद्धिगत हुआ कि श्रीगोपीजनोंकी उन्मादावस्था हुई, देहका भी अनुसंधान न रहा। ऐसी गोपांगनाओंको मुक्तिका दान करनेवाले “कृष्णगृहीतमानसा” इस श्लोकमें भगवान् ने उनके मनका ग्रहण किया ऐसा कहा। इससे मात्र मन ही नहीं, पर मन सर्व इन्द्रियोंमें मुख्य होनेसे सर्व इन्द्रियोंके सहित मन ग्रहण किया। “ब्रह्मैव सन ब्रह्माप्येति” ब्रह्मरूप हो तो ही ब्रह्मके पास जा सके, इसीलिए इन्द्रियोंके साथ मन प्रभुमें विलीन होने पर उनकी मुक्ति ही हुई। प्रभुने जिनको मुक्तिका दान किया अथवा प्रथम भक्तजनोंकी आत्मामें अपनी आत्माके द्वारा आनंदको पूरित किया; इसीसे उनकी मुक्ति हुई। क्योंकि मुक्तिमें आत्माके ही आनंदका अनुभव होता है, देह इन्द्रिय आदिको नहीं। परंतु यहां तो देह इन्द्रिय आदिके साथ आत्माको आनंद हुआ है, यह विशेषता है। प्रथम आत्माको आनंद हुआ, उसके बाद मन आदि सर्व इन्द्रियोंको आनंद हुआ, ऐसा होते ही कामादिक विषयोंका परित्याग हो गया। ज्ञानभक्ति आदि साधनों द्वारा महान परिश्रमसे मुक्ति होती है। यह मुक्ति यहां बाधकरूप कामसे ही हो गई है। इसीलिए “काम क्रोधम्” इस श्लोकमें काम क्रोध अथवा स्नेह वगैरहसे मेरे विषयमें तन्मय होनेवालेकी मुक्ति होती है, ऐसा कहा ॥३६॥

ब्रह्मको पानेके बाद उनके मनकी अभिलाषा इससे भी अधिक फल मिलनेकी थी। ऐसे अधिकारीकी परीक्षा करनेके लिए आगे कहते हैं:—

मुक्त्यधिक—फल—गोपी—मनो—मोहकाय

नमः ॥४०॥

मुक्तिसे अधिक फलके संबंधमें गोपीजनोंके मनको मोह करनेवाले मदनमोहनको नमन ।

मुक्तिसे अधिक ऐसे साक्षात् प्रभुके संबंधमें गोपीजनके मनको मोह देनेके लिए “वाचः पेशैर्विमोहयन्” इस श्लोकसे आरंभ कर “प्रतियात् ततो गृहान्” इस श्लोक पर्यन्त वचन कहे हुए हैं। भगवान्को भजन की जरूरत नहीं होती, कारण कि सर्वका लय होनेके बाद शेष स्वयं ही रहते हैं। इसीसे यह भजन कौन करे ? स्वयंसे पर कोई है ही नहीं। जिससे स्वयं भजन करनेवालेको प्रभु मुक्ति देते हैं, पर कोई समय भक्ति नहीं देते। इसीलिए गोपीजनोंको प्रथम मुक्ति दी है। दूसरा उत्तम फल अधिकार बिना नहीं देना चाहिए, यह मान कर “स्वागतं वो महाभागाः” इत्यादि निषेध वचन कहे, इस भावका सूचक यह नाम है ॥४०॥

यह गोपीजन पूर्ण अधिकारवान हैं। इसे दर्शानेवाला नाम बताते हैं:—

लोकवेद—सर्वधर्म—परित्यक्त—गोपी—सेवित—

चरणारविंदाय नमः ॥४१॥

लोक और वेदका त्याग करनेवाली गोपीजनोंसे जिनने चरणारविंद सेवन कराया है, ऐसे श्रीकृष्ण प्रभुको नमस्कार ।

गोपीजनने इस लोक और वेदके सर्व धर्मोंका परित्याग किया। केवल प्रभुपरायण ही जिनकी वृत्ति हुई। इसीलिए “सन्त्यज्य सर्वविषयास्तव पादमूलम्” हम सर्व विषयोंका परित्याग कर आपके चरणारविन्दकी शरण आई हैं। “का स्त्र्यङ्ग ते” कौन ऐसी तीन लोकमें स्त्री है कि जो आपके मधुर पदोंकी अमृतमय वेणुनादसे मोह प्राप्त कर आर्यचरित्रसे — सर्वधर्मसे चलायमान न हो? ऐसा निवदेन किया और आगे भी किंकरीणाम् ऐसा कहकर अपना सर्व रीतिसे दासत्व दर्शाया। दासत्वमें लोकवेदादिके धर्म रह ही नहीं सकते। भगवान्‌के चरणारविन्दकी सेवा ही उनका धर्म हो सकता है। इस नाममें यह सर्व आशय हैं॥४१॥

अन्तर्गृहमें ही फंसी हुई गोपीजनोंको प्रभुके संनिधान पधारनेमें अन्तराय था। इस अन्तरायको दूर करनेवाला नाम कहते हैं:—

भक्त—प्रतिबन्ध—निवारकाय नमः॥४२॥

भक्तके प्रतिबंधका निवारण करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

“जहुगुणमय देहम्” गुणमय देहका त्याग किया। इस श्लोकके अनुसार श्रीगोपीजनोंने यह अपनी देहका त्यागकर प्रभुके अंतरमें पधारे। इस रीतिसे प्रभुने उनके प्रतिबंध अन्तरायको दूर किया है॥४२॥

अलब्ध—रास—गोपी—सद्योमुक्ति—प्रदायकाय

नमः॥४३॥

जिनको रास प्राप्त हुआ नहीं, ऐसे गोपीजनोंको सद्यमुक्ति देने वाले मुकुंदका वंदन।

रासविलास जिनने प्राप्त किया नहीं, ऐसे गोपीजनोंको भगवान्ने ध्यान मात्रसे ही सत्वर मुक्ति प्रदान करी है। अन्तर्गृहगता गोपीजनोंको उनके पति पुत्रादिकोंने नहीं जाने दिया और गृहमें एकान्तस्थानमें बन्द कर रखा, इन गोपीजनोंको भगवद्विरह रूप अग्नि प्रगट होनेसे उनके अन्तरके पाप जल गये और भगवान्के स्वरूपको अन्तरमें पधराया। इससे पुण्य क्षीण हुए। इस रीतिसे पाप और पुण्यरूप कर्मके क्षय होनेसे उनकी मुक्ति हुई। लौकिक देह छूटी, फिर उनकी मुक्ति होकर अलौकिक देहकी प्राप्ति हुई और दूसरी सर्व गोपीजनोंसे प्रथम ही प्रभुके समीपमें अलौकिक देहको प्राप्त हुई हैं॥४३॥

परीक्षाके बाद वो भी रासमध्यमें स्थिति करने वाले हुई। इसका सूचक नाम कहते हैं:—

परीक्षित—गोपवधू—सेवित—चरणाय नमः॥४४॥

परीक्षा करे हुए गोपांगनाओंसे जिनके चरणोंका सेवन होता है, ऐसे श्रीगोपीजन वल्लभका अभिवंदन।

“पुरुषभूषण देहि दास्यम्” हैं पुरुषोंमें भूषणरूप पुरुषोत्तम अपना दासपना प्रदान करें। इस श्लोकके अनुसार प्रभुके पास दासत्वकी मांग करती उनकी सेवा करने लगीं। “तामि समेताभिः” उन सभी गोपीजनोंसे घिरे भगवान् नक्षत्रोंमें चन्द्रमाकी तरह दैदीप्यमान दिखने लगे। अथवा चारों बाजुओंसे ईक्षण करते गोपीजनों द्वारा जिनके चरणारविंदका सेवन होता है। इस तरह परीक्षा कर फिर “इतिविकलवित तासाम्” इसके अनुसार कहकर उनका हास्य किया। अत्यंत उत्कृष्ट अति उत्तम हास किया। ऐसा कर परिहासका ज्ञापन करनेके लिए अपनी अपेक्षाका सूचन करनेवाले प्रभु हैं और प्रथम हास्य कर

परिहास का ज्ञापन कर फिर प्रेमपूर्वक चारों तरफ अवलोकन करके ऐसी गोपांगनाओंका सूचन करनेके लिए परीक्षित पद है। इस प्रकारसे भगवान्का अवलोकन होनेके बाद हुआ, फिर उन गोपीजनको भी उन्हींका अवलोकन हुआ इसीसे चारों तरफसे देखनेकी इच्छा जिसके लिए हुई है। ऐसे वे गोपीजनोंको यहां ईक्षण—यह मुख्य विलास है। ऐसा कथन करनेसे उसके साथ दूसरे सभी विलासके अंगोंका कथन भी समझ लेना। इसीलिए “प्रियक्षणोत्फुल्लमुखीभिः” प्रिय प्रभुका निरीक्षण करनेसे प्रफुल्ल मुखवाली गोपीजन यह मूलमें कहा। इस आशयका यह नाम है ॥४४॥

इस अनुसार रमण प्राप्त करनेके बाद उनको लौकिक न्यायके अनुसार मद और मान हुआ। इसीसे अपनी आत्माको सर्व स्त्रियोंमें परम श्रेष्ठ मानने लगी। इस मानको छुड़ानेवाले नामका निर्देश करते हैं:-

निजजन-स्मयध्वंसन-स्मिताय नमः ॥४५॥

निजजनोंके गर्वका खण्डन करनेवाला मंदहास्य जिनका है, ऐसे श्रीमदनमोहनको नमन।

प्रथम “उदारहासद्विजकुन्ददीधिति” उदार हास्ययुक्त दंतरूप कुन्दपुष्पोंकी कान्ति जिसके मुखारविंदके ऊपर झलक रही है। ऐसे श्रीकृष्ण नक्षत्रगणमें चन्द्रके समान देदीप्यमान दिखते हैं। हास्य सहित दंत वह कुन्दपुष्प हैं। कुन्दपुष्प लाल होता है, होंठ लाल होते हैं, पर हास्यकी झलकसे वह सफेद हो गये। यह कुन्दपुष्पपना भी दांतोसे दर्शाया। इस स्नेहको काममात्रकी उपाधिवाला जतानेके लिए पहले उपाधि रहित स्नेह था, पर भगवान्ने रसशास्त्रमें सूचन करी हुई रीतिके अनुसार इस स्वरूपानंदको दान करनेके लिए उस सजातीय

कामकी उपाधिवाला स्नेह अभी उत्पन्न किया। ऐसा बतानेके लिए स्नेह रूप दांतोंका द्विजरूपसे कथन कर 'दीधित' पदसे उनका अत्यंत कांतिमानपना भी सूचन किया। श्रीमती स्वामिनियोंके निरंतर निरुपधि स्नेह ही हो तो खंडितादि भाव संभव न हों और ऐसा होनेसे दोनों परस्पर पूर्ण रसभोग भी असंभावित ही रहे। इसीलिए निरुपधि अंशका आच्छादन कर अपने कामकी उपाधिवाले स्नेहका संपादन किया। ऐसा होते ही लौकिक रीतिके स्नेहसे उसी प्रकारके रमण ऐसा सूचन हुआ, पूर्णमनोरथको प्राप्त करनेवाला रमण नहीं। जिससे उदासीनता —निरपेक्षतासे उनके संतोषके अर्थ ही रमण करते हैं, ऐसा कहा। इसीलिए 'एणाकइव' मृगांक चन्द्रकी तरह यह दृष्टांत दिया। चन्द्रकी समानता दर्शाकर लौकिक नायककी तरह विकारपना सूचन किया। यह मनोरथ पूर्ण होने पर भी अपूर्ण हुआ है और क्रमसे करने पर भी होता है, क्योंकि सदा पूर्ण ही हो ऐसा नहीं, इसे यहां भी जानना। ऐसा होनेसे प्रभुने हमको मात्र लौकिक रीतिसे ही स्वीकार करा हुआ है। इसीलिए उन श्रीगोपीजनोंको गर्व भी हुआ। जो केवल अलौकिक उनकी प्रपत्ति शरण होती तो मान संभव ही नहीं। उस मानका खण्डन करनेके लिए मंदमंद हास्य जिनको होता है ऐसे प्रभु मदनके भी मानको खण्डन कर उनको मुग्धमोह उपजानेके लिए मदनमोहन हों इसमें क्या आश्चर्य ?

प्रथम प्रभुका उदार—विशाल हास्य था। फिर भी पीछेसे मान उत्पन्न होने पर आपने उस हास्यका संकोच किया, उसको संकेल लिया। ऐसा करते ही उनका मान उतर गया। मान उतरा न हो तो अकस्मात् आपके अंतर्धान होनेके साथ ही उनको संताप कैसे उत्पन्न होए क्योंकि मानवती

वनिताओंको ताप होता ही नहीं। इसीलिए संदेह होता है कि मान उतर जाने पर भी भगवान् अन्तर्धान क्यों हुए? इसका प्रति उत्तर देते हैं।

प्रभु अन्तर्धान न हों तो उनको पूर्णरसका दान संभव ही नहीं हो। आपको तो श्रीगोपीजनोंको पूर्ण रसका दान करना है। उसका दान विप्रयोग रसका अनुभव हो तो ही हो सकता है, उसके बिना हो नहीं सकता। इसीलिए उनको प्रथम विप्रयोग रसका अनुभव कराया है। सब प्रकारसे शरणत्व सिद्ध नहीं हुआ इसीलिए इनमें मान हुआ है, फिर भी मद तो रहा हुआ ही है। इसीलिए पूर्ण शरण नहीं — आदर्शरूप दीनता प्राप्त नहीं हुई। वह अपनी आत्माको सर्व स्त्रियोंमें परम सौभाग्यमान मानने लगी। उस मदने सूक्ष्म रूपसे रहे हुए मानको मसल डालकर फिरसे परमकृपा — परम प्रसन्नता देनेके लिए आप तिरोधान हो गए। लौकिक रीतिसे मानका निवारण करे तो मान तो रहे ही। समूल मान मर्दन हो तो क्षण—क्षण मान प्रकट न हो, और अलौकिक रीतिसे रसदान करनेमें तो सर्वथा मानका लोप होना ही चाहिए। जिससे तिरोधान होकर सर्व रीतिसे उनके अंतःकरणमें प्रवेश कर सारे कार्य करनेमें समर्थ परमेश्वरने अलौकिक रीतिसे उस मानको निर्मूल कर डाला। इस नाममें जितने अंशसे लौकिक स्नेह स्थापन किया उतने अंशमें उनका मान मंदस्मितसे मर्दन कर डाला। विशेष अंशमें नहीं। ऐसे अभिप्रायका प्रतिपादन करनेवाला यह नाम है।।४५।।

अधिक अंशको शान्त करने के लिए और पुनः अनुग्रह कर प्रसन्नता दर्शानेके लिए आप तिरोधान हो गए। इसका सूचक नाम कहते हैं :—

कायिक तिरोभावित गोपीपुंजाय नमः ॥४६॥

कायासे तिरोहित हुए गोपीजनोंको जिनने विरह भाववाला बनाया ऐसे श्रीकृष्णको प्रणाम ।

आप कायासे अन्तर्धान हो गए, पर गोपीजनोंके अन्तःकरणमें प्रकट हुए अथवा भक्तोंके कायिक संबंधका आनन्द जो बाहर प्रकट था, वह तिरोधान हुआ । ऐसे प्रभुका तिरोभाव गोपीजनोंको देखनेमें आया. अतएव भावयुक्त बनाया है गोपीजनोंको जिसने ऐसे भगवान् हैं । ॥४६॥

एक स्वामिनीजी निर्दोष थे । उनको संगमें लिया यह कहते हैं:—

राधा—सहचराय नमः ॥४७॥

राधा सहित गमन करनेवाले राधावल्लभ प्रभुको नमस्कार ।

श्रीराधा प्रभुकी सहचरी हुई हैं, प्रभु भी उनके सहचर हैं । जैसी जिसकी प्रीति वैसा ही आप व्यवहार करते हैं । व्रत करनेवाले ब्रजकुमारिकाओंमें जो मध्यमें रहे हुए थे, वह श्रीराधा नामसे प्रसिद्ध हैं । उनको आप एकांतमें सहचर हुए, यह एकान्तमें प्रभुकी सहचारिणी हुई हैं ॥४७॥

तिरोधान हो जानेके बाद श्रीगोपीजनोंकी अवस्थाका ज्ञापन करते हैं:—

विरहव्याकुलगोपांगनान्वेषितमार्गाय नमः ॥४८॥

वियोगसे घबराती गोपांगनाओंको जिनका मार्गका शोध करनेमें आया है, ऐसे श्रीकृष्णको नमस्कार ।

प्रथम कहे अनुसार लौकिक रीतिसे करे हुए स्नेहकी निवृत्ति होनेसे अलौकिक शुद्ध स्नेह अंतरमें स्थित हुआ है। जो स्नेह होते ही संयोगदशामें भी असिंचन कारक हो तो आर्द्र होते ही संताप जनक होता है। प्रभुको दृष्टिसे निरखते हुए भी अत्यंत निकटपना न होनेसे संताप उत्पन्न करनेवाला होता है और यहां तो प्रभुका तिरोधानपना हुआ है, सर्वथा बाहर अदर्शन है। इसीलिए विशेष संताप उत्पन्न करें इसमें आश्चर्य ही क्या ? इसीसे विरहाग्निमें आकुल—व्याकुल बनी गोपांगनाओं द्वारा जिसके मार्गका अन्वेषण—शोधन होता है, ऐसे प्रभु 'अन्तर्हिते मानवति' यहां से आरंभ कर "एवं दर्शयन्त्यस्ताः" यहां पर्यन्त तकका यह नाम है।।४८।।

आपके साथ जो सहचरी थे, उनको मान हुआ यह कहते हैं।

ज्ञान—तुल्य—भक्त—भ्रान्ति जनकाय नमः।।४९।।

ज्ञान द्वारा समान भक्तको भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

"आत्मान् मेनिरे" इस श्लोकमें सूचन करें अनुसार सर्व गोपीजन स्वयं ही अत्यन्त मान पाने लगे, इसीसे प्रभु अन्तर्धान हुए थे। उसी तरह यह सहचरी श्रीस्वामिनीको भी हुआ। ये भी अपने मनमें सर्व गोपियोंको छोड़ मुझे ही भजते हैं। इसीलिए सर्वमें अधिक श्रेष्ठ हूं, ऐसा ज्ञान हुआ। इसीलिए यह भी सर्व गोपीजनके समान बने। उनका ज्ञान अन्य गोपिकाओं जैसा हुआ। यह वन प्रदेश अत्यंत रमणीय है। इसीसे स्वार्थके लिए वहां जा रहे हैं और कोई मेरे कामके लिए नहीं जा रहे। तो अन्यके लिए इतना मुझे श्रम किसलिए लेना चाहिए? ऐसा सहचरीको गर्व हुआ। इसीलिए भगवान्की

कृपाकी अनधिकारिणी हुई। प्रसाद अनुग्रह प्राप्त करनेके लिए अजीर्ण हुई। इसीलिए ब्रह्मादिकको मोक्ष देनेवाले देह इन्द्रियादिसे रहित परमानंद रूप श्रीकृष्णको कहने लगी कि “न पारयेऽहं चलितुम्” मैं चलनेमें समर्थ नहीं। आप जहां मन हो वहां ले जाओ, इसी से “स्कन्धमारुह्यताम्” ऐसा भ्रान्तिको उत्पन्न करनेवाला अशक्य वचन उच्चारण किया। इस आशयको दर्शाता यह नाम है ॥४६॥

उनके समीपमें से प्रभु अन्तर्धान हुए। उनकी भी मूर्छा तक पहलेकी गोपीजनोंके जैसी ही अवस्था हुई। इसीलिए इन सर्वके जीवन टिके रहे इसीलिए समीपमें यहां ही प्रभु हैं — प्रियतम हैं, यह बोध हुआ यह नाम बताते हैं :-

निकट—स्थिति—बोधकाय नमः ॥५०॥

समीपमें मेरी स्थिति हैं, ऐसा बोध करनेवाले प्रभुको वंदन।

“हा नाथ रमण प्रेष्ठ” इस श्लोकमें हे नाथ। हे रमण! हे प्रियतम! हे महाभुज आप कहां हो? ऐसा बोल आकुल व्याकुल होकर घबराते श्रीस्वामीजीके पासमें फिरते—फिरते अन्य गोपीजन आ पहुंचे। वह इनको देखने लगी। अपना सर्व वृत्तान्त उनको निवेदन किया। अर्थात् प्रत्येकको भी स्वयंके दोषकी स्फूर्ति हो गई कि हमारे ही दोषसे भगवान् दूर हुए हैं, अन्तर्धान हो गए हैं। बाकी यह प्रियतम तो हमारे निकटमें ही बसते हैं, ऐसा सर्वको बोध हुआ है। इसका सूचक यह नाम है ॥५०॥

अपने दोषको दूर करनेके लिए गुणगान यह ही एक साधन है ऐसा जानकर वह करने लगे :-

गोपी-वर्णित-निखिल-गुणाय नमः ॥५१॥

श्रीगोपीजनोंने जिनके सकलगुण गाये हैं, ऐसे श्रीगोपीजनवल्लभका अभिवंदन।

“जयति तेऽधिकम्” इस श्लोकसे आरंभ कर ‘यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहम्’ इस श्लोक पर्यन्त श्रीगोविन्दके यशोगानका सूचन करनेवाला यह नाम है ॥५१॥

गान करने पर भी शुद्धि नहीं हुई। इसका सूचन करता नाम कहते हैं :-

भक्त-शुद्धि-विलम्बनाय नमः ॥५२॥

भक्तोंमें शुद्धिका विलंब करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार।

भक्तरूप श्रीगोपीजनोंमें शुद्धिका विलम्ब करनेवाले प्रभु हैं। स्तुति करनेसे जितनी परीक्षा करनी चाहिए, उतनी सब करीं। स्नेहकी दोनों ही अवस्था उनमें स्थित हुई। मूर्छावस्थामें प्रलाप भी हुआ और स्वरूप स्थितिमें गुणगान होना चाहिए, वह भी सिद्ध हुआ। फिर भी आप प्रकट नहीं हुए यह उनकी शुद्धिमें विलम्ब हुआ है ॥५२॥

सर्वसाधन हीन हुए, तब दीनता प्राप्त हुई, इसलिए रुदन करने लगे। तब प्रभु उनके मध्यमें प्रकट हुए यह कहते हैं:-

दीन-कृपा-प्रकटित-रूपाय नमः ॥५३॥

दीनके ऊपर कृपासे जिनने स्वरूप प्रकट किया है, ऐसे श्रीगोकुलचन्द्रको नमन।

जब वह सर्व साधनसे हीन— निःसाधन होकर दीन बन गये, तब आपने दया विचार अपना स्वरूप प्रकट किया। इसीलिए ही कहा है कि “भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम्” भक्तजनोंको हरिको प्रसन्न करनेका एक मात्र साधन दीनता ही है। प्रकट होनेके बाद निरखनेके साथ ही “प्रीत्युत्फुल्लदृशो जाताः” सब प्रीतिसे प्रफुल्ल दृष्टि वाले बने, यह मूलमें कहा ॥५३॥

जैसे शरीर प्राण आनेसे जाग्रत होता है, वैसे ही प्रभुके मनमें सर्वका अभ्युत्थान हुआ, मन भी प्रसन्न बना, यह दर्शाते हैं:—

सर्व—मनो—नयनाह्लादकाय नमः ॥५४॥

सबके मन और नयनोंको प्रसन्न करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

बाहर आनंद प्राप्त करनेमें नयनोंका उपयोग, अन्तरमें आनंद प्राप्त करानेमें मनका उपयोग, दोनों यहां सार्थक हुए। मन कर्मप्रधान है, नयन ज्ञान प्रधान है। इसीसे ज्ञान और कर्म दोनों आनेसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय यह सर्व इन्द्रियोंको आनंद दर्शाया। “काचित् कराम्बुजम्” यहांसे आरम्भ कर “चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितः” यहां तक उस क्रियाका निरूपण इस नामसे हो गया ॥५४॥

आगे सन्देह दूर करनेके लिए प्रश्न किया वह नाम कहते हैं:—

गोपिका—वाक्य—विचारकाय नमः ॥५५॥

श्रीगोपिकाओंके वाक्योंका विचार करनेवाले विभुका वंदन ।

“मिथो भजन्ति” वगैरह श्लोकसे प्रभु श्रीगोपीजनोंके वाक्योंका विचार कर प्रत्युत्तर देते हैं। इसका सूचन करनेवाला यह नाम है।।५५।।

प्रथम प्रश्नसे सर्व व्यवस्था कहकर अपनी सर्वसे भिन्न ही व्यवस्था है। “नाहं तु सख्योः” हे सखियों — मैं तो तुम्हारा किसी भी प्रकारसे नहीं, पर सर्वसे भिन्न हूँ। इस श्लोकके अनुसार नामका निर्देश करते हैं:—

सर्वधर्म—निर्धारकाय नमः।।५६।।

सर्वधर्मको अत्यन्त धारण करनेवाले भगवान्का अभिवंदन।

अन्य विषयमें तो आत्माराम—आप्तकामादिरूप प्रभुकी व्यवस्था होती हैं। परंतु श्रीगोपीजनके संबंधमें वह नहीं। जो भगवत्प्रियाओंने प्रभुके लिए सर्वस्वका परित्याग किया था, उनके आगे प्रभु सर्वथा आधीन— वशीभूत रहे हुए हैं। उनके स्नेहके बदले स्वयं आधीन होकर वर्तन करें, तो भी नहीं दे सकें ऐसा मानते हैं। वहां सर्वधर्म धारण करनेवाले आप हैं।।५६।।

‘मया परोक्ष भजता’ इस श्लोकके भावको दर्शाते नामको कहते हैं:—

सर्वरसाभिज्ञाय नमः।।५७।।

सर्व रसमें अभिज्ञ— सर्वथा ज्ञानवान भगवान्को नमन।

यहां सर्व पद कहा है। इसीलिए संयोग और त्रिपयोगके जो अनन्त रसभाव उन सर्वसे यहां सूचन करते हैं। “प्रियाःप्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः” इस श्लोकसे प्रियके स्वरूपमें आविष्ट होनेसे प्रियाओंको रसकी अधिकता होनेसे पुंभावको

प्राप्त हुए। वह भी विपरीत भावका कथन किया है। इत्यादि सर्व रसोंके अभिज्ञ भगवान् हैं। इसीलिए स्वयंको वैसे रसका अनुभव हो और उनको (श्रीमद्गोपीजनोके अन्तरमें आनन्दका दान करनेके लिए “मया परोक्ष” परोक्षमें भजन करनेके लिए) — अपनी तरफ स्नेहवृत्तिको दर्शानेवाला मैं हूँ, इसीसे अंतर्ध्यान हुआ था। ऐसा कहकर सर्व रसकी अभिज्ञता सूचन की।

प्रथम काया और मनसे रसका अनुभव किया। अभीके प्रश्नसे वाचिक रसका अनुभव किया। इस प्रकार सर्व रसकी अभिज्ञता दर्शायी। यहांसे श्रीगोपीजन सर्वथा निर्दोष शुद्ध हो गईं। इसीलिए रासक्रीड़ाका आरम्भ होता है। वहांकी सर्वरसकी अभिज्ञता—जानकारपना अपने आप सिद्ध हो जाती हैं और सर्व रस जिनमें हैं, ऐसे रास उसमें अभिज्ञ—सम्पूर्ण ज्ञानवान्, जब तक गोपीजनोके मनमें भावपूर्वक सर्वका परित्यागकर चरणके मूलमें शरण आये हुए हमारा परित्याग कैसे करें ? ऐसा निश्चय न होय और संदेह रहा करता हो तब तक रसके समूह रूप रास सिद्ध ही न हो। ऐसे ज्ञानसे भगवान्ने प्रश्नोत्तर कर संदेह दूर किया। उसके बाद “तत्रारमत गोविन्दः” वहांसे आरम्भकर ‘कृष्णक्रीडितं वीक्ष्य’ इस श्लोक पर्यन्त जो रस कहे उन सर्व रसोंके अभिज्ञ प्रभु हैं। इस अनुसार आशयका सूचन करता यह नाम है।।५७।।

रासमण्डलाऽनेकरूपाय नमः।।५८।।

रासमंडलमें अनेक रूपधारी, रासबिहारी, श्रीहरिको नमस्कार।

“तासां मध्येद्वयोर्द्वयोः” दो—दो गोपीजनोके मध्यमें आपने उतने स्वरूप प्रकट कर रास रमण करा है। गोपीमण्डलमें मंडित शोभायमान् भगवान् मुख्य षोडश गोपीजनोमें अष्ट

स्वरूपसे प्रकट हुए। दोनोंके मध्यमें विराजमान होकर सर्वको समान मान तथा आनंदका दान दिया, यहां यह आशय स्पष्ट किया है॥५८॥

इस प्रकार नृत्य वगैरहसे पूर्ण रस उछलने लगा। सब गोपीजनमें प्रत्येकके साथ रमण किया, यह नाम दर्शाते हैं:—

उददीप्त—कामरस—पूरकाय नमः॥५९॥

उदीपन पाए हुए काम रसको पूर्ण करनेवाले रसिकोंके ईश्वरको प्रणाम।

नृत्य वगैरहसे उदीप्त हुए कामरसको परिपूर्ण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको जितने गोपीजन थे, उतने अपने स्वरूप कर उनकी सकल कामनाओंको पूर्ण किया। 'एवं परिष्कृग' यहांसे आरंभ कर 'कृत्वा तावन्तमात्मानम्' इस श्लोक पर्यन्तके आशयको दर्शानेवाला यह नाम है॥५९॥

अतिक्रान्त—मर्यादाय नमः॥६०॥

मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले श्रीहरिका वंदन।

मर्यादा — शास्त्रक्रमका अतिक्रमण करनेवाले प्रभु हैं। महासौरत प्रसंगमें शास्त्रमर्यादाका क्रम रह नहीं सकता। इसीलिए गजेन्द्रके समान लीला आपने स्वीकार करी है। कामशास्त्रमें दर्शाये हुए तिथिक्रमानुसार नायक नायिका विभागके अनुसार नियमपूर्वक रमण—सुरत प्रसंग हो तो मर्यादानुकूल कहा जाये, परंतु जब वहां वैसी मर्यादा रह न सकती हो और समुद्रकी तरह क्रीड़ा हो तो उसको महासौरत कहनेमें आता है। वहां शास्त्र नियम रह नहीं सकता ऐसा कहा॥६०॥

श्रीगोपीजनोंके उद्दीप्त कामकी पूर्ति हो गई। इसीलिए उनमें दीनता आई इसका ज्ञापन करनेवाला नाम कहते हैं:-

भक्तदैन्य—निवारकाय नमः ॥६१॥

भक्तजनोंके दैन्यका निवारण करनेवाले गोपीप्रिय भगवान्का अभिनन्दन।

अत्यन्त विहार करनेसे सुरत-क्रीड़ाके अंतमें उत्पन्न हुई दीनताका निवारण करनेवाले श्रीमदनमोहन “तासामतिविहारेण श्रान्तानाम्” अत्यन्त विहारसे श्रमिit हुए ब्रजसीमंतिनीयोंके बदनोको करुणा लाकर प्रेम पूर्वक पोंछ डाला, श्रमजलके बिंदुओंको दूर किया। ‘भक्तिदैन्य’ यह पाठ हो तो, भक्ति रूप दैन्य धर्मके प्रकारसे देखती थीं, उसका निवारण कर उनमें परमानन्दका स्थापन किया ॥६१॥

श्रम निवारण करनेके लिए जलक्रीड़ा करी इसका सूचन करते हुए बताते हैं:-

यमुना—कीर्ति—जनकाय नमः ॥६२॥

श्रीयमुनाजीकी कीर्तिको उत्पन्न करनेवाले यमुना विहारी प्रभुको प्रणाम।

आपने जल क्रीड़ा कर श्री यमुनाजीकी कीर्ति समस्त जगतमें प्रसारित कर दी। श्रीमदाचार्यचरण श्रीयमुनाष्टकमें आज्ञा करते हैं कि ‘इयं तवं कथाधिका’। श्रीयमुनाजी सबमें आपकी कथा तो अत्यंत अधिक है। कारण कि सकलगोपीजनोंके संगमके समय उत्पन्न हुए श्रमके जलविंदुओंसे आपका संगम हुआ है। अर्थात् इस तरह आप परम पवित्र और सकल परिश्रमको दूर करनेवाले हैं। इस

प्रकार श्रीयमुनाजीकी कीर्ति आपने बढ़ाई है। यहां तक रासलीलास्थ नामोंका निरूपण किया।।६२।।

श्रीगोपीजनोंको फल सहित निरोध बताकर जिनका निरोध नहीं हुआ उनका निरोध करना आवश्यक है। इसका सूचन करते नामका निवेदन करते हैं :-

सुदर्शन—मोचकाय नमः।।६३।।

सुदर्शन नामक भक्तको मुक्त करनेवाले मुकुन्दको नमस्कार।

प्रभुके भक्तको अन्य भजन सर्वथा नहीं करना चाहिए। फिर भी वह करनेमें आये तो क्लेश होता ही है। जिससे श्रीनंदरायको शिवरात्रि करनेसे क्लेश हुआ था, सर्प निगल गया था। भगवान्ने उनको मुक्त किया और सर्प भी मुक्त होकर सुदर्शन रूप हुआ। सर्प योनिमेंसे मुक्त करनेवाले प्रभु हैं। “पादस्पर्श हतोशुभः” आपके चरण कमलके स्पर्श मात्रसे ही जिसके अशुभ शांत हो गए थे उनका कल्याण हुआ। इस नाममें अन्यधर्म निवृत्तिपूर्वक श्रीनंदरायजीका निरोध दर्शाया।।६३।।

बलदेवाभीष्ट—दात्रे नमः।।६४।।

श्रीबलदेवजीको अत्यंत इष्ट वस्तुका दान करनेवाले बलदेवके अनुजको नमन।

यहांसे पुष्टि मर्यादामार्गीय भक्तका निरोध करने केलिए प्रवृत्तिरूप नामलीलाका कथन करते हैं। यह लीला वेद स्वरूप श्रीबलदेव द्वारा हो सकती है। इसीलिए उनके सहित वह लीला कर उनको अत्यंत इच्छित पूर्ण किया। इसका सूचन करता यह नाम कहा है।

शंखचूड—घातकाय नमः ॥६५॥

शंखचूड नामके दैत्यका घात करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

प्रवृत्ति दोषरूप है। इसीलिए दैत्यका आगमन हुआ उसका वध कर के उस प्रवृत्तिको दोष रहित किया। इसका सूचन इस नामसे करते हैं। इस प्रकार यह प्रवृत्ति निर्दोष होनेसे उसका फलप्रकरणमें समावेश किया है ॥६५॥

निवृत्ति रूप लीलाका सूचन करनेवाला नाम कहते हैं:-

गोपीक्लेश—नाशक—गुणार्णवाय नमः ॥६६॥

श्रीगोपीजनोके क्लेशका नाश करनेवाले गुणके सागररूप प्रभुका वंदन ।

“गोप्यः कृष्णे वनं याते” गोपीजन श्रीकृष्ण जब वनमें पधारते तब उनके पीछे अपने चित्तको दौड़ाकर कृष्णलीलाओंका ऊंचे स्वरसे गान करके अपने दिवसके दुःखोंको दूर करते थे। इस श्लोकसे आरंभ कर प्रभुकी लीलाओंका गान गोपीजनोंने किया है। इस आशयको सूचन करता पूरा अध्यायके रहस्यरूप यह नाम है, ऐसा समझना ॥६६॥

स्वरूपका कार्य गुणोंसे कैसे हो? इस संदेहको शांत करता नाम कहते हैं:-

स्वसमान—गुणाय नमः ॥६७॥

स्वरूपके समान गुणवान भगवान्का अभिवंदन ।

जैसा स्वरूप वैसा ही गुण। फिर भी उनमें इतनी विशेषता है, गुणोंके द्वारा आन्तर रमण होता है, स्वरूप द्वारा बाहर रमण होता है। उसमें आंतर रमण परम फलरूप “आन्तुर तु परम् फलम्” यह महाप्रभुजीकी आज्ञा करी हुई होनेसे आंतर रमण ही विशेष है। आंतररमण गुणगान द्वारा सिद्ध होनेसे गुणोंका महान उत्कर्ष है। प्रभु सर्वके जीवनदाता हैं। इसीलिए गुणोंका उत्कर्ष विशेष है। श्रीगोपीजन दिवसमें गुणगान कर आंतरमें प्रभुका रमण प्राप्त करती थीं। इसीलिए भी गुणोंका उत्कर्ष विशेष है। बहिःरमण करनेसे आंतरिक रमण परम् रमणीय फलरूप हैं। इसीसे यह नाम ‘रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का’ इस श्लोकके आशयको व्यक्त करनेवाला जानना ॥६७॥

भगवान्के गुण अनंत और अगाध हैं । उनमें किन गुणोंका गान दिवसमें गोपीजन करते थे यह दर्शाते हैं:—

सर्ववशीकरण—द्वादशविध—चरित्राय नमः ॥६८॥

सर्वको वशमें करने वाले १२ प्रकारके चरित्र जिनके हैं, ऐसे नंदनंदनका वंदन।

सर्व देवांगना वगैरह स्त्री मात्रका वशीकरण करनेके लिए १२ प्रकारके जिनके चरित्र हैं। सम्पूर्ण दिवसमें बारह मुहूर्तमें प्रभुके एक—एक चरित्र होनेसे बारह प्रकारके चरित्र हुए। इन चरित्रोंको २४ श्लोकसे गोपीजन गान करते हैं। इतने मात्र एक ही दिवसके चरित्र होनेसे वह अनंत हैं। इसीलिए उन्हें प्रथम सागररूप दर्शा दिया है। इस नाममें युगलगीतका समावेश है ॥६८॥

यहां तक फल प्रकरणके नाम कहे। उसमें निवृत्ति रूप भजन मार्ग प्रकट किया। जिससे सर्व ब्रजभक्त सर्व लौकिकवैदिक धर्मोंका परित्याग कर भगवत्परायण हो गए।

अब ३३ में अध्याय (तीन प्रक्षिप्त अध्याय छोड़कर) से आरम्भ कर राजस प्रकरणके नामोंका निरूपण करते हैं। पहले इस प्रकरणमें प्रद्युम्न रूप भगवान्‌के जो वसुदेवके सुत हैं। यह सिद्ध कर वंशवृद्धिरूप सुष्टिका कार्य राजसलीलासे किया। इसीसे राजसभक्त संबंधवान और असंबंधवान यह दो प्रकारके हैं। यह सर्व निरोध चार प्रकरणसे होता हैं। प्रकरणके प्रारंभमें राजसलीला करनेके लिए प्रवृत्तिरूप कर्ममार्ग स्पष्ट किया है। उसमें लौकिक अरिष्ट विघ्न उपस्थित हों तो कर्म मार्गकी प्रवृत्ति हो नहीं सकती, इसीलिए अरिष्टरूप दैत्यका नाश किया। यह नाम कहते हैं:-

वृषभासुर—विध्वंसिने नमः ॥६६॥

वृषभासुर दैत्यका विनाश करनेवाले वासुदेवको नमस्कार।

स्वरूपसे ही दैत्य वृषभरूप था। इसीलिए उसको वृषभासुर कहा है। सही रूपसे देखें तो वह अरिष्टरूप है। इसीसे अरिष्टासुर भी कहा जाता है। केवल पापरूप और धर्ममें प्रतिबंधक था। शरीर नष्ट हो जाये तो शारीरिक धर्म कर नहीं सकते। इसीलिए उसके शरीरका नाश करनेसे कर्ममार्ग प्रवृत्त होगा। ऐसा जान प्रभुने उसका नाश किया और अब तक प्रमेयमार्ग ही प्रवर्तित था। अब प्रमाणमार्ग ही इस राजस प्रकरणमें मुख्य कहना है। जिससे उसके अनुकूल राजसमार्ग प्रकट करते हैं यह इस नाम से सूचित किया। पहले नारदजीके आगमनके साथ भक्तिमार्गकी भूमिका अदृश्य

हुई, ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग प्रवृत्त हुआ। यह दोनों ज्ञानकर्ममार्ग रूप नारदजीके हैं। यह सब श्रीसुबोधिनीमें निरूपित किया है। यह अति विस्तार होनेके कारण बता नहीं रहे हैं। सुज्ञ जिज्ञासुओंको वहांसे जान लेना ॥६६॥

अरिष्ट वधके बाद गोकुलमें बलभद्र सहित प्रवेश करनेका कथन है। इसीसे प्रमाणयुक्त क्रियाशक्ति सहित आप श्रीमद्गोपीजनोके नयनोंके उत्सवरूप हुए इसीसे उन ब्रजांगनाओंके नेत्रकमलोंके तारे रूप हुए। इस प्रकार उनका निरोध सिद्ध हुआ होनेसे यह प्रकट करे हुए स्वरूपका प्रयोजन नहीं, यह विचार कर राजसलीला करनेकी इच्छा प्रभु की है, यह जानकर नारदजीने कंसको सर्व वस्तुस्थितिका बोध किया। इसका ज्ञापन करनेवाला नाम प्रकट करते हैं:—

नारदादि—बोधिताकिलष्ट—कर्मणे नमः ॥७०॥

नारदजीने आदिसे लेकर सर्वकर्म जिसके बोधन किये हैं, ऐसे भगवान्को नमन।

पहले गोकुलमें रहकर प्रभुके करे हुए सर्व कर्म नारदजीने कंसको समझाए और यह ही देवकीजीके अष्टम गर्भरूप कृष्ण हैं, जिनने तुम्हारे भेजे हुए सारे राक्षसोंका विध्वंस कर डाला। वसुदेवने अपने मित्र नंदरायजीके यहां उनको रखा है। यह अब तकका सर्व वृत्तांत जता दिया। 'अरिष्टे निहते गोष्ठे' वहांसे आरम्भ कर "न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै" श्लोक तकके आशयको दर्शानेवाला यह नाम है ॥७०॥

नारदजीका कथन सुनकर राजाकंसको अत्यंत दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई और वसुदेवको मारनेमें प्रवृत्त हुआ, तब नारदजीने उसको रोका। भगवान्की इच्छासे ही यह होनेसे रुका अन्यथा

तो नारदजीका कथन मान्य ही नहीं करें, ऐसा वह दुराग्रही था। इस वृत्तान्तका सूचक नाम सूचित करते हैं।

दुष्ट—दुर्बुद्धि—नाश—हेतवे नमः ॥७१॥

दुष्टकी दुर्बुद्धिका नाश करनेके कारणरूप देवकीनन्दनका अभिवन्दन।

दुष्ट कंसकी वसुदेवका वध करनेकी उत्पन्न हुई दुष्ट बुद्धिको नारद द्वारा रोकनेवाले प्रभु हैं। “निशम्य” यहांसे आरंभकर “निवारितो नारदेन” यहां तकके तात्पर्यको दर्शानेवाला यह नाम है ॥७१॥

दुर्बुद्धि दूर कर वसुदेवको बंदीखानेमें डालनेका ज्ञान उत्पन्न किया। इस आशयको स्फुट करनेवाला नाम दर्शाते हैं:—

शिष्ट—ज्ञानदीपकाय नमः ॥७२॥

शिष्ट ज्ञानके दीपक रूप प्रभुको प्रणाम।

वध करना यह अशिष्ट व्यवहार है। आयुध लेकर सामने युद्ध करने आए उसका नाश हो यह न्याय है। वसुदेव कंसका ध्वंस करनेके लिए तत्पर नहीं होने पर भी उनका वध करनेके लिए कंसने इच्छा करी। परंतु भगवान्‌ने उसमें नारद द्वारा शिष्ट ज्ञान उत्पन्न किया। और नाश करनेके बदले बंधन करनेके लिए तैयार हुआ। अपनी दृष्टिसे राजद्रोहीको बंधन देना, यह शिष्ट प्रणाली है। यह ज्ञान दुष्ट कंसमें नारद द्वारा प्रभुने ही उत्पन्न किया इसीलिए “तत्सुतौ मृत्युमात्मनः” वह दोनों वसुदेवके पुत्र मेरी मृत्यु हैं, ऐसा जान लोहमय पाशोंसे वसुदेवका बंधन किया, काराग्रहमें डाला। नारदजीके एकांतके बताए हुए वृत्तान्तको कंसने जाना। उसने सारे आप्तजनोंको

बताया और केशीदैत्यको ब्रजमें भेजा। मुष्टिक चाणूर वगैरह महामल्लोंको सूचना दी, धनुर्याग करवानेकी आज्ञा दी। उस निमित्तसे ब्रजमें श्रीकृष्णको आमंत्रण देनेके लिए अक्रूरजीको भेजा। यह पूरा ज्ञान भी भगवद्‌इच्छासे ही कंसको प्रकट हुआ। केशी वगैरह दैत्योंको भी इसके अनुसार आचरण करनेका ज्ञान हुआ, उनको भी भगवद इच्छासे ही जितना प्रयोजन है, उतना ही ज्ञान प्रभु प्रेरणासे ही प्रकट हुआ। इसीलिए यह सर्व शिष्टज्ञानके प्रदीपक प्रभु ही हैं। “प्रतियाते देवर्षो” यहांसे आरम्भ कर “एवमादिश्य चाक्रूस्म ” इस श्लोक पर्यन्तके सर्व अभिप्रायको दर्शाता यह नाम है। ॥७२॥

केश्यादि—महादुष्ट—निबर्हणाय नमः ॥७३॥

केशी वगैरह महादुष्ट दैत्योंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णको नमन।

अब तक स्वच्छंदचारी दैत्य अपने आप ही आकर उपद्रव करते थे। अब तो खास कंसकी आज्ञासे ही आये हुए हैं। “केशी तु कंसप्रहितः”— कंसके भेजे हुए केशी दैत्यसे यह स्पष्ट है कि कंसके भेजे होनेसे यहां आया है। केशी आदि—व्योमासुर चाणूरादि सर्वका विनाश करनेवाले हैं। इस स्थलमें केशीका ही नाश किया है, पर आगे दूसरोंका भी नाश ही होना है। इस आशयसे आदि पद कहा है। अथवा केशीदैत्य आदिसे ही महादुष्ट था। उसका नाश करनेवाले ऐसी भी योजना हो सकती है। ॥७३॥

इस प्रकार ब्रजका सर्वकार्य सम्पन्न हुआ। इसीलिए नारदजी ब्रजमें आए। इसका बोधक नाम बताते हैं:—

नारदादि—वन्दित—चरणाय नमः ।।७४।।

नारदजीने प्रथम वंदन किए हैं चरण जिनके, ऐसे
श्रीयशोदानंदनका वंदन ।

नारदजीने आदिमें अपने अपराधकी क्षमा मांगी ।
चरणारविंदमें वंदन कर विनती करी होनेसे यह नाम उपस्थित
हुआ । “देवर्षिरूप— सङ्गम्य” यहांसे आरम्भकर “एवं यदुपति
कृष्णम्” इस श्लोक पर्यन्तका तात्पर्य दर्शानेवाला यह नाम है ।
नारदजीने प्रभुको विनती करी । यह किसीको भी जाननेमें नहीं
आया । केशीदैत्यको मार कर ब्रजको सुखी किया । इतना ही
मात्र ब्रजवासियोंको जाननेमें आया ।।७४।।

एक दिन प्रभुके बिना गोप बालक वनमें गए, वहां चोर
और चोरपालकी क्रीड़ा करते हुए व्योमासुर आया, उसको मारा
यह नाम बताते हैं:—

व्योमादि—दुष्ट—पीड़ित—गोपगोपीरक्षकाय

नमः ।।७५।।

व्योमासुरसे पहले दोषयुक्त होकर पीड़ित हुए गोप
और गोपीजनोंका रक्षण करनेवाले प्रभु श्रीकृष्णको
नमन ।

मयपुत्र महामायावी व्योमासुरने शुरुमें आकर अपनी
मायासे दोषयुक्त करे हुए अपने और परायेके विवेकसे शून्य
बने हुए हैं और उससे पीड़ा पाते गुफामें फंसाये हुए
गोपबालकोंका रक्षण भगवान्ने किया । जो उनका रक्षण नहीं
करा होता तो मृत्यु पाए हुए बालकोंकी माताएं भी खेद पाकर
मृत्यु पातीं । जिससे वह बालकोंका रक्षण कर उनकी

माताओंका भी रक्षण किया। ढांकी हुई गुफाके द्वारमेंसे उनको बाहर लाकर गोकुलमें आए। इस अनुसार दोनोंका संरक्षण कर उनकी अपनेमें आसक्ति और अपने सिवाय अन्यमें विरक्ति निरूपण करी जिस तरह लीलास्थ आसक्ति गोपीजनोंकी भी सर्वत्र विरक्ति पूर्वक अपनेमें आसक्ति दृढ़ करी है। विवरणमें भी यह महाप्रभुजी उपदेश करते हैं। निरन्तर वैराग्यसे ज्ञानपूर्वक भगवद्भावकी स्फूर्ति करनेसे मथुरानगरमें गमनके समयमें भी उन गोपीजनोंकी रक्षा करी। इन दोनों अर्थोंका समर्थन करनेवाले नामका निरूपण किया है। ।।७५।।

श्रीमद्गोकुलमें फलरूप —मानसी सेवारूप सद्भक्ति स्थापन करनी है। इसीसे अक्रूरजीके आगमनका निरूपण करते हैं:—

सद्भक्तिहेतवे नमः ।।७६।।

सद्भक्तिके हेतु रूप भगवान्को नमस्कार।

इस ३५ अध्यायमें भक्तिमार्गका स्थापन करनेमें आया है। “अक्रूरागमन भक्तिः फलं चैव हि मानसम्” अक्रूरजीका आगमन —भक्तिरूप है और उनके मनमें भगवत्स्वरूपके भावकी स्फुरणा हुई —मानसीका सेवन हुआ, यह फल है। अक्रूरजीको इस सद्भक्तिका दान करनेवाले प्रभु हैं। “सात्त्विकश्चेद— भिमुखस्तदा भवति भक्तिमान्”। अन्यथा “दैत्य संसर्गं स्तब्धा भक्तिर्भवेद् ध्रुवम्” जब सात्त्विकभाव प्राप्त कर प्रभुके सम्मुख हो तब भक्तिमान होता है, नहीं तो दैत्योंका संग होनेसे भक्ति होय तो वह भी स्तब्ध हो जाती है। परंतु संसर्ग छूट जानेसे “गच्छन् पथि महाभागः” महाभाग्यवान अक्रूरजी मार्गमें जाते जाते कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णमें परमभक्तिको प्राप्त हुये और इसके अनुसार विचार करने लगे। इस श्लोकके

भावका प्रकट करता यह नाम है। दैत्योंका संसर्ग छूटने पर भक्ति उत्पन्न हुई। परंतु इन सबका परम कारण तो भगवान् ही हैं। इसीसे भक्तिके हेतुरूप हैं ॥७६॥

अक्रूरजीके निरोधका ज्ञापन करने वाला नाम कहते हैं:—

अक्रूरादि—भक्त—मनोरथ—परिपूरकाय नमः ॥७७॥

अक्रूर आदि भक्तोंके मनोरथको परिपूर्ण करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

इस प्रकरणमें अक्रूरजी आद्यभक्त हैं। उनको मार्गमें आते जो जो मनोरथ थे, उन सर्व मनोरथोंको प्रभुने पूर्ण किया। “किं मयाचरितम्” यहांसे आरंभ कर “गृहीत्वा पाणिना पाणिम्” यहां तकके सारे आशयको स्फुट करता यह नाम है। जब कि अक्रूरजी सर्वथा भक्त ही थे, फिर भी असुर समागम होनेसे भक्ति तिरोहित हो गई थी। वह प्रभुका सानिध्य प्राप्त करके प्रकट हुई। पहले भक्त हो फिर प्रभु प्राप्तिका मनोरथ करे, उन—उन मनोरथोंको पूरा करनेवाले प्रभु होते हैं। उसमेंसे आधिदैविक अक्रूरजीको मुक्तिका ज्ञापन करनेवाले प्रभु हैं। इसीलिए यहां परि उपसर्ग कहनेमें आया है ॥७७॥

अक्रूरजीको भगवत्प्राप्ति हुई। उनको बलदेव सहित अपने गृहमें ले गए। अनेक प्रकार सत्कार कर अत्यंत मान दिया। उनको कंसका सर्ववृत्तान्त जताया। यह सुनकर नंदादि गोपोंको मथुरानगर के उत्सवका दर्शन करनेके लिए कल जाएंगे, यह आज्ञा करी। यह नाम कहते हैं:—

नन्दादि—गोप—मथुरागमनोत्सवहेतवे नमः ॥ ७८ ॥

नंदादिगोपोंके मथुरा जानेमें हेतुरूप नंदकिशोरको नमस्कार ।

कौतुक होनेसे यात्रामें उत्सव करनेमें आता हैं। उस उत्सवके कारणरूप श्रीकृष्ण हैं। क्योंकि उनकी बुद्धिमें प्रेरणा करनेवाले आप ही हैं। “श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णः” यहांसे आरंभ कर “एवमाघोषक्षत्ते” इस श्लोक पर्यन्तका यह नाम है। ॥७८॥

यहां तक तामस भक्तोंका निरोध जैसे करना चाहिए, वैसे किया। अब आगे राजस भक्तोंका निरोध करनेके लिए, उनका दुःख दूर करनेके लिए श्रीकृष्ण कालात्मा रूप हुए हैं। यह दोनों जन भी शत्रुके वीरोंका विनाश करनेके लिए उन कार्योंके अनुकूल हुए हैं। मूलमें कहा है कि “श्रुत्वाऽक्रूर वचः कृष्णः” अक्रूरजीके वचन श्रवण कर दूसरे वीरोंको मारनेवाले श्रीकृष्ण और बलदेवने हास्य कर राजाकी गुप्त आज्ञा पिताको जताई इस आशयको स्पष्ट करना, उस नामको बताते हैं:—

भक्तदुःख—मूलोच्छेदकाय नमः ॥७९॥

भक्तोंके दुःखके मूलरूप कंसका उच्छेद करनेवाले वसुदेवनंदनका वंदन ।

भक्तरूप मातापिताके अथवा समस्त भक्तजनोंके दुःखका मूलभूत राजाकंस है। उसका ध्वंस करनेसे शाखा जैसे जरासंधादि सर्वका विनाश सहज हो जाएगा। यह विचार कर दुःख वृक्षके मूलरूप कंसका ध्वंस करनेमें तत्पर हुए। अथवा भक्तोंके दुःखदायी सर्व दुर्जनोंके मूलरूप ही हैं। इसीसे कंससे आरंभकर क्रमसे सारे दुष्टोंका विध्वंस करनेवाले भगवान् हैं। इसीलिए आप मथुरामें पधारें हैं। ॥७९॥

मथुरामें जानेका निश्चय होनेके बाद गोपांगनाओंको अत्यंत दुःख होने लगा। महान दीनता सिद्ध हुई। इसका सूचन करता नाम कहते हैं:-

गोपिका-मनःकार्पण्य-शील हेतवे नमः ॥८०॥

गोपिकाओंके मनके दीनके स्वभावके कारणरूप भगवान्का अभिवंदन।

प्रभुका विप्रयोग हुआ। यह होनेसे उनके अंतःकरणमें स्वाभाविक दीनता प्रकट हुई। दीनता यह भक्तिकी अन्तिम अवस्था हैं। अब तक तो दिवसमें विरहसे दीन बन जाती। सायंकालमें वनमेंसे पधारते प्रभुके दर्शनसे संगम प्राप्त कर आनंद होता था। अब तो वह भी नहीं होता। दिवस और रात्रि विरहावस्थामें ही रहना पड़ता। दिवस कैसे जाता, रात्रिमें कैसे रहतीं? ऐसी अत्यन्त पीड़ाएं होने लगीं। अहिर्निश अत्यंत झुलसनेसे दृढ़ भक्ति सिद्ध हो जानेसे उनका सम्पूर्ण अपनेमें निरोध हो इसीलिए वियोग प्राप्त कराकर प्रभुने दीनताका दान किया। दिन-रात विप्रयोग दशामें उस लीलाके सहित अंतरमें प्रियतम प्रभुका प्राकट्य हुआ और बाहर भी वैसा प्रसंग हो, ऐसा निशदिन अनुभव करनेसे भक्तजनोंकी वैसी ही स्थिति रहे, ऐसा करनेसे सुदृढ़ भक्ति सिद्ध हो और आगेका कार्य भी हो। यह विचार कर ही भगवान् ब्रज-सीमंतिनीयोंको दीनताके कारण रूप हुए हैं। 'गोप्यस्पास्तदुपश्रुत्य' यहांसे आरंभ कर "विशोका अहनी निन्युः" इस श्लोक पर्यन्तके रहस्यको दर्शानेवाला यह नाम है ॥८०॥

इस अवस्थामें गोपीजनोंका जीवन कैसे टिका ? यह दर्शाते हैं:-

गोपिका—विरह—नाशक—वाक्य—पुञ्जाय

नमः ॥८१॥

गोपिकाओंके विरहका विनाश करनेवाले वाक्य जिसके हैं ऐसे श्रीमथुरेश प्रभुको प्रणाम ।

“दूत द्वारा मैं आऊंगा” यह “सान्त्वयामास सप्रेमैः” वगैरह वाक्योंसे भगवान्ने गोपीजनोंको सान्त्वना दी। यह ही उनके जीवन रूप हुई। प्रभु पधारेंगे, इस आशासे ही उनका जीवन टिका रहा ॥८१॥

उसके बाद रथके ऊपर बैठकर आगे पधारे। यमुनाजीके किनारे पर जलपानादि कर आप रथ पर विराजमान हुए। जब अक्रूरजी स्नान करनेके लिए तत्पर हुए, तब जलमें भगवान्का दर्शन हुआ, तब संदेह हुआ। इस संदेहको प्रभु ने दूर किया, यह बताते हैं:—

भक्त— संशयच्छेदकाय नमः ॥८२॥

भक्तकेसंशयका छेदन करनेवाले भगवान्को नमस्कार ।

भक्त अक्रूरजीके मनमें लौकिक भावसे रथमें स्थित भगवान् हैं, यह ज्ञान रहा हुआ है। परंतु जलमें उनका स्वरूप देख संशय हुआ कि ये सही कि बाहर रथमें रहे हुए सही? प्रभुने अपने अलौकिक माहात्म्यका ज्ञान कराकर स्वरूपका दर्शन देकर उनके इस संशयका नाश किया। यह नाम “अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य” यहांसे आरंभकर “गिरा “गदगदया स्तौशीत्” पर्यन्त तकके तात्पर्यका सूचन करनेवाला है ॥८२॥

कैसा स्वरूप दर्शाकर संशय दूर किया यह दर्शाते हैं:—

व्यपिवैकुण्ठ—वासिने नमः ॥८३॥

व्यापि वैकुण्ठमें बसनेवाले शेषशायी विष्णुको नमन ।

अपने स्वरूपके सहित व्यापिवैकुण्ठका दर्शन कराया। मायाका अपहरण किया, तब ही उनके स्वरूपका दर्शन अक्रूरजीको हुआ। उनने भी परम प्रेमपूर्वक प्रभुकी प्रार्थना करी॥८३॥

वैसे प्रभुके दर्शनसे अक्रूरजीने जो स्तुति करी उसका नाम कहते हैं:—

अक्रूरादि—भक्तस्तुतानन्त—गुणाय नमः॥ ८४ ॥

अक्रूर हैं आदि जिनके ऐसे भक्तजनोंने स्तुति करी है जिनके अनन्तगुणोंकी, ऐसे प्रभुको प्रणाम।

श्रीयमुनाजीके जलमें भगवत् दर्शन प्राप्त होने पर तो दूसरे भक्त जैसे प्रभुका स्तुति करते थे, वैसे अक्रूर भी प्रभुकी स्तुति करने लगे। सर्व स्तुति करनेवाले भक्तोंका संग्रह हो इसीलिए यहां आदि पद रखनेमें आया है। “नतोस्म्यहं त्वाखिल हेतु हेतुम्” इस श्लोकसे प्रारम्भ कर “ऋषीकेश नमस्तुभ्यम्” पर्यन्तकी स्तुतिके आशयरूप इस नामका निर्देश करा है॥ ८४ ॥

कंसकी प्रेरणासे बुलाने आये हुए अक्रूरको ऐसे अलौकिक दर्शन कैसे हुए? भगवान्ने भी कैसे दर्शन दिये? यह बताते हैं:—

सत्यप्रतिज्ञाय नमः ॥ ८५ ॥

सत्यप्रतिज्ञा जिनकी है, ऐसे भगवान्का अभिवंदन।

यद्यपि अक्रूरजी कंस दैत्यकी प्रेरणासे आये हुए असुर संबंधवान थे, तदपि पहले मथुरामेंसे आते भगवान्ने अपने प्रमेयबलसे ही मूल भक्त होनेसे अपनी तरफ उनका आकर्षण किया। उनमें भक्तिका गूढ़ रहा हुआ अंकुर प्रकट होकर

वृद्धिगत होने पर प्रभुके संबंधी अनेक विध मनोरथ होने लगे और प्रभुकी ही शरण अंतःकरणसे स्वीकार की। इसीसे माहात्म्यज्ञान दर्शाकर उनकी भक्तिको दृढ करना चाहिए, यह प्रभुने निज जानकर विचारा और अपने स्वरूपका दर्शन कराया। इसमें प्रभुकी प्रतिज्ञा ही मुख्य हेतुरूप है। आपकी यह ऐसी प्रतिज्ञा है कि “सकृदेव प्रपन्नाय” एक बार मैं आपका हूं, यह कह कर शरणमें आए उसको अपना करना। इस प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिए अक्रूरजीको आपने स्वीकार करा है। ३७ अध्यायमें अक्रूरजीने यह मनोहर स्तुति कर प्रभुको परम संतुष्ट किया। उनने प्रभुका चतुर्विध माहात्म्य जाना। पहले इस माहात्म्यका उनको ज्ञान नहीं था।

अब राजभक्तोंका निरोध करनेके लिए प्रवृत्त हुए प्रभु चाहे उस अनुसार जो चरणकी शरण प्राप्त हुए भगवदीयोंका निरोध न करे, तो आपकी प्रतिज्ञा भंग हो। निजजनोंका निरोध सिद्ध करनेके लिए तो आपका प्राकट्य है। तो ऐसे असुर संबंधको भी वैकुण्ठ दर्शाकर माहात्म्यज्ञान कराया। इस अभिप्रायका सूचक यह नाम है। यमुना जलमेंसे अक्रूरजी बाहर निकले तब प्रभुने प्रश्न किया कि— “जो देखा वह हृदयमें स्थिर है कि नहीं? अद्भुत वस्तु क्या देखनेमें आई?” इस अनुसार उनको प्रसन्न किया। ॥८५॥

उत्तरमें जो बताया, उसका सूचन करनेवाला नाम कहते हैं:—

स्वगुण— प्रतिबोधकाय नमः ॥ ८६ ॥

अपने गुणोंका प्रतिबोध करानेवाले भगवान्का वंदन।

इस लोकमात्रमें जो कुछ अद्भुत है, वह सर्व आप ही हैं। हे समर्थ भगवान्! आपका दर्शन करनेवाले मैंने दूसरा क्या

आश्चर्य देखा होगा? यह आपके अद्भुत गुणोंका ज्ञान भगवद् इच्छासे ही सिद्ध हुआ है। इसीसे उनको इन गुणोंका उद्बोधन करानेवाले प्रभु ही हैं। अब मथुराके समीपमें प्रभु पधारे, तब अक्रूरजीने कहा कि आप मथुरामें प्रवेश करो। अर्थात् आप दोनोंको मैं लिए बिना मथुरामें प्रवेश नहीं करूंगा, यह जताया। “नाहं युवाभ्यां रहितः” वगैरह ६ गुणरूप ६ श्लोकोंसे प्रार्थना करी। जो माहात्म्य सहित भगवान्की स्थिति हृदयमें नहीं हो, तो प्रभुसे प्रार्थना नहीं करे। इस प्रार्थना द्वारा पुनः भी अपने गुणोंका ज्ञान करानेवाले प्रभु ही हैं।। ८६ ।।

अक्रूरजीको समझा कर विदा किया। आप मथुराका दर्शन करनेके लिए उत्सुक हुए इस आशयको सूचित करता नाम कहते हैं:—

मथुरा—दर्शनोत्सुकाय नमः।। ८७।।

मथुराको देखनेमें उत्सुक भगवान्को नमस्कार।

“अथापराह्ण भगवान्” सांझके समयमें बलदेव तथा गोपोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण दर्शनकी इच्छासे मथुरानगरमें प्रवेश करने लगे। यह मूल श्लोकमें दिदक्षः और परिवारित दर्शनकी उत्कंठा करते तथा परिजनों से घिरे हुए इन दोनों पदोंसे प्रभुकी मथुरा दर्शनकी उत्कंठाको प्रकट करते हैं।। ८७।।

प्रभु सर्व साधन सहित ही पधारे हैं, इसीलिए भगवान् कृष्ण इस पदको सूचन करनेवाला नाम कहते हैं:—

स्वाधार—वैकुण्ठ—स्थापकाय नमः।। ८८।।

अपने आधाररूप वैकुण्ठका स्थापन करनेवाले भगवान् कृष्णको नमन।

आपने मथुरामें निवास करनेवाले भक्तजनोंको आनंदका दान करनेके लिए मथुरामें प्रवेश किया है। मूलमें कहा हैं “मथुरामनयाद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये” सांझके समय मथुरामें राम और कृष्णको ले गए। इस श्लोकमें राम रतिकर्ता और श्रीकृष्ण भी सदानंद फलरूप हैं, यह विवरणमें दर्शाया है। फिर आगे भी सांझके समयमें संकर्षण सहित भगवान् कृष्ण ऐसा कहा है। इसीसे भगवत्पदसे सर्व धर्मसहित भगवान् मथुरामें पधारे हैं। आपका अविर्भाव भक्तजनोंके उद्धारार्थ ही उनको आनंद देनेके लिए है। यह होनेसे राम यह अक्षर रूप है और वैकुण्ठ भी अक्षर रूप है। भगवत् धामके आधारभूत श्रीपुरुषोत्तम वहां ही प्रकट होते हैं, अन्यत्र नहीं। जैसे सर्वत्र पुरुषोत्तमका आवेश हो ऐसे अक्षरानंद रूप अलौकिक वैकुण्ठ धर्मका स्थापन किया। इसीलिए इस प्रकारसे यह नाम कहा है। और अब आप मथुरामें स्थित भक्तोंका निरोध करनेके लिए प्रवृत्त हुए हैं। जैसे जन्मप्रकरणमें प्रादुर्भावके समयमें “अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः” जब सर्व गुणोंसे युक्त शोभन काल था, तब आप प्रकट हुए। तब अलौकिक आधिदैविक सर्व धर्म दर्शाये थे। उसी तरह मथुरा प्रवेशमें भी अलौकिक सर्व धर्म करना चाहिए। इसीलिए आपने सर्व स्थलमें आध्यात्मिक अलौकिक धर्मोंको प्रकट किया है। केवल दैत्योंका विनाश करने संबंधी ही मथुरा लीला है, ऐसा नहीं है। यह हो तो आपका साक्षात् प्रवेश होता ही नहीं। आपका प्रादुर्भाव इस नगरीमें हुआ उस समय आप सर्व धर्म सहित प्रादुर्भूत हुए हैं। तो इस प्रवेशके समय भी वैसे सर्व धर्म युक्त होकर स्वधर्मका स्थापन कर उस नगरीको अपनी नगरी कर दी। इसीलिए भगवद् दर्शन होनेके बाद मथुरा नगरी चार पुरुषार्थ रूप हुई

। चार श्लोकसे नगरीका वर्णन कर उसके चार पुरुषार्थोंको दर्शाया। कंसादिके विनाशके लिए भी प्रवेश कहनेमें आया है। वहां कालस्वरूपसे ही प्रवेश किया है। इसीलिए संकर्षण सहित आकर्षण करनेके लिए काल सहित प्रवेश है, ऐसा जताया और भक्तोंके आनंदके लिए जहां प्रवेश है वहां राम सहित रतिवर्धक रमण सहित श्रीकृष्णका प्रवेश है, वगैरह इस नामके आशय समझने ॥ ८८ ॥

आनंदका अनुभव करनेके लिए अलौकिक कार्यकी भी अपेक्षा है तो इसका सूचक नाम बताते हैं:—

पौर—पुरन्धी—पुण्य—जनकाय नमः ॥ ८९ ॥

पुरजनोंकी पतिव्रता स्त्रीयोंके भाग्यको उत्पन्न करनेवाले मथुरेश्वरको नमस्कार।

पुरन्धी पदसे पतिव्रता स्त्रीयोंका सूचन करते हैं। पतिव्रताओंका परम व्रत अपने पतिके संबंधमें ही हो, उस पतिव्रत धर्मसे भी उत्कट पुण्य उत्पन्न होता है। तो भी उस भगवदानंदके अनुभव होनेमें साधनरूप नहीं होता। मात्र लौकिक पतिके आनंदका साधन रूप ही बनता है। परंतु प्रभुने यह सर्व धर्म सहित अपने स्वरूपका दर्शन देकर उनके महान भाग्यको प्रकट किया है। प्रभुके प्रवेश होने पर रूप दर्शन कर उनको भगवदानंदका साक्षात् अनुभव हुआ। “हृष्यत्वचोजहु” इस मूल श्लोकमें दर्शाये अनुसार भगवान्में आसक्ति हुई। इसीसे व्यवहारके सारे कार्यको विसारि कर प्रभुका अनिमेष दृष्टिसे दर्शन किया और भान भूल गए। कोई विपरीत वस्त्र धारण करने लगी, कोई एक ही आंखमें अंजन करने लगी। कोई कहींके कहीं आभूषण पहनने लगी, ऐसी उनकी अवस्था हुई। अलौकिक भाग्य बिना उनमें दिव्यभाव प्रकट नहीं हुआ,

उनका भाग्य प्रकट करनेवाले भगवान् ही हुए। यह नाम “हर्म्याणि चैवारुरुहुः” यहांसे आरम्भ कर “ऊचुपौरा अहौ गोप्यः” इस श्लोक पर्यन्त आशयको दर्शाने वाला है ॥ ८६ ॥

जिनका भगवान्में भाव है उनकी स्थिति ऊपर अनुसार कथनकी लेकिन जिनके हृदयमें दुष्टता है उनका क्या होता हैं? यह कहते हैं:-

रजकादि-दुष्ट-नाशकाय नमः ॥ ६० ॥

धोबी आदि दुष्टोंका नाश करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

रजक- धोबी और रंगनेका भी काम करने वाले दुष्ट विचारके नीचके यहां प्रवेश करते ही उत्तम वस्त्र मांगें फिर भी उसने नहीं दिए, इसीलिए उसका नाश किया और आदि शब्दसे दूसरोंके आंतरिक दोषोंका नाश किया। अन्यथा नीचतामें समानता होनेसे, अन्यमें भगवद्भाव न होय। पहले रजक अकेलेको ही मारा है। दूसरोंकी दोष बुद्धि दूर होनेसे भगवान्में भाव उत्पन्न हुआ है। इसीसे इस अनुसार कहा ॥६०॥

वस्त्राद्यनेकाकल्प-भूषित-रूपाय नमः ॥६१॥

वस्त्र वगैरह अनेक साधनोंसे सुशोभित जिनका स्वरूप है, ऐसे भगवान्का वंदन।

यह नाम “वसित्वात्मप्रिये वस्त्र” अपने प्रिय ऐसे दो वस्त्रोंका परिधान कर” इस श्लोकके आशयको जताने वाला है। रजकको मारनेके बाद वायक-दर्जी आया। वह वस्त्र परिधान करनेमें अत्यंत चतुर था। भगवान्का दर्शन कर संतुष्ट होकर उसने यथायोग्य सुंदर वस्त्रोंका परिधान कराया और

भूषण रचना भी सर्वोत्तम प्रकारसे करी। इसका सूचन करते हैं॥६१॥

इसके बाद सुदामा मालीके घर पधारें। उसने भी प्रभुको अच्छी रीतिसे अलंकृत किया यह दर्शाते हैं:—

वायक—सुदाम— भक्तालंकृताय नमः॥६२॥

वायक और सुदामा इन दोनों भक्तों द्वारा अलंकृत हुए कृष्णका अभिवंदन।

वायक — दरजी और सुदामा माली दोनों भगवान्‌के दर्शन होते ही दोषसे निवृत्त हो गए। प्रभुके परम भक्त बने। और दोनोंने उनका अत्यंत सम्मान किया। आभूषण सुगंधिमान पुष्पमालाओं वगैरहसे प्रभुको अलंकृत किया। वस्त्र परिधान कराकर वायकने सुगंधयुक्त पुष्प मालाएं धराईं, सुदामाने प्रभुको शोभित किया॥६२॥

अत्युदाराय नमः॥६३॥ अत्यंत उदार ऐसे श्रीहरिको नमस्कार ।

प्रसन्न हुए प्रभुने प्रार्थनाके अनुसार उनको वरदान दिया। अल्पदान करने पर भी बहुत दान दे तो ही उदारता गिनी जाती हैं। भगवान्‌ने उनको दान करके भी विशेष वरदान दिया और अपनी अत्यंत उदारता दर्शायी। “प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान्” शरणमें आये हुए और प्रणाम करते उनको वरदान देनेवाले बलराम और श्रीकृष्णने बहुत वरदान दिए। इस श्लोकके आशयको बताता यह नाम है॥६३॥

आगे चलकर कुब्जा आई यह नाम दर्शाते हैं:—

कुब्जानुलेपालंकृताय नमः॥६४॥

कुब्जाके चंदनसे अलंकृत प्रभुको नमन ।

कुब्जाके चंदनको अंगीकार कर उसका निरोध
किया ॥६४॥

कुब्जादि—भक्त—सहज—दोष—दूरीकरणाय

नमः ॥६५॥

कुब्जा—वक्रता वगैरह भक्तोंके सहज दोष दूर
करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

यह केवल नामसे ही कुब्जा नहीं थी । परंतु अंगसे भी वह
कुब्जा ही बांकी, टेढ़ी थी । गला और पैर ऐसे तीनों अंगोंसे
बांकी थी । इसीलिए उसको त्रिवक्रा कहनेमें आता था । ऐसे
उसके शरीरके दोषोंको प्रभुने स्पर्श कर दूर किया । मात्र
शारीरिक दोष ही दूर किया इतना ही नहीं परंतु उनमें सबसे
उत्तम गुणोंका स्थापन भी किया । तबसे उसका अन्तःकरण
प्रभुमें रहने लगा ॥६५॥

स्वलीलौपयिक—रूपाभिव्यञ्जकाय नमः ॥६६॥

स्वलीलामें उपयुक्त रूपका प्रकाश करनेवाले प्रभुका
वंदन है ।

अपनी लीलामें उपयोगमें आनेवाले ऐसे उनके सुंदर
स्वरूपको आपने प्रकट किया । लक्ष्मी समान भाग्य देकर
अलौकिक सौभाग्यका प्रकाश किया । मुकुंद श्रीकृष्णके स्पर्श
मात्रसे ही वह समान सुकोमल अंगवाली विशाल नितंब ओर
स्तन प्रदेश वाली उत्तम प्रमदा—रमणीय रमणी हुई । 'सा
तदर्जुसमानांगी' इस श्लोकके भावका यह नाम है ॥६६॥

मथुरा—महोत्सवाय नमः ॥६७॥

मथुराके महोत्सव रूप भगवान्को अभिनंदन ।

कृब्जाको वरदान प्रदानकर समान अंगवाली बनाकर राजमार्गमें आप पधारने लगे । तब सब प्रजाजनके मनमें महान् महोत्सव होने लगा । प्रभुका दर्शन कर पुरजन सब विस्मृत होकर प्रभुका दर्शन करने लगे— उनकी तरफ आसक्त हुए । स्त्रियोंको भी उनके दर्शनसे कामवेग उत्पन्न हुआ, अपनी आत्माका भी भान भूलकर वेणी—कंकण—वस्त्र वगैरहकी सुव्यवस्था भूलकर उनको विपरीत रीतिसे धारण करके जैसे चित्रमें चित्रित बन गई होंय, ऐसे चकित हो गई, वगैरह भावको बताता यह नाम है ।।६७।।

इस प्रकार सबका निरोध किया यह कहते हैं:—

दैत्यधर्म—निवारकायः नमः ।।६८।।

दैत्यपनेके धर्मका निवारण करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार ।

पहले मथुरामें बसनेसे सबको दैत्योंका संसर्ग होनेसे नगरवासी दैत्यपनेके धर्मवाले — आसुरीभाववाले थे । प्रभुके प्रवेश होनेके साथ ही दैत्यधर्म नष्ट हो गए । पहले मथुरामें प्रवेश करते समय “स्वाधारवैकुण्ठस्थापकाय नमः” यह नाम कहा था इसीसे अपने सर्वधर्मोंके साथ आप पधारे हुए होनेसे पुरजनोंमें उन धर्मोंका स्थापन आपने करा है और उनमें आसुरधर्म तो सहज प्रकारसे नष्ट हो गए । भगवान्ने यह सब अपने स्वरूपबलसे किया, साधनबलसे नहीं । क्योंकि भगवान्के दर्शन होनेके साथ ही सबमें सारे उत्तम धर्मोंने प्रवेश किया था । उन्होंने कोई साधन तो किया ही नहीं था । यह

भगवानका माहात्म्य ही है। इसीसे उनके आंतरिक सारे दैत्य धर्मोंका नाश हुआ है ॥६८॥

अब बाह्य दैत्यधर्मोंका भी नाश करना चाहिए। इसीसे आपने धनुषका भंग किया इसका सूचन करता नाम कहते हैं:—

धनुर्भंग—बोधित—कालाय नमः ॥६९॥

धनुषके भंगसे कालका बोध करानेवाले कृष्णको नमन।

धनुषका भंग कर कंसराजाको कालका जिनने सूचन किया है। धनुषका भंग होनेसे उसका शब्द सारे जगतमें व्याप्त हो गया और इसीसे कंसराजाको अपने कालका ज्ञान उत्पन्न हुआ और रात्रि दिवस महाभय पाने लगा। ॥६९॥

अतिसामर्थ्य—बोधिताक्लिष्ट—कर्म—चरित्राय नमः

॥७०॥

अत्यंत सामर्थ्यमें भी बोधन किया है अक्लिष्ट कर्म जिनने ऐसे चरित्रवाले प्रभुको प्रणाम।

धनुषका रक्षण करनेवाले सैनिकों और उनकी सहायतामें कंसकी भेजी हुई चतुरंगिणी सेनाका प्रभुने धनुषके टुकड़ेसे ही नाश कर डाला। ऐसे अत्यंत सामर्थ्यवाले कार्यमें भी सामान्य सरलता दर्शानेवाला प्रभुका सुंदर गति विलासवाला चरित्र है। बालक होने पर भी ऐसा महान कार्य करना यह क्लिष्टरूप है। फिर भी जिसको रमणमात्रमें ही किया और सेनाको मारनेके बाद युद्धका महान वेग छोड़ दिया, अत्यंत मनोहर कोमल स्वरूपवान हुए नेत्र कमलसे पुरसंपत्तियोंका निरीक्षण करते—करते मथुरा नगरमें भ्रमण करने लगे। “बलं च कंस

प्रहितम्” इस श्लोकसे आरंभ कर “तेजः प्रागल्भ्यरूपं च” इस श्लोक पर्यन्तके भावको जतानेवाला यह नाम है ॥१००॥

मृत्युधर्म—बोधकाय नमः ॥१०१॥

मृत्युके धर्मका बोध करनेवाले विप्रका वंदन ।

धनुष भंगके भयंकर शब्दको सुनकर कंसको भय उत्पन्न होनेसे निद्रा नहीं आती थी, बुरे सपने आने लगे और अपने मरणको अपने सामने ही देखने लगा । इस प्रकार प्रभुने उसको मृत्यु धर्मका ज्ञान कराया । “पश्यन् मरण संत्रस्तो” वगैरह श्लोकके आशयको दर्शानेवाला यह नाम कहा है । ॥१०२॥

रात्रि आते ही प्रातःकालमें कंसराजाने मल्लिक्रीड़ाका अवलोकन करनेके लिए नगर—निवासीजन वगैरह सबको आमंत्रण दिया । तब भगवान् भी उस रंग मंडपमें मल्लिक्रीड़ाका निरीक्षण करने पधारे । उस समय रंगद्वारके आगे कुवलयपीड नामका मदसे उन्मत्त हाथी स्थापन कंसके करनेमें आया था, उसको मारा यह कहते हैं :—

कुवलयपीड—घातकाय नमः ॥१०२॥

कुवलयपीडका घात करनेवाले भगवान्का अभिनंदन ।

कु अर्थात् पृथ्वी वलय अर्थात् मंडल, पूरी पृथ्वीको त्रास देनेवाला महा मदोन्मत्त मातंग जो प्राणीयोंका नाश करनेमें काल रूप हुआ था, उस कालरूप हाथीको प्रभुने मारा । भगवान् तो कालके भी काल हैं, उसके भी नियंता हैं । इसीसे उस गजेन्द्रके भी आप दंड देनेवाले हैं ॥१०२॥

गजदन्त—वरायुधाय नमः ॥१०३॥

हाथीके दांतका ही सुंदर आयुध जिनका है ऐसे कंसके
रिपुको नमस्कार ।

कंसादिक सर्व शत्रुओंने इस समय प्रभुको कालरूप देखा
था यह सूचन करते हैं । इस समय प्रभुने वीर रस प्रकट किया
था । संभावित भी वह ही हो सकता है, फिर भी भगवान् तो
अक्लिष्टकर्मा हैं — लीला मात्रमें ही सब सिद्ध करते हैं ।
इसीसे उन सबको आनंद कारक ही दिखने लगे । इस
आशयका नाम बताते हैं :—

निखिलजन—मनो—नयनाल्हादकाय नमः ॥१०४॥

सब मनुष्योंके मन और नयनोंको आनंद देनेवाले
आनंदकंद कृष्णको नमन ।

वीर वेष होने पर भी सकल जनोंके मनको तथा नयनोंको
भय नहीं उपजाया, केवल आनंद ही प्रकट किया था । नेत्रद्वारा
उनके अंतःकरणमें प्रवेश कर प्रसन्नता देकर सर्व इन्द्रियोंको
भी प्रसन्न करते थे । “निरुद्धस्वेदकनिकावदनाम्बुरुहो बभौ”
मुखकमल पर आए हुए प्रस्वेदके बिंदुओंसे देदीप्यमान शोभते
थे । इस श्लोकका सूचक यह नाम है ॥१०४॥

जिसका जैसा अधिकार था, वह वैसे रसके आर्विभाववाले
प्रभुको निरखने लगा, यह बताते हैं :—

सर्वरसाविर्भावकाय नमः ॥१०५॥

सर्व रसके आविर्भाववाले रसात्मक श्रीकृष्णका वंदन ।

यहां रंगमंडपमें विविध विचारके सज्जन आए हुए हैं
सगुणभाववाले एवं निर्गुणभाव वाले भी । उन सभी प्राणी

मात्रको प्रभु उस-उस रूपमें दिखने लगे। मनुष्यमें नौ प्रकार या दशप्रकारके रसका वहन होता है। जिससे जिसकी जिस रसमें मुख्यता थी, उसे वैसे ही रसरूप होकर प्रभुने दर्शन दिए। एक ही रसघन प्रभु अलग-अलग भावसे, अलग-अलग रसरूपसे दर्शन देने लगे। भयंकर रौद्र स्वभाववाले मल्लोंको भगवान् बिजली-समान वेग वाले कि जिसके पकड़मेंसे पलायन करना अशक्य हो। ऐसे भयंकर रौद्ररससे जताया। साधारण राजसस्वभावके पुरुषोंको पुरुषश्रेष्ठ रूपसे अद्भुत रसयुक्त जताया। कामदेवकी सेना रूप स्त्रीयां होती हैं। उनसे अपने पति, नायकको देखा नहीं था, प्रभुको देखकर उनको मूर्तिमान पतिका— कामका स्मरण हो आया। अपने पतिको निरखिके वह सनाथ हुई, शृंगाररसके भाव को प्राप्त करने लगीं। गोप हमारे स्वजन—यह हमारे बंधु हैं, ऐसा भान होनेसे हास्य रस होने लगा। दुष्ट राजाओंमें भगवान्को देखकर युद्धकी बुद्धि उत्पन्न हुई, परन्तु उनको शस्त्र शिक्षा करनेवाले रूपसे देखा तो सामने नहीं आ सके, पर उनमें वीररस स्फुरा। अपने मातापिताको शिशुबालक रूपसे दिखाया, इसीसे उनको करुणारस प्रकट हुआ। कंसराजाको मृत्यु रूपसे जताकर उसे भयानक रस रूप हुए। भगवत्स्वरूपमें निष्ठा रखनेवाले परन्तु उस स्वरूपको नहीं जाननेवाले अविद्वान भक्तोंमें स्नेह प्रकट हुआ होनेसे रुधिर बिंदुओंसे युक्त भगवान् को देख वीभत्सरस होने लगा। योगीजनोंको परमपुरुष—परमतत्त्व रूपसे पुरुषोत्तम स्वरूप जताया, वहां शांत रस स्फुरा है। यादवोंने तो अपने परम देवता रूपसे निहारा। उनको भगवान्में भक्तिरस उत्पन्न हुआ। शास्त्रके नियम के अनुसार "अष्टौ नट्यै रसाः" नाट्यमें आठ ही रस मुख्य हैं। श्री महाप्रभुजी, श्रीसुबोधिनीजीमें इसीसे

मुख्य आठ प्रकारसे यहां रससिद्ध करते हैं। और शांतरस और भक्तिरसका सामान्यतः सूचन कर समझ लेनेकी आज्ञा करते हैं। इस प्रकार “मल्लानामशनिः” श्लोकके संपूर्ण आशयको प्रकट करनेवाला यह नाम है ॥१०५॥

स्त्रीजनोंको मूर्तिमान कामदेव रूपसे निरखनेमें आए प्रसंगमें भी उनको प्रत्यक्ष कामरूप दृष्टिगोचर हुआ, यह कैसे बना? यह कहते हैं :-

निखिल—कामिनी—प्रेमावलोकिताय नमः ॥१०६॥

सकल कामिनीयों द्वारा प्रेमपूर्वक निरखते

श्रीगोपीजनवल्लभका अभिवंदन।

यद्यपि सर्वको ही अपने अधिकारानुसार प्रभुके ऊपर भाव प्रकट हुआ है, तो भी उन सबमें मुख्य तो स्त्रीयां ही हैं। उनके अंतःकरणमें स्वाभाविक कोमलता होनेसे रसिककवर प्रभुको साक्षात्—मूर्तिमान कामदेवरूपसे देखें तो यह नई बात नहीं हैं। प्रभु भी उनके लिए ही उस रूपमें हुए हैं। वैसा शुद्ध भावयुक्त होकर प्रभुका दर्शन तो उन्होंने ही करा था। इसीलिए उनको उस रीतिसे प्रभुने दर्शन दिए। जिसका जैसा भाव वैसी रीतिसे प्रभु होते हैं। यह आपका प्रभाव सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। कामिनी पद भी इसीसे उनके लिए कहा है। मल्लगणोंके साथ युद्ध करते समय अपने अत्यन्त कोमल कोटिकंदर्पलावण्य प्रियतम प्रभुको परिश्रमसे प्रस्वेद के बिंदु झरने लगे, तब इन कोमल कामिनीयोंका कलेजा कांप जाता था। “तद्वलाबलवद्युद्धम्” इस श्लोकमें यह निरूपण किया है। उन कामिनीयोंके प्रेमोदगारको जान प्रभुने भी उनको प्रसन्न करनेके लिए मल्लोंको मारनेका निश्चय कर उस ही अनुसार युद्ध करने लगे। “निरीक्ष्य तावुत्तम पूरुषो जनाः” यहांसे आरंभ

कर “जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु” इस श्लोक पर्यन्त तकका यह नाम है यह बताया ॥१०६॥

अब दैत्योंको मारना ही चाहिए ऐसा मान उस प्रकारको दर्शाते हैं :-

चाणूरादि—महामल्ल—दैत्य—गर्व—निबर्हणाय

नमः ॥१०७॥

चाणूर आदि महामल्लरूप दैत्योंके गर्वका संहार करनेवाले कृष्णको प्रणाम ।

अत्यंत बलवान चाणूर आदि बड़े बड़े मल्ल रूप दैत्योंके गर्वका नाश करनेवाले आप हैं। यह नाम “चाणूरो वाक्यमब्रवीत्” यहांसे आरंभ कर ‘चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोसलके हते’ यहां पर्यन्तके भावको बतानेवाला है। ॥१०७॥

कंसघातकायनमः ॥१०८॥ कंसका घात करनेवाले कृष्णको नमन ।

मल्लोंका विनाश कर सिंहासनके ऊपर बैठे हुए कंसको धक्का मार पकड़ भूमिमें पछाड़ कर नाश किया। “हतेषु मल्लवर्येषु” यहांसे आरंभ कर ‘कंसं परेतं विचकर्ष भूमौ।’ यहां तकके श्लोकके आशयका सूचन करनेवाला यह नाम है ॥१०८॥

दुष्टोंका विदारण कर भक्तोंके दुःखको दूर किया। इसका सूचन करते हैं :-

वसुदेव—देवकी—दुःख—विदारकाय नमः ॥१०९॥

वसुदेव और देवकीजीके दुःखका विदारण करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार ।

श्रीवसुदेव और देवकीजीको कंसराजाने बंदीखानेमें अनेक दुःख दिये। उन दुःखोंको दूर कर उनका अपनेमें निरोध सिद्ध किया। “मातरं पितरं चैव मोचयित्वा च बन्धनात्” माता और पिताको बंधनमेंसे मुक्त कर उनका वंदन किया। इस श्लोकसे आरंभ कर “सस्वजाते न शंकितौ” इस श्लोक तकके आशयको व्यक्त करता यह नाम है।।१०६।।

प्रभुने अपना यदुपतिपना प्रकट किया, वह नाम प्रकट करते हैं:—

यदुकुल—नलिनी—विकाशकाय नमः।।११०।।

यदुकुल रूपी नलिनीको खिलानेवाले यदुपतिका वंदन।

यदुराजाके कुल रूपी कमलिनीका विकास करनेवाले सूर्यके समान भगवान् हैं। यदुकुल रूप कमल ऐसा नहीं कहा और कमलिनी यह स्त्रीजाति क्यों दर्शायी? इसका समाधान करते हैं : पतिके बिना स्त्री दुःखी होय उसी तरह यदुकुल उसके नेता बिना स्त्रीवत् दुःखी होता था। पतिके बिना स्त्रीके दुःखका परिहार कौन करें? भगवान्‌के पधारनेसे उनके दुःख दूर हुए। रात्रिमें सूर्यके बिना कमलिनी अकुलाती है — अत्यंत अंधकारमें घिर जाती है। असुर रूप तिमिरके समूहका दलन करनेवाले भगवान् रूप—सूर्यके उदय होते ही यदुकुल कमलिनी सब प्रकारसे विकसित हो गई —खिल उठी, यह युक्त ही है। इसके अनुसार स्त्रीका दृष्टांत देकर प्रभुने अपने पतित्व धर्म यदुकुलके लिए प्रकट किया है। नलिनी—कमलिनी मूलमें रसयुक्त होनेसे ही सूर्य उनका विकास करनेवाले होते हैं। जो रसयुक्त नहीं हो तो सूर्य उदय पाने पर भी वह सूख जाय। इसी तरह यदुकुलमें भी धर्मनिष्ठ —भगवद्रसमें निष्ठा रखनेवाले भावसंपन्न भगवदीय ही प्रसन्न हुए। जो असुरोंके

समान यादव थे उनका तो सर्वथा विनाश ही हो गया। उनका विकास प्रभु के पधारने पर भी न हुआ। 'उवाच पितरावेत्य' यहां से आरंभ कर 'गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामा गतज्वरः' इस श्लोक पर्यन्तके भावका स्फुट करता यह नाम हैं ॥११०॥

कालात्मक भगवान्‌के पधारनेसे लौकिक काल धर्म शांत हो गए। इसका ज्ञापन करने वाला यह नाम दर्शाते हैं :-

कालदुःख—निवारकाय नमः ॥१११॥

कालके दुःखका निवारण करनेवाले भगवान्‌का अभिवंदन।

यादव दिनरात्रि मुकुंदप्रभुके मुखारविंदको देख कर प्रसन्न होने लगे। जो मुखारविंद दया दृष्टि करनेवाला प्रसन्न स्मित हास्य झरनेवाला परम मोहक था। ऐसे परम रमणीय भगवान्‌के वदनकमलकी मधुर सुधाको अपने नेत्रकमलसे पान करते में ही वृद्ध यादव, युवा बन गए। और युवा यादव थे वह महाबलवान् सौन्दर्यवान एवं भाग्यवान बन गए।

श्रीसुबोधिनीजीमें 'सदयस्मितवीक्षणम' इस पूर्वपदमें दयापूर्वक स्मित करते, निरीक्षण करनेमें तीन धर्म दर्शाये हैं। दया धर्म स्थान है, स्मित भक्ति स्थान है, और वीक्षण निरीक्षण यह ज्ञानस्थान है। यह धर्म भक्ति और ज्ञान तीनों धर्म आपके मुखारविंदमें स्थित हैं। इनके द्वारा लौकिक भाव भी भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिर होते हैं। उस ही रीतिसे सर्वका निरोध प्रभुमें सिद्ध हुआ है। प्रभुमें उनका निरोध हुआ, इसीसे वह लोक कालका भी अतिक्रमण कर जाय और वृद्ध युवा बन जाय इसमें आश्चर्य क्या? यहां लौकिक धर्मोंको शांत कर उनमें अलौकिक धर्मोंको प्रकट किया है ॥१११॥

अब वसुदेवजीने प्रभुके प्राकट्यसे आरंभ कर अब तकके संस्कार करनेमें पुण्यदान वगैरह प्रत्यक्ष कुछ भी नहीं करा था। उन्होंने पुत्रोंका उपनयन संस्कार कर उस प्रसंगके दानादि दिए। यह बताते हैं :-

प्रदर्शित—सदाचाराय नमः ।।११२।।

सदाचारको उत्तम प्रकारसे दर्शानेवाले प्रभुको प्रणाम।

यद्यपि भगवान्का संस्कार करानेका कोई भी कारण नहीं था तदपि युदकुलमें प्रकट हुए हैं। अतएव कुलके नियमानुसार यह करना चाहिए। जो नहीं करें तो सदाचारका उच्छेद हो। कुल—परंपरासे धर्मका प्रतिपालन करना यह सदाचार है। वैसा सदाचार अवश्य कर्तव्य रूप है। “अथ शूरसुतो राजन्” यहांसे आरंभ कर “गर्गाद्यदुकुलाचार्याद् गायत्रम्” इस श्लोक तकका यह नाम है और जिनमें सदाचारके धर्म प्रकर्ष उत्तम रीतिसे दर्शाए हैं। उन भगवान्में वसुदेवजीके इन धर्मोंका विनियोग करनेसे यह सदाचारका भी परम उत्कर्ष रूप हुआ और इस समय ही उस प्रकारके हुए। इस कारण यह नाम योजन करनेमें आया है।।११२।।

द्विजत्व संस्कार होनेके बाद वेदका अध्ययन करना विधि प्राप्त है। बादमें धनुर्विद्या और उसके बाद गुरुदक्षिणा देनी चाहिए। तो यह नाम कहते हैं :-

सांन्दीपनि—मृतापत्य—दात्रे नमः ।।११३।।

सांन्दीपनिके मरे हुए बालकको देनेवाले कृष्णको नमन।

भक्तजनोंको निरोध सिद्ध होनेके लिए माहात्म्य सूचक चरित्र कथन करना चाहिए। इसीसे गुरुके मृत पुत्रको लाकर देना दर्शाया है। यह कहकर उनके पास सर्व विद्या कलाओंका

शिक्षण मिलनेमें आई सुंदर गुरुदक्षिणा देकर यह हरेकका आशय व्यक्त किया। यह नाम “गुरुकुलेवासम् यहां से आरंभ करके ‘तथेति तेनोपनीतं गुरुपुत्रम्’ यहां पर्यन्त तकके आशयको बतानेवाला यह नाम है।।११३।।

इसके बाद मथुरामें पधार अपने सब बंधुओंके दुःख दूर करना चाहिए— उनकी संभाल लेना चाहिए। इसीलिए पहले नन्दादिकोंके मनका समाधान करनेके लिए उद्धवको भेजा, यह बताते हैं :—

नन्दादि—ज्ञानबोधकाय नमः।।११४।।

नन्दादिकोंको ज्ञानका बोध करानेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार।

नंदरायजी वगैरहका भगवान्‌के ऊपर भाव सृष्टि ही है। परंतु वह भाव लौकिक ही है, उसको अलौकिक करना ही चाहिए। इसीलिए उद्धव द्वारा उनको ज्ञानोपदेश किया। इसीसे माहात्म्य ज्ञानपूर्वक प्रभुमें उनका सुदृढ़ स्नेह होय और अलौकिक प्रकारसे प्रभुको प्राप्त कर सकें। यह नाम “गच्छोद्धव व्रजम्” यहांसे आरंभ कर “विनाच्युतात्” इस श्लोक तकके आशयको दर्शाता है।।११४।।

इसी प्रकार यशोदाजीको भी अलौकिक भाव हुआ। पर उनका स्नेह रस निरंतर कायम ही रहा, यह सूचन करते हैं :—

यशोदा—स्नेह—रक्षकाय नमः।।११५।।

यशोदाके स्नेहका संरक्षण करनेवाले भगवान्‌का वंदन।

यशोदाजीको ज्ञान हुआ तो भी उनका स्नेह अस्खलित था। प्रभुके सर्व चरित्र सुन कर विरहसे आकुल व्याकुल हो

गई और अश्रुपात करने लगीं। “इतिसंस्मृत्य संस्मृत्य” यहांसे आरंभ कर ‘शृण्वन्त्यश्रूण्य— वास्त्राक्षीत्’ इस श्लोक पर्यन्तके भावको प्रकट करता यह नाम है। ज्ञान उत्पन्न हुआ फिर भी यशोदाजीके स्नेहका रक्षण प्रभुने किया है यह स्पष्ट दर्शाते हैं।।११५।।

गोपिकाओंका भी समाधान किया यह कहते हैं :—

गोपिकादि—लौकिक—भावदोष—दूरीकरणाय

नमः।।११६।।

गोपिकाओंको पहले ही लौकिक भाव था उसको दूर करनेवाले गोपीजन प्रिय प्रभुको प्रणाम।

उद्धवजीका अवलोकन करनेके साथ ही गोपीजनोंको उनके भगवदीयत्वका निश्चय होते ही लौकिकभाव हुआ और मान भी प्राप्त हुआ। इसीसे तीन दोष उत्पन्न हुए। वह दोष साध्य होनेसे चिकित्सा कर उनको दूर किया। यह नाम “रहस्यपृच्छन्” यहांसे आरंभ कर “प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य” इस श्लोक पर्यन्तके अर्थका सूचन करनेवाला है। पहले उद्धवजीकी भगवान्के समान आकृति देख उनको भगवद रूप समझ गोपीजनोंको लौकिक मान उत्पन्न हुआ। मान भी विरोधमें अवरोध रूप है। उद्धवजीने प्रभुका संदेश कह उसको दूर किया। वह भी गदगद कंठसे प्रभुके प्रसंगोंको सुन कर प्रेममें निमग्न होने लगी। इसी से शुद्ध हुए— उनके दोष शांत हो गए। इस आशयका यह नाम है।।११६।।

इस प्रकार उपदेश करनेसे उद्धवजीको भी यह उपदेश समझमें आया, यह कहते हैं:—

उद्धवादि—मध्यमभाव—बोधकाय नमः।।११७।।

उद्धवादिकोंको हीन भावका ज्ञापन करनेवाले कृष्णको नमन ।

पहले उद्धवजी परम भक्त थे। 'नोद्धवोऽपि मन्यूनः' उद्धवजी मेरेसे जरा भी न्यून उतरते नहीं इस प्रकार भगवान्ने उनकी स्तुति करी थी। तो भी श्रीस्वामिनीयोंके हृदयमें रहे भावरूप भक्तिमार्गका उनको ज्ञान नहीं था। यह तो जब ब्रजमें पधारे और श्रीमद्ब्रजसुन्दरियोंके भावको देखा तब अपनी अल्पता उनको समझमें आई और गोपीजनोंके सौभाग्यकी, उनके भावकी प्रशंसा करने लगे। श्रीगोपबुधोंके जैसा भाव प्रकट हुआ परंतु उनके जैसी अवस्था तो उद्धवजीको उत्पन्न नहीं हुई और अपनेमें न्यूनता ही स्फुरने लगी। अपने अंतःकरणमें श्रीगोपीजनोंको गुरु रूप मानने लगे और उनके चरणारविंदकी रजको वारंवार वंदन करने लगे। इसीसे ही मूलमें "वन्देनन्द ब्रजस्त्रीणाम्" यह कहा। यह श्रीब्रजांगनायें ही सफल शरीरधारी हैं अन्य भक्तजनोंमें इनकी कोटि ही ऊंचे प्रकारकी है। यह तो क्या इनके चरणारविंदकी रज भी वंदनीय है, ऐसा निश्चय कर डाला। प्रभुने इसके अनुसार उद्धवादि भक्तोंको हीनताका बोध कराया है। उनके अंतःकरणमें किंचित रहा हुआ, भक्तत्वका अभिमान ज्ञानीपनका अभिमान चूर्ण—चूर्ण किया। इस आशयको यह नाम व्यक्त करता है। ॥११७॥

उपदेशके फलका सूचक नाम निवेदन करते हैं :—

स्वनिष्ठ —मनोदोष— नाशकाय नमः ॥११८॥

अपनेमें रहे हुए मनसे दोषका नाश करनेवाले श्रीहरिको नस्कार ।

अपने उद्देश्यसे रहे हुए मनके दोषको अर्थात् श्रीनंदराय यशोदाजी वगैरहके पुत्र भावरूप—लौकिक भावरूप दोषको और श्रीव्रजसीमतिनीयों के “निःस्वं त्यजन्ति गणिकाः” निर्धनको गणिका छोड़ देती है, फल बिनाके वृक्षोंको पक्षी छोड़ देते हैं वगैरह—वगैरह वचनोंसे प्रभुके उद्देश्यसे उलाहना रूप दर्शाते हुए लौकिक दोषका नाश करनेके लिए उद्धवजी द्वारा प्रभुने श्रीगोपीजननोंको उपदेश दिया, तब से आरंभ कर उनको अपनी अलौकिक साक्षात् नित्यलीलामें रमण कर रहे ऐसे प्रकारका ज्ञान हुआ। भगवान्में साक्षात् पुरुषोत्तमताका ज्ञान हुआ तथा अपनी आत्मामें उनसे अभेदपनकी प्रतीति हुई। इस प्रकार होनेसे उनका सर्व अज्ञान दोष लुप्त हो गया। उस दोषको उद्धव द्वारा नाश करनेवाले प्रभु स्वयं ही हैं। “नन्दादयोनुरागेण” यहांसे आरंभ कर “रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे” यह प्रार्थना शुद्ध हृदयसे नंदादिकोंने करी इस अभिप्रायका सूचक यह नाम है।।११८।।

इन मुख्य भक्तोंको सांत्वन कर राजस होनेसे पहले कुब्जाको सांत्वन करते हैं। यह नाम बताते हैं :-

कुब्जादि—मनोरथ—पूरकाय नमः ।।११९।

कुब्जादिकोंके मनोरथको पूर्णकरनेवाले भगवान्को वंदन।

राजस भक्तोंमें पहले कुब्जाका मनोरथ पूर्ण किया है। इसीलिए उसको पहले कहनेमें आया ।।११९।

अक्रूरादि—भक्त—सन्मान—हेतवे नमः ।।१२०।।

अक्रूरादि भक्तोंके सम्मानके कारणरूप कृष्णका अभिनंदन।

अक्रूरादि भक्तोंके घर भगवान् पधारे उनको सम्मान दिया। “त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च” तुम हमारे गुरु—बड़े हो—पितृव्य—काका हो यह कह आपने अक्रूरको सम्मान दिया। अर्थात् इसीसे सभी यादवों तथा प्रजाजनोंको उनका ज्ञान देने लगे। इसीसे अक्रूरादिक भक्तोंके सम्मानके कारणरूप प्रभु ही हैं। कुब्जाके प्रसंगमें मनोरथ पूरा करना बताया। यहां सम्मान देना बताते हैं। अधिकारके अनुसार भावका भी भेद है, यह जानना।।१२०।।

ऊपरके नाममें आदि पद है। इसीसे अन्य भक्तोंका सम्मान भी आ जाता है जिससे उसका नाम कहते हैं:—

भक्त—हित—चिन्तकाय नमः।।१२१।।

भक्तोंके हितका चिन्तन करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

अपने परम भक्त पांडवोंके हितका विचार करनेवाले उनका हित हो, वैसा कर्तव्य करनेवाले, अक्रूरजीके साथ पांडवोंके हितके फिर संबंधमें विचार करा है और उसकी स्थिति जाननेके लिए अक्रूरजीको हस्तिनापुरमें भेजा। “पितर्यु परते बालाः” इस श्लोकसे आरंभ कर “विज्ञाय तद्विधास्यामः” इस श्लोक पर्यन्तके अभिप्रायको दर्शाने वाला यह नाम है।।१२१।।

किस विचारसे पांडवोंकी स्थिति हुई, यह बताते हैं:—

पाण्डव—स्थापकाय नमः।।१२२।।

पांडवोंका स्थापन करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार।

“यथा शं सुहृदां भवेत्” जैसे संबंधीजनोंको— स्नेहियोंको सुख हो वैसे करना चाहिए। इस विचारसे पांडवोंका स्थापन किया हुआ है। जब पांडवोंको प्रभुने संभाला तब वह स्थिर हुए।।१२२।।

कुन्ती —प्रीति —हेतवे नमः।।१२३।।

कुन्तीजीके प्रीतिके कारण रूप कृष्णभगवान्को नमन।

कुन्तीजी परम भक्त हैं। अक्रूरजी जब खबर लेने आए तब उनके मनमें हुआ कि भगवान्ने हमें अपना समझ हमारी खबर ली। इसीसे मनमें संतोष पाने लगी। सद्भाव उत्पन्न हुआ, प्रभुका हमारे ऊपर महान अनुग्रह हुआ यह मानने लगीं और अतिशय प्रेमपूर्वक प्रभुकी स्तुति करने लगीं, फिर दीनभाव प्रकट हुआ। इसीसे अक्रूरजीको जो संदेश सान्त्वनका प्रभुने कहा था, वह उनको बताया शांत किया। विदुरजीने भी उनका साथ देकर कुन्तीजीको आश्वासन दिया। यह नाम “पृथा तु भ्रातरम्” यहांसे आरंभ कर “सान्त्वयामासतु” इस श्लोक तकके आशयको बतानेवाला है।।१२३।।

ऐसे सांत्वन करनेसे शत्रुके करे हुए दुःख शांत न हुए यह नाम कहते हैं :—

प्रौढ—लीलावबोधकाय नमः।।१२४।।

प्रौढलीला ज्ञापन करनेवाले भगवान्का अभिवंदन।

यदि धृतराष्ट्रको उपदेश देनेसे वह समान दृष्टिवाले होकर कौरव और पांडवोंमें समान प्रीतिवाले बनें तो अच्छा अन्यथा तो सुहृदजनोंका जैसे प्रिय हो वैसा अपन यत्न करेंगे। ऐसे भगवान्के वचनोंसे ही पुत्रोंकी दैवी उत्पत्ति उनका बल वगैरह दर्शाकर कुन्तीजीको शांत किया। यह भगवान्का कार्य

इस प्रौढलीलाका सूचक है। इसीसे प्रौढलीलाका बोधन करनेवाले भगवान्ने ऐसा कहा ॥१२४॥

स्तुति करनेमें आते माहात्म्यज्ञानपूर्वक शरण प्राप्त करनेसे प्रभु सर्व प्रकारसे अपने जनोंका परिपालन करते हैं। इसका निर्देश करते हैं:—

भक्तपक्ष—बोधकाय नमः ॥१२५॥

भक्तके पक्षका बोध करनेवाले श्रीकृष्णका वंदन।

भगवान् भक्तका पक्ष करते ही हैं। ऐसा दूसरोंको बोध करनेवाले स्वयं ही होते हैं। इसीलिए भक्तद्वारा उनको सांत्वन किया है ॥१२५॥

भक्तकुन्तीको सांत्वन कर धृतराष्ट्रको बोध देते हैं:—

धृतराष्ट्र—ज्ञान—बोधकाय नमः ॥१२६॥

धृतराष्ट्रको ज्ञानका बोध करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

पहले अक्रूरजीके द्वारा धृतराष्ट्रको ज्ञानका उपदेश किया “भो भो वैचित्रवीर्य” यहांसे आरंभ कर “तस्माल्लोकमिमं” इस श्लोक तक, फिर ईश्वरके आधीन सब विश्व है मेरी कुछ अपनी प्रवृत्ति नहीं। ऐसा भी ज्ञान धृतराष्ट्रको हुआ। ऐसे दोनों प्रकारके ज्ञानका बोध करानेवाले आप ही हैं। इसीलिए यह नाम कहा ॥१२६॥

ईश्वर द्वारा उपदेशित धर्म, अधर्मके विवेकका ज्ञान परित्याग कर वैसी प्रवृत्ति असमान भावकी प्रवृत्ति कैसे हुई है? यह कहते हैं :—

इच्छा—वाद—स्थापकाय नमः ॥१२७॥

इच्छावादका स्थापन करनेवाले भगवान्को नमस्कार।

धृतराष्ट्रने भगवद्‌इच्छावादका अंगीकार कर उत्तर दिया। इसीलिए उस समय भगवान्‌ने ही उनके अन्तःकरणमें इच्छावाद प्रकट किया। भगवान्‌की इच्छा भविष्यमें इस प्रकार ही होनेकी है, यह ज्ञान धृतराष्ट्रको स्फुरा। यह आपने उसमें इच्छावादका स्थापन किया हुआ है। इसीसे ही “यथा वदति कल्याणी” यहांसे आरंभ कर “ईश्वरस्य विधिं को नु” इस श्लोक पर्यन्तके तात्पर्यको प्रकट करनेवाला यह नाम है, यह जानना ॥१२७॥

यद्यपि सब वस्तुमें सब ठिकाने ईश्वरकी इच्छा ही नियामक है तो भी शास्त्रका ज्ञान हुआ होने पर भी भगवान्‌के ज्ञानमें प्रवृत्ति क्यों नहीं होती? इसका सूचन करने वाला नाम कहते हैं:—

माया—प्रवर्तकाय नमः ॥१२८॥

मायाका प्रवर्तन करनेवाले प्रभुको नमन।

सब प्राणीमात्रको मायाका मोह होनेसे भगवान्‌के मार्गमें उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। “यो दुर्विमर्शपथया” जिसके मार्गका विचार भी नहीं हो सके ऐसी अपनी मायाके द्वारा सारी सृष्टिको प्रकट कर उसमें प्रवेश कर सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण यह तीन गुणोंका विभाग करते हैं। जिसकी क्रीडाके तंत्र रूप इस संसारचक्रकी गतिको कोई जान नहीं सकता। ऐसे परमेश्वरको नमस्कार। यह इस मूल भागवतके श्लोकमें दर्शाया है। इस श्लोकमें जिसका मार्ग समझ नहीं आए ऐसी जिनकी माया है, ऐसा कहा है। इस मायाका प्रवर्तन करनेवाले प्रभुके बिना अन्य कौन हो सकता है? यह आशय इस नामका है ॥१२८॥

सर्वाभिवन्दित— चरणाय नमः ॥१२९॥

सबसे अभिवंदन कराये हैं चरणारविंद जिनने, ऐसे
भगवान्का अभिवंदन ।

सब ब्रह्मादिक प्राणीमात्र जिनके चरणकमलमें प्रणाम करते
हैं, ऐसा जिसका अपरिमित माहात्म्य है, उनको नमस्कार बिना
दूसरा कुछ भी हो नहीं सकता, क्योंकि प्राणीमात्र सब उनकी
मायाके आधीन रहे हुए हैं, यह इस नाममें ज्ञापन करते
हैं ॥१२६॥

एवं श्रीकृष्णनामानि प्रौढलीलावबोधने ॥

कीर्तितान्यति—पुण्यानि शतं विंशतिरष्ट च ॥१॥

इस प्रकार प्रौढलीलाके बोधन करनेमें अर्थात् प्रौढलीलाका
उपदेश करनेवाले, समझाने वाले, श्रीकृष्णके एक सौ अष्टाईस
पवित्र नामोंका कीर्तन किया— कहा (इस श्लोकमें नाम १२८
होते हैं। किस कारण से एक नाम बढ़ता है, यह समझ नहीं
सकते टीकाकारने कोई भी खुलासा नहीं करा है।)

॥ इति प्रौढलीला नामानि ॥

अथ राजलीलानामानि

राजलीला के नामोंका आरंभ करते हैं:-

अतः परं प्रवक्ष्यामि राजलीलाम् उपाश्रितः ।।

कृतवान् यानि कर्माणि तानि नामानि मुक्तये ।।१।।

अब इसके बाद राजलीलाका आश्रय कर श्रीकृष्णने जो जो कर्म किये उन उन कर्मोंका प्रकाश करनेवाले नामोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिए यथाधिकार भेदसे आनंदपानेके लिए मैं कथन करता हूँ ।।१।।

प्रथम नामका निर्देश करते हैं:-

क्षात्र-धर्म-प्रवर्तकाय नमः ।।१।।

क्षत्रियके धर्मका प्रवर्तन करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

अब तक भगवान् अपने प्रमेयबलसे सब कार्य करते थे साधनबलका जरा भी उपयोग नहीं हुआ। अब तो राजकीय लीलामें प्रवृत्त हुए हैं इसीलिए यह राजलीला कहलाती है। यह राजलीला प्रमाणरूपा है। अतएव इसमें साधनकी ही मुख्यता है। राजसभक्तोंके निरोधमें भी भगवान्की कृति ही साधन है, अन्य साधन नहीं समझने। इस लीलामें ६ प्रकारके कार्य करवाने हैं। १. भूमिके भारका हरण। २. साधु-सत्पुरुषोंका रक्षण ३. दुष्टोंका निकटन ४. भक्तिका प्रकाशन ५. धर्मका परिपालन, और ६. अधर्मका निवारण। इन सभी कार्योंको करवानेके लिए भूतलके ऊपर भगवान् पधारे हैं। यह सब कार्य करनेके लिए क्षत्रिय धर्मकी परम आवश्यकता है। इसीलिए

भगवान्ने क्षत्रिय धर्मको अंगीकार किया है। उपनयन होनेके बाद सर्व धनुर्विद्याका अध्ययन कर आप मथुरामें पधारे यह प्रसंग प्रौढ़लीलामें आ गया। यह क्षत्रिय धर्म धारण करनेका सूचन है। यह धर्म स्वीकार कर ही उनने वह—वह कार्य किया है। मूलमें सर्वके लिए इस अनुसार बताया हैं कि:—

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारण मानुषः।

तद्येशकालानुगुणं स्वावतार प्रयोजनम्॥

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे।

संरक्षणाय साधुनां कृतोऽन्येषां वधाय च॥

भा.द.उ. ६.६

अर्थ:—कारणवशसे मनुष्य रूप प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीहरि उस.उस देशकालके अनुकूल अपने अवतारके प्रयोजनका विचार करने लगे कि भूमिके भार हरण करनेके लिए ही सत्पुरुषोंका रक्षण करनेके लिए और दुष्टोंका वध करनेके लिए यह अवतार मैंने लिया है।;६.६

पहले कहे गये वह राजलीलाके कार्य थे। परंतु भगवान्का अवतार होनेमें मुख्य ४ हेतु भी हैं। पृथ्वीके भारका हरण, साधुओंका संरक्षण, दुष्टोंका निवारण और भक्तिका प्रवर्तन; ये चार प्रधानभूत—मुख्य हैं। उसमें भूमिके भारका निराकरण करना—दूर करना यह राजस है, रक्षा करनी ये सात्विक है, दुष्टोंका निग्रह यह तामस और भक्तिकी प्रवृत्ति करनी यह निर्गुण है। दुष्टोंका नाश करनेसे ही मात्र पृथ्वीका भार दूर नहीं होता, पुनः भी दुष्ट उत्पन्न हो सकते हैं। परंतु प्रभुने तो उनको मारकर वह उत्पन्न नहीं हों ऐसा किया। रक्षा भी हो, भार दूर हो तथा भक्तिका स्थापन—सर्वत्र प्रवृत्ति भी

अच्छी रीतिसे हो सके। इन सर्वका विचार किया है। इसीसे जरासंधके साथ क्षात्र धर्मके अनुसार युद्ध ही करना श्रेष्ठ है, यह आपने विचारा। अब तक कंसराजाके समयमें यादवोंमें क्षात्र धर्म लुप्त ही हो गया था। उनमें वह धर्म लानेकी अत्यंत आवश्यकता थी। इसीलिए भगवान् ने स्वयं ही, आगे होकर क्षात्र धर्मका प्रवर्तन किया है। 'अस्तिः प्राप्तिश्च, कंसस्य' इस श्लोकसे आरंभ कर विरामायण धर्मस्य इस श्लोक तकके आशयको बतानेवाला यह नाम है :-

दिव्य-युद्ध-विशारदाय नमः ॥२॥

दिव्य युद्ध करनेमें चतुर ऐसे श्रीकृष्णको नमस्कार ।

दिव्य-अलौकिक युद्धमें प्रवीण प्रभु हैं। दिव्य आयुध आकाशमेंसे उतर आये, उनको ग्रहणकर दिव्य युद्ध किया। तरकशमेंसे बाण लेते उनको साधते, खेंचके छोड़ते तो असंख्य बन जाते थे और परिभ्रमण करते चक्रकी तरह सब जगह विद्यमान हों ऐसे दिखते थे। जिससे हाथी-घोड़ा पेदल वगैरह सारी सेनाओंका संहार हो जाता था। युद्ध भूमिमें खूनकी नदी बहने लगी। इसके अनुसार मनुष्यसे न हो सके ऐसा दिव्य युद्ध जरासंधके साथ भगवान् ने किया। और अपनी युद्ध प्रवीणता प्रकट करी। प्रभुका यह युद्ध भी मात्र क्रीडा रूप ही था इसीसे "विक्रीडितं तज्जगदीशयोः" मूलमें यह ही दर्शाया है, यह दर्शाकर भगवान् का अकिलष्ट कर्म-क्लेश बिना सहज रीति हो सके वैसा, कर्म है यह ज्ञापन किया। "एवं ध्यायति गोविन्द" यहांसे आरंभ कर "निर्जग्मतुः स्वायुधाद्व्यौः" यहां पर्यन्तका यह नाम जानना ॥२॥

जरासन्ध—समानीत—सैन्य—घातकाय नमः ॥३॥

जरासन्धके आए हुए सैनिकोंका घात करनेवाले
कृष्णको नमन ।

“ततोभूत्परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः” तब शत्रुओंकी सेना
हृदयमें बहुत त्रास पानेसे कांपने लगी। यहांसे आरंभ कर
“अक्षिण्वन्तदबलमं सर्वं वृष्णयः कृष्णदेवताः” श्रीकृष्ण जिसके
देवता हैं ऐसे यादवोंने जरासन्धकी सब सेनाका नाश किया।
इस श्लोक पर्यन्तके आशयको सूचन करता यह नाम है
॥३॥

द्वारका—पुर—निर्माण—हेतवे नमः ॥४॥

द्वारकाका निर्माण करनेके कारण रूप श्रीकृष्ण प्रभुको
प्रणाम ।

“तं दृष्ट्वाचिन्तयत्कृष्णः” यहांसे आरंभ कर “सर्वं
प्रत्यर्पयामासुर्हरिः भूमिगतं नृपे” यहां तक अथवा भा.ऊ.अ. ५०
के ४६ से ५७ श्लोक पर्यन्त कालयवन और जरासन्धके त्राससे
प्रजाको पीड़ा पाता देखकर समुद्रमें बारह योजन विस्तार
वाला, महान किलेवाला देवताओंके द्वारा दी गई सर्व
समृद्धियोंसे भरी हुई सुंदर द्वारका नगरका भगवान्ने निर्माण
किया, यह वर्णन किया है। इसके आशयको दर्शानेवाला यह
नाम है ॥४॥

भक्ताचिन्त्य—सुख—दात्रे नमः ॥५॥

भक्तोंको अचिन्त्य सुखका दान करनेवाले भगवान्का वंदन ।

भक्तजन, यादव शत्रुओंसे उत्पन्न हुए भयको लेकर अत्यंत आकुल व्याकुल होने लगे। उनके त्रासको दूर करनेके लिए एक ही रात्रिमें समुद्रके मध्यमें भव्य और दिव्य नगर बनाकर उनको उसमें निवास करा अत्यंत सुख दिया कि जिसका मनसे भी विचार हो नहीं सकता। मानों साक्षात् वैकुण्ठमें ही निवास करते हों। इसीसे सब प्रजाजनोंको उस नगरमें निवास कर परम सुख होने लगा। यह नाम 'तत्र योग प्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरि' इस श्लोकके भावको प्रगट करनेवाला नाम जानना ॥५॥

यवनान्तकाय नमः ॥६॥

कालयवनका अंत करनेवाले विभुका अभिवंदन।

गुफामें प्रवेश कर कालयवनका नाश किया—उसको भस्मीभूत किया इसका सूचन करते हैं। "तं विलोक्य विनिक्रान्तम्" यहांसे आरंभ कर "देहजेनाग्नि दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात्" इस श्लोकके तात्पर्य को प्रकट करने वाला यह नाम है। निरपराधी मुचुकुंद के "ढोंग कर सोते हुए यह कृष्ण हैं", यह समझ लात मारी। जिससे जाग्रत होकर सोतेसे उठ कर दिशाओंका अवलोकन कर कालयवनको देखा। अपने क्रोधसे उसके शरीरमें रही हुई अग्नि जैसे बाहरकी अग्निसे स्पर्श पाकर प्रकट हो वैसी प्रकट हुई और कालयवन क्षणभरमें भस्मीभूत हो गया। प्रभुकी इच्छासे ही मुचुकुंद द्वारा उसका नाश हुआ है ॥६॥

मुचुकुन्द—प्रसादकाय नमः ॥७॥

मुचुकुन्दके ऊपर अनुग्रह करनेवाले श्रीकृष्णको
नमस्कार ।

कालयवनका नाश हुआ फिर भगवान् ने अपने दर्शन मुचुकुन्दको दिए। प्रभुके दर्शनसे प्रसन्न होकर उसने भगवान् की स्तुति करी। प्रभुने उसको वर प्रदान कर तुम मुझे प्राप्त हो, यह जताया। भगवान् के महामनोहर स्वरूपका दर्शनकर गर्गमुनिके वचनोंका स्मरण कर मुचुकुन्द बहुत ही प्रसन्न हुआ। यह प्रसन्न होने रूपमें अनुग्रह प्रभुने ही किया है। “को नाम स पुमान् ब्रह्मन्” श्लोकसे आरंभ कर “त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम्” यहां पर्यन्त तकके श्लोकके आशयको बतानेवाला यह नाम है ॥७॥

सर्वदेवता—मनोरथ—पूरकाय नमः ॥८॥

सर्वदेवोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

भगवान् ने कालयवनका विनाश कर उसकी म्लेच्छ सेनाका भी नाश किया तथा उसका सर्व धन द्वारकामें भेज दिया। इस प्रकार तामस म्लेच्छोंका नाश कर सर्व देवोंका मनोरथ पूरण किया। “शिवब्राह्मण वाक्य परिपालकाय नमः” यह नाम पहले है और उसके बाद “सर्व देवता मनोरथपूरकाय नमः” यह नाम आता है। परंतु सुबोधिनीजीके आरंभमें इसका क्रम ऐसा नहीं है। सुबोधिनीजीमें श्रीमदाचार्यचरणने जिस रीतिसे आज्ञाकी है उस प्रकार ही यहां क्रम लिया है। पहले सब म्लेच्छोंका विनाश कर देवोंको प्रसन्न किया। उसके बाद जरासंध आया और श्रीकृष्ण भागने लगे। इस कारणमें ‘शिवब्राह्मण वाक्य

परिपालकाय नमः' यह नाम कहनेमें आया है। अतएव इस रीतिसे क्रम लेना ही योग्य है ॥८॥

समर्थ ईश्वर होने पर भी उन्होंने जरासंधसे पलायन क्यों किया। इसका कारण दर्शाता नाम कहते हैं—

शिव—ब्राह्मण—वाक्य परिपालकाय नमः ॥९॥

शिवके ब्राह्मणोंके वाक्यका परिपालन करनेवाले श्रीकृष्णको प्रणाम।

सत्रह बार जरासंध हारा, तब शंकरको प्रसन्न करनेके लिए घोर तप किया। इसीसे भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उसको ब्राह्मणोंका सेवन करनेका सूचन किया? क्योंकि ब्राह्मण भक्त श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंकी वाणी मिथ्या नहीं करते। तब जरासंधने अपने घर आकर ब्राह्मणोंको बुलाकर अपने सिंहासन ऊपर विराजमान किया। इसीसे प्रसन्न हुए ब्राह्मणोंने उसे सिंहासन भी वापिस दिया और वरदान दिया कि—तू शत्रु को जीते तथा तीनों लोकमें कोई दिवस भी पराजय नहीं पाये। यह शंकर तथा ब्राह्मणोंका आशीर्वाद मिलने पर १७ वी बार यादवोंके सामने युद्ध करनेके लिए १७ अक्षोहिणी सेना लेकर आया। भगवान् ब्रह्मण्य देव हैं, शंकर भी आपके भक्त हैं, उनके वचनका पालन करना चाहिए। इसीसे जरासंधके साथ १७ वी बार युद्ध न करके पलायन किया। प्रभुको भय तो होता ही नहीं। इसीलिए जरासंधके भयसे नहीं भागे। इस रहस्यको दर्शाने वाला यह नाम है।

यह कथा भागवतमें नहीं पुराणांतर में है। तो उन पुराणान्तर प्रकरणका नाम यहां किसलिए कहना चाहिए,

इसका समाधान करते हैं। सत्रह बार जरासंध पर विजय प्राप्त करनेवाले सर्वसमर्थ श्रीकृष्णको अठारवीं बार विजय प्राप्त करना अशक्य नहीं। ऐसा होने पर भी आपने पलायन किया और जरासंधको विजय दिलाई। इसका कारण शिवके ब्राह्मणोंके वचनका पालन करना ही है। भले इसका भागवतमें स्पष्ट सूचन नहीं किया, पर दिगदर्शन तो करा हुआ ही है। उनके वाक्यका पालन कर उनके ऊपर भी अनुग्रह किया है। यह करनेसे शिव और ब्राह्मणोंका भी निरोध प्रभुमें सिद्ध हुआ है। उनका मन प्रभुमें विशेष संलग्न हुआ है। यह नाम 'नीयमाने धने गोभिः आजगाम जरासंधः' यहांसे आरंभ कर 'अन्वधावद्रथानी कैरीशयोरप्रमाणवित्' यहां तकके श्लोकके आशयको व्यक्त करनेवाला है ॥६॥

दैत्य—मोहन—चरित्राय नमः ॥१०॥

दैत्यको मोह उत्पन्न कराये, ऐसे चरित्रवान् भगवान्का अभिवंदन।

पलायन करते-करते ऊंचे पर्वतके ऊपर बलदेव और श्रीकृष्ण चढ़ गए। उस पर्वतके चारों तरफ लकड़ी डालकर जला देनेमें आई देखकर जरासंध वह जल गए होंगे यह वृथा मान कर सेना सहित विदा हो गया। इसके अनुसार दैत्यको मोह उपजानेवाला जिसका चरित्र है। इस पर्वतका नाम प्रवर्षण था। भगवान् उसके ऊपर निरंतर अत्यंत वृष्टि करते। मेघवृष्टि तो किसी वखत कुछ हो, परंतु प्रभुकी दृष्टि तो निरंतर इस पर्वत ऊपर हुई थी। "पर्वतानामधिपति" यह श्रुति है। इसीलिए स्वयं ही उसपर वर्षण करते हैं, यह प्रभु वृष्टि करते हैं इसीसे ही सृष्टिमें जलवृष्टि हो रही हैं। इस अनुसार प्रभु वृष्टि नहीं

करें तो सृष्टिमें मेघवृष्टि हो ही नहीं और इस प्रवर्षण पर्वतके ऊपर ठंडी बहुत पड़ती थी। क्योंकि यह निरंतर मेघसे आच्छादित रहता था। इसीसे सूर्यका और अग्निका संबंध ही नहीं था।

उसने प्रभुको विनती कर अपनी शीतलता दूर करनेके लिए निवेदन किया। भगवान् उसका प्रिय करनेके लिए उस पर्वतके ऊपर चढ़े और उसकी ठंडीका निवारण किया। यह भगवान्का चरित्र अत्यंत अदभुत है। इससे दैत्य, जरासंध वगैरह मोह पा जाएं तो इसमें आश्चर्य क्या है? ॥१०॥

रुक्मिणी—मनोरथ—पूरकाय नमः ॥११॥

रुक्मिणीके मनोरथको पूर्ण करनेवाले विभुका वंदन ।

विदर्भराज भीष्मककी कन्या रुक्मिणी भगवान्के रूप गुणोंको नारदजीके द्वारा सुन कर उनकी कामना करने लगी और पत्र देकर ब्राह्मणको दूतकी तरह वहां भेजा। प्रभुने ब्राह्मण द्वारा स्नेह रूप संदेशोंको ध्यानमें लिया ओर आपने विदर्भ नगरमें पधार कर उनके मनोरथको पूर्ण किया। प्रभुका आगमन सुन रुक्मिणी प्रसन्न हो गई, इसका सूचक यह नाम है ॥११॥

रुक्मिणी—गान्धर्व—विवाहाय नमः ॥१२॥

रुक्मिणीसे गान्धर्व विवाह किया है जिसने ऐसे श्रीकृष्णको नमस्कार ।

रुक्मिणीने अपनी इच्छासे (पत्र में लिखा था कि मेरा तो आपसे वरण है और अपना श्रीहस्त उनके श्रीहस्तमें देकर ही रथ ऊपर विराजमान हुए थे) ही जिसके साथ गान्धर्व विवाह

किया है। अथवा रुक्मिणीके साथ उनकी इच्छासे गांधर्व विवाह करनेवाले प्रभु हैं “कन्या चान्तः पुरात प्रागात्” इस श्लोकसे आरंभ कर “तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्ण” इस श्लोक पर्यन्त कन्याको अंतःपुरमेंसे योद्धा रक्षण करते बाहर निकले, अंबिकालयमें जाकर देवीका पूजन कर मुकुंदके चरणारविंदका ध्यान धरते, रथ ऊपर चढ़नेकी इच्छा करने वाली उस राजकन्याका श्रीकृष्णने हरण किया इस अर्थका समर्थन करनेवाला यह नाम है ।।१२।।

रुक्मिणी—प्राणपतये नमः ।।१३।।

रुक्मिणीके प्राणोंके पति श्रीकृष्णको नमन ।

पहले रुक्मिणीने संदेश भेजा तब यह विनती करी थी कि आपका प्रसाद—अनुग्रह यदि मेरे ऊपर नहीं होगा—आप मेरा अंगीकार नहीं करोगे तो मैं प्राणोंका त्याग करूंगी। भगवान्ने उनको स्वीकार कर उनके प्राणोंके रक्षक, पति हुए और हरण किया। फिर शिशुपालका पक्ष राजाओंने किया, तब रुक्मिणीके प्राण घबराने लगे। युद्ध देख कर उनके प्राणोंकी स्थिति रह न सकी। भगवान्ने उस समय भी उनके प्राणोंका पतित्व संपादन किया—तब भी उनका रक्षण किया। पतिके सैन्यको शत्रुओंके बाणोंसे आच्छदित हुआ देखकर भयसे विहाल बन गई। लज्जित होकर हुई प्रभुके मुखारविन्दको देखने लगीं। तब भगवान् हंसकर बोले हे वामलोचन! अभी ये अपने शत्रुओंके दल नाशको प्राप्त हो जाएंगे। तुम जरा भी भयभीत नहीं हो। “मा स्म भैरवमलोचने” भगवदीयोंको भय होता ही नहीं। उसमें भगवदीय स्त्री वह तो किसीका भी भय रखती ही नहीं। कारण कि उनके वामलोचन—वक्र नेत्र होते ही पुरुष जीते तो

उनको भय क्या ? तुम्हारी यह मनोहर दृष्टि है इसीसे ही उनका नाश हो जाए। ऐसे विनोद कर प्रभुने उनके भयको दूर किया है ॥१३॥

रुक्मि—प्रभृति—दुष्ट—मानस—दुःखदाय नमः ॥१४॥

रुक्मि वगैरह दुष्टोंके मनको दुःख देनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

इस प्रकरणमें रुक्मि मुख्य हैं। इसीलिये यह पहले कहकर फिर अन्यका निरूपण किया है। अन्यमें शिशुपाल जरासंध वगैरह समझना। उनके मनको पराजित कर दुःख देनेवाले, उनकी मानहानि करनेवाले प्रभु हुए। “भो भो पुरुष शार्दूल द्रौर्मनस्यमिदंत्यज” हे पुरुषसिंह शिशुपाल! तू तेरे मनका दुःख विसार दे। इस रीतिसे जरासंधादिकोंने शिशुपालको उपदेश किया तथा रुक्मिने अपने शत्रु श्रीकृष्ण द्वारा अपनी बहन रुक्मिणीको राक्षसविधिसे हरण कर विवाह किया जानकर उनके पीछे जाकर महान युद्ध किया। परंतु पूर्ण पराभव पाकर विरूप बनकर प्रतिज्ञा भंग होनेसे भोजकट नगर कर, उसमें निवास करने लगा, वगैरह मूलके आशयको सूचन करनेवाला यह नाम है ॥१४॥

भगवान्ने रुक्मिणीको द्वारका लाकर विधिपूर्वक विवाह किया। इसका द्योतन करनेवाला नाम कहते हैं:—

रुक्मिणी—विवाह—प्रदर्शित—गृहस्थ—धर्माय नमः ॥१५॥

रुक्मिणीसे विवाह कर गृहस्थ धर्मको दर्शानेवाले
रुक्मिणीके पतिका वंदन ।

पहले हरण कर राक्षस विधिसे विवाह किया फिर रथके ऊपर आरोहण करते वखत पाणिग्रहण कर गांधर्व विवाह किया । तथा द्वारकामें शास्त्र विधिके अनुसार विवाह न करें तो आपके वंशमें सर्वत्र धर्मका उच्छेद हो । “यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः” जो श्रेष्ठ मुख्य जन आचरण करे वैसा ही आचरण अन्यजन करते हैं, ऐसा स्मृति नियम लागू पड़ जाय । और धर्मका स्थापन करनेके लिए पधारे हुए आप ही विपरीत करनेवाले बनें । इसीलिए वेदोक्त विधिसे तृतीय विवाह रुक्मिणीके साथ किया और आपने इस तरह सर्वत्र गृहस्थधर्मका सदाचार दर्शाया ।।१५।।

त्रिविध—विवाह—कर्त्रे नमः ।।१६।।

तीन प्रकारसे विवाह करनेवाले रुक्मिणीवल्लभका अभिनन्दन ।

भगवान्ने भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको महान महीपालोंसे जीत कर नगरमें जाकर विधि अनुसार लगन किया । उस समय द्वारकामें लक्ष्मीपति श्रीकृष्णको रुक्मिणी सहित निरख सब प्रजा प्रसन्न हो गई । इस मूलके आशयका यह नाम है ।।१६।।

यहां तक उत्तरार्धके पांच अध्याय पूरे होते हैं । ६ अध्यायके नामका निरूपण करते हैं:—

काम—जनकाय नमः ॥१७॥

कामको उत्पन्न करनेवाले कामपिताको नमन ।

प्रभुने जब भार्याका स्वीकार किया तब पुत्रका स्वीकार भी आवश्यक है। वह पुत्र प्राकृत नहीं हो इसमें संदेह है ही नहीं क्योंकि पहले शंकर द्वारा जला दिए होनेसे वसुदेवांश रूप कामकी उत्पत्ति करनी योग्य है। इसीसे उसके जनक—उत्पन्न करने वाले पिता आप हुए। “आत्मा वै जायते पुत्र” इस अनुसार आपका अंश ही आपके वीर्यसे आप प्रकट करें इसीसे यह पुत्र साधारण जीवभूत है, यह नहीं पर आपके अंशभूत ही हैं। सुबोधिनीजीमें आज्ञा करी है कि भगवान् का वीर्य क्रियाशक्ति रूप है। अन्नसे उत्पन्न हुआ नहीं। क्रियाशक्ति संदेशकी अपेक्षा रखती है। आपका काम चिद्रूप है और रुक्मिणीके अंशके संबंधसे उसमें आनंदांश आया हुआ है। यह सत्चित् आनंदांश काममें प्रकट हुआ है। इसीसे यह काम सच्चिदानंदांश होनेसे सामान्य जीवके अनुसार उसकी तुलना नहीं होती। सर्वरीतिसे अपने पिता श्रीकृष्णके समान ही—अंश कर जरा भी न्यून नहीं ऐसा है। “कामस्तु वासुदेवांश” यहांसे आरंभ कर “प्रद्युम्न इति विख्यातः” इस श्लोक पर्यन्तके भावको यह नाम बताता है ॥१७॥

शम्बर—घातक—प्रद्युम्नाय नमः ॥१८॥

शंभरासुरका घात करनेवाले प्रद्युम्नको नमस्कार ।

शंभरासुर अपना पूर्व वैरी यह कामदेव है, यह जान प्रसूतिके बाद दश दिवसमें ही उसको उठाकर समुद्रमें फेंक

दिया। उसको एक बड़ी मछली निगल गई। वहांसे मछुआरोंने जलमें पकड़ शंभरासुरको ही निवेदन करके उसको अपनी पाक करनेवाली मायावतीको दिया। शस्त्रसे छेद कर उसमेंसे सुंदर बालकको निरख वह अत्यंत विस्मित हुई। फिर नारदजी द्वारा मायावती—पूर्व जन्मकी कामकी स्त्री रतिने उसको अपना पति जानकर पालन किया। थोड़े ही समयमें महामनोहर नवयौवन रूप हुए। अपने प्रियको देख मायावतीने सर्व मायारूप विद्याएं उनको बताई। युद्ध योग्य होने पर प्रद्युम्नने शंभरासुरको मारा। दोनों दंपति द्वारका नगरमें आकर सभीको आनंद देने लगे। वगैरह मूलके आशयको सूचन करता यह नाम है, यह जानना। शंभरासुरका घात करनेवाले और सर्वको प्रकृष्ट—उत्तम रीतिसे आनंद देनेवाले प्रभु हैं ।।१८।।

सप्तमाध्याय का नाम कहते हैं:—

जाम्बवती—प्राणपतये नमः ।।१९।।

जांबवतीके प्राणोंके पतिको प्रणाम ।।

जांबवतीके पिता जांबवानको श्रीकृष्णने आधीन किया उसने भी प्रभुको निरखि अपना सर्व समर्पण किया। इसलिए उसके प्राणोंके पति हुए। इसीसे जांबवंती प्राणपति यह कहा। “इत्युक्त स्वां दुहितरं कन्यां जांबवतीं मुदा” इस श्लोकके आशयको दर्शानेवाला यह नाम है ।।१९।।

मणि लानेके कारणको बताने वाला नाम कहते हैं:—

लोक—निर्मित—सर्वार्थ—ज्ञापकाय नमः ।।२०।।

लोकोंके निर्माण करे हुए सर्वार्थका ज्ञापन करनेवाले श्रीकृष्णका वंदन ।

लोकोंमें निर्माण करे हुए अर्थात् अनुमानसे कल्पना करे हुए वास्तविक रीतिसे दिखाकर मिथ्याभूत सर्व अर्थका ज्ञापन करनेवाले प्रभु हैं। “दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो” यहांसे आरंभ कर “सत्राजित समाहूय सभायां राजसंनिधौ । प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत्” यहां तकके कथाके प्रसंगको अनुसरता यह नाम है। प्रत्येक दिवसमें स्यमंतक नामकी मणि आठ भार स्वर्ण देती। एक दिवस प्रभुने उग्रसेन राजाके लिए मणिकी मांगकी परंतु द्रव्य लोभी सत्राजितने वह मणि नहीं दी। सत्राजितका भाई इस मणिको कंठमें धारण कर वनमें जा रहा था तब मार्गमें सिंहने उसका नाश किया। उस सिंहको जांबवानने मारा। परंतु सत्राजितने सर्वत्र अपने भाईको श्रीकृष्णने मारा यह मिथ्या प्रसिद्ध किया। इसीसे श्रीकृष्णने मणिका शोध करके जांबवानके साथ महान युद्ध कर जांबवती सहित मणिको प्राप्त कर सभामें सत्राजितको बुलाकर उसको मणि आपने दे दी। यह सर्व अर्थका ज्ञापन आपने किया ॥२०॥

सत्यभामा—वल्लभाय नमः ॥२१॥

सत्यभामाके वल्लभ श्रीद्वारकाधीश प्रभुका अभिवंदन ।

सत्यकी तरह ही भासमान होती सत्यरूपा और कांतिरूपा ऐसी सत्यभामाके वल्लभ—प्रियतम अथवा सत्यकी तरह जिसकी शील उदारता वगैरह हृदयके, इन्द्रियोंके, शरीर के गुण

भासमान होते थे। ऐसी सर्व गुण युक्त सत्यभामाके प्रिय श्रीकृष्ण हैं। “स चाति व्रीडितो रत्नम्” यहांसे आरंभ कर “तां सत्यभामां भगवानुमयेमें यथाविधि:” इस श्लोक पर्यन्तके आशयको बतानेवाला यह नाम है ॥२१॥

सत्राजित्—स्वर्ग—हेतवे नमः ॥२२॥

सत्राजितके स्वर्गके कारण रूप कृष्णको नमन।

यद्यपि यह सत्राजित निरोधका अधिकारी था पर अन्यदेवमें उसकी बुद्धि हुई होनेसे उसको निरोध सिद्ध नहीं हुआ। वह देहका त्याग कर मणि द्वारा भक्तराज अक्रूरजीके अंतरमें विराजमान रहे हुए भगवान्‌के चरणारविंदरूप वाराणसी वगैरह तीर्थोंमें निरोध प्राप्त करेगा। प्रभुने उस ही अनुसार उसकी व्यवस्था करी होनेसे इसके हेतुरूप आप हुए हैं। “एवं मिन्नपदेः शयनयामवर्धात्” इस श्लोकका तात्पर्य रूप यह नाम है ॥२२॥

स्यमन्तक—मणि—हर्त्रे नमः ॥२३॥

स्यमन्तकमणिका हरण करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार।

यदि मणि सत्राजितके पास रहे तो उसका अन्य संबंध भी रहे ही इसीसे निरोध सिद्ध नहीं होगा। इसीलिए मणिका हरण करने रूप चरित्र आपकी इच्छासे ही हुआ है। इसीसे उस मणिको हरनेवाले प्रभु हैं। “स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दतीनामनाथवत् हत्वा पशून् शौनिकवन्— मणिमादाय जग्मिवान्” अनाथकी तरह रुदन करती स्त्रीयोंको मार कर पशुओंका नाश कर उनके मांसको बेचनेवाले कसाईके जैसा

क्रूर शतधन्वा मणि लेकर भाग गया। इस श्लोकके आशयको सूचन करने वाला यह नाम है ॥२३॥

शुद्ध—कीर्ति—स्थापकाय नमः ॥२४॥

शुद्ध कीर्तिका स्थापन करनेवाले पुण्यश्लोक प्रभुको प्रणाम।

मणिको प्रकट कर उसका स्थापन कर भक्तजनोंमें अपनी शुद्ध, पवित्रकीर्तिको प्रभुने स्थापन किया। 'इत्थंगोपदिशंत्येक' यहांसे आरंभ कर 'तत्सुतस्तत्प्रभावोसावक्रूरो' इस श्लोक तकके आशयको बतानेवाला यह नाम है ॥२४॥

अक्रूरादि—भक्त—दोष—निवारकाय नमः ॥२५॥

अक्रूरादि भक्तोंके दोषको दूर करनेवाले वासुदेवका अभिवंदन।

मणि स्वयंके पास ही थी। इसीलिए अक्रूरजी प्रभुका अपराध हुआ जानकर द्वारकामेंसे पलायन कर गये। श्रीकृष्णने उनको दूत द्वारा बुलाकर मणि सभामें दर्शानेकी मांग की। अक्रूरजी प्रभुकी आज्ञाके अनुसार आकर मणि सभा में दिखाई अन्यथा तो यह महान दोषवान हो। कृतवर्मा भी उसमें है। यह दोनों जन और उनका संबंध रखनेवाले सर्व भी आपके भक्त ही हैं। इसीलिए उन सभीको दोषमुक्त कर अक्रूरजी द्वारा सभामें मणिका दर्शन कराया और वह मणि अक्रूरजीने स्वाधीन करी। भक्तोंके दुःख प्रभुसे सहन नहीं होते। इसीलिए उनको बुलाकर उनका दोष दूर किया है और भगवान्के ऊपर

मणिहरण करनेकी अपकीर्ति रही हुई है। अक्रूरजीके द्वारा अपने पर रहे संदेहको भी प्रभुने दूर किया है। प्रभुके अपराधके कारण रूप अक्रूरजी हों तो भी उनका महान दोष माना जाए। वह दोष उनका दूर किया वगैरह तात्पर्य इस नाममें रहा हुआ है ॥२५॥

अब उत्तरार्धके नवमें अध्यायके नामोंको कहते हैं। अब तक त्रिगुणरूप तीन विवाह निरूपण किये। रुक्मिणी विवाह राजस प्रकरण होनेसे राजस है, सत्यभामाका विवाह तामसी तथा जांबवंती विवाहका प्रसंग सात्विकी है, आगे पंच विद्यारूप पंच विवाहका निरूपण करते हैं:-

कालिन्दी-पतये नमः ॥२६॥

कालिन्दीके पति भगवान्का वंदन।

अर्जुनके साथ रथ ऊपर विराजमान होकर वनमें पर्यटन करती श्रीयमुनाजीके तटपे तपश्चर्या करती कुमारी कालिन्दीको निरखि अर्जुन द्वारा उनको प्राप्त कर रथ ऊपर बैठाकर धर्मराजके पास हस्तीनापुरमें प्रवेश किया। यहां तककी कथाके भागका सूचक यह नाम है ॥२६॥

पाण्डव-राज्य-स्थापकाय नमः ॥२७॥

पाण्डवोंके राज्यका स्थापन करनेवाले अर्जुनके सखा प्रभुको नमस्कार।

अत्यंत आश्चर्यकारक सुंदर इन्द्रप्रस्थ नामका नगर दिव्यसभा वगैरह निर्माण कराकर पाण्डवोंको राज्य ऊपर अच्छी रीतिसे स्थिर कर आप द्वारकामें पधारे, वगैरह भाव सूचक यह नाम है ॥२७॥

मित्रविंदा—पतये नमः ॥२८॥

मित्रविंदाके पतिको नमन ।

विंद और अनुविंदनीकी बहन मित्रविंदा आप पर आसक्त थी । उसके भावको जानकर सब राजाओंके समक्ष श्रीकृष्णने उनका हरण किया । आप उनके पति हुए इस अर्थका सूचक यह नाम है ॥२८॥

सत्या—पतये नमः ॥२९॥

सत्याके पति प्रभुको नमन ।

सात वृषभोंकी नकेल कसके—नाथके आपमें परायण सत्याको आपने अंगीकार कर कोशल देशके नग्नजित् नामके राजाकी इस कन्यासे विधि अनुसार विवाह कर, उनके पति हुए । इस आशयका यह नाम है ॥२९॥

भद्रा—पतये नमः ॥ ३० ॥ भद्राके पतिको प्रणाम ।

अपने पिताकी बहन श्रुतिकीर्तिकी पुत्री केकय देशके नरेशकी नंदिनी सुप्रसिद्ध ऐसे उनके बंधुओंसे प्रीतिपूर्वक दी हुई भद्राके साथ विवाह कर उनके पति हुए ॥ ३० ॥

लक्ष्मणा—पतये नमः ॥३१॥

लक्ष्मणाके पतिको प्रणाम ।

भद्रदेशके अधिपतिकी कन्या सर्व सुलक्षणोंसे युक्त
लक्ष्मणाको स्वयंवरमें स्वीकार कर उनके पति—रक्षक हुए
॥३१॥

रोहिणी—पतये नमः ॥३२॥

रोहिणीके पति श्रीकृष्णचंद्रका वंदन ।

भौमासुरसे आई हुई सोलह हजार एक सौ स्त्रीयोंमें यह
रोहिणी मुख्य थी। प्रभुने उनका स्वीकार किया। उन सब
स्त्रीयोंमें रोहिणीको मुख्य कहनेका प्रयोजन इतना ही है कि
मंत्र शास्त्रमें किसी स्थलमें आठ पटराणीयोंमें भद्राके स्थानमें
इनका स्थान आता है इसीलिए इनको पहले बताया ॥३२॥

षोडश—सहस्र—नायिकाधिपतये नमः ॥३३॥

सोलह हजार नायिकाओंके अधिपति प्रभुको प्रणाम ।

भौमासुरको मार उसके द्वारा रोक कर रखी हुई सुंदर
दिखने वाली सोलह हजार एकसौ स्त्रीयोंको आपने मुक्त
किया। उसके बाद उनसे विधिके अनुसार पाणिग्रहण कर
पतित्व प्राप्त किया— अर्थात् हजारों सुंदरियोंके अधिपति हुए।

यहां शंका हो कि भौमासुरके मारनेके बाद
राजकन्याओंको लाकर उनके साथ विवाह किया ऐसा है तो
पहले भौमासुर — नरकासुरके नाशका सूचन करता नाम होना
चाहिए, तब फिर स्त्रीयोंका उद्धार और उनका विवाह
दर्शानेवाला नाम होना चाहिये? समाधान करते हैं कि
भगवान्का मुख्य कार्य स्त्रीयोंका अपनेमें निरोध कर उनका
उद्धार करना है। भौमासुरको मारना यह इसका साधनभूत मात्र

गौण कार्य ही है। इसीलिए ही मूलमें “चारुदर्शनाः” यह स्त्रीयोंका विशेषण बताया है। सर्व रीतिसे हरण करी हुई यह स्त्रीयां जिनका दर्शन—ज्ञान सौन्दर्य परम आकर्षक था। वह ही उनके पतित्वके कारणरूप हैं। भगवान्ने उनका स्वरूप जानकर, भाव समझकर अपना पतित्व अंगीकार करके ही उनको लाए हैं। भौमासुरको मारनेके बाद कोई यह ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। मारनेके पहले ही उनके ही उद्देश्यसे उसका संहार कर उनका उद्धार किया है। इसीसे यह नाम पहले स्थापन करते हैं। नायिकापद भी उनका रसात्मकत्व, सौन्दर्य—सकल गुण लक्षणोंका सूचन करता है। यह सामान्य स्त्रीयां नहीं परन्तु स्वर्गसे वारांगनाओंके रूपमें आपके लिए ही प्रकट करी हुई दिव्य नायिकाएं थीं। आप ही उनके पति थे और पति संरक्षक हुए ॥३३॥

मुरारये नमः ॥३४॥

मुर नामके असुरके शत्रु मुरारिको वंदन।

नरकान्तकाय नमः ॥३५॥

नरकासुरके अन्तक—कालरूप भगवान्का अभिवंदन ।

यह दशम अध्यायका नाम है। अध्यायके आरंभसे “शिरांसि चक्रेण जहार” यहां तकके आशयको बतानेवाला मुरारि नाम जानना और “अपाहरदग्जस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना” इस श्लोकके अर्थका समर्थन करनेवाला नरकान्तक नाम है ॥३५॥

वसुधा—पूजित—चरणाय नमः ॥३६॥

पृथ्वीने पूजे हैं चरण जिनके ऐसे भगवान्को नमस्कार
।

नरकासुरके मरनेसे पृथ्वी प्रसन्न हुई। श्रीकृष्णके पास आकर तपे हुए सोने और रत्नसे चमकते हुए कुंडल प्रभुको अर्पण किये, तथा वैजयंतीमाला, वरुणदेवका छत्र, महाप्रकाशवान मणि वगैरह प्रभुको निवेदन कर उनका सम्मान किया। चरणारविंद पूजन कर उनका वंदन कर वाणीसे स्तुति करने लगी। इस आशयको स्फुट करनेवाला यह नाम है॥३६॥

भौमासुरके पुत्रोंको अभय देकर उनका राज्य उनको दिया। उस समय वहांकी सब प्रजाजनोंको सुखरूप हुआ। इसका नाम कहते हैं:—

सर्वजनीन—सुख—हेतवे नमः ॥३७॥

सर्वजन मात्रको सुखके हेतु भगवान्को नमन।

भौमासुर—नरकासुर सर्व प्रजाको पीड़ा रूप था। भूमिको भी पीड़ारूप था। उसका संहार कर सब प्रजको, भूमि को, स्त्रीयोंको सुखके कारण रूप भगवान् हुए हैं। इस तरह द्वारकामें सब स्त्रीजनोंको भेजकर, शत्रुओंका नाश कर सब प्रजाजनके सुखके कारण रूप हुए हैं। इसीलिए यह नाम इस आशयको व्यक्त करता है॥३७॥

द्वारकामें दिव्य सुख भी प्रभुने किया है, ऐसे आशयका नाम कहते हैं:—

पारिजातापहरणाय नमः ॥३८॥

पारिजातका अपहरण करनेवाले उपेन्द्रका वंदन ।

स्वर्गके दिव्यवृक्ष पारिजातको सत्यभामकी प्रीति प्राप्त करने के लिए नंदनवनमेंसे हरण कर द्वारकामें सत्यभामाके भवनके बागमें रोपा । इस कथा भागका उद्देश्य करता यह नाम कहा ॥३८॥

महेन्द्रादि-दुष्टबुद्धि-निवारकाय नमः ॥३९॥

महेन्द्र वगैरहकी दुष्ट बुद्धिका निवारण करनेवाले कृष्णका अभिवंदन ।

महेन्द्र आदि देव स्वर्ग वगैरहके अधिकारी हैं, उसके स्वामी वह नहीं । क्योंकि प्रभुने अपने स्वार्थके लिए-रमणार्थ ही उस उस वस्तुका स्थापन किया है । इसीसे उन सबके स्वामी प्रभु ही हैं । परंतु देवता अपना स्वामित्व सबमें मान कर बैठे हैं । इसीलिए एक बार प्रभुने उनके पास मांग करी फिर भी न दिया और दुष्टि बुद्धि दर्शाने लगे । उन देवोंके मदको उतारनेके लिए पूरा पारिजात वृक्ष ही मूलसे उखाड़ लिया । अपने पराक्रमसे उनकी दुष्ट बुद्धिका निवारण किया । “गत्वा सुरेन्द्रभवनम्” वहांसे आरंभ कर “विबुधान निर्जित्येपानयत् प्रभुः” यहां पर्यन्त तकके श्लोकके भावको दर्शाता यह नाम है ॥३९॥

सर्वरत्नकोषादि-पूरित गृहाय नमः ॥४०॥

सर्वरत्नोंके भंडारोंसे भरपूर जिनका गृह है, ऐसे प्रभुको प्रणाम ।

सोलह हजार स्त्रीयोंके और मुख्य पटरानियोंके गृहको सब रत्नोंके भंडारसे भरपूर बना दिया है। तीनों लोकोंमें पारिजातकी तरह हजारों दिव्य लक्ष्मी विलासके साधनोंको प्रत्येक पत्नीके भवनमें स्थापन किया है। “स्थापितः सत्यभामायाः” यहांसे आरंभ कर गृहोद्यानोपशोभिनः” यहां तकके आशयको सूचन करता यह नाम है ॥४०॥

उत्तरार्धके ग्यारहवें अध्यायके दो नाम कहते हैं:—

रुक्मिण्यादि—स्त्री—मनःपरीक्षकाय नमः ॥४१॥

रुक्मिणी आदि स्त्रीयोंके मनकी परीक्षा करनेवाले भगवान्को नमस्कार ।

यहां आदि पद कहा है। रुक्मिणीकी तरह सब स्त्रीयोंके अन्तःकरणकी परीक्षा उस ही रीतिसे करी है, इसका सूचन करनेके लिए ही यह नाम है ॥४१॥

लौकिक लीलावाक्यविशारदाय नमः ॥४२॥

लौकिक लीलाओंके वाक्योंमें परम चतुर श्रीकृष्णको नमन ।

‘राजपुत्रीप्सिता भूपैः’ इस वाक्यसे आरंभ कर ‘एतावदुक्तवा’ इस वाक्य तक यह नाम है। अथवा लौकिकलीलासंबंधी वाक्य जिनके हैं। इसीसे वाक्य भिन्न कर दूसरी ‘विशिष्टा’ विशेष भक्तिमार्गीय अलौकिकी ‘शारदा’ वाणी जिनकी है, ऐसा वाक्य करना। फिर दोनों भिन्न वाक्योंको

जोड़ कर नामकी योजना करनी । पूर्व वाक्यमें रुक्मिणीकी उपहास करते, दशमी मूर्छावस्था हुई। ऐसी अवस्था देखकर प्रभुने सात्वना दी कि “त्वद्धचः श्रोतु—कामेन क्ष्वेलाचरितमंगने” तुम्हारे मधुर कटाक्षयुक्त वचन श्रवण करनेके लिए ही इसके अनुसार मात्र उपहास ही करा है। इसके अनुसार कहकर उनके हृदयमें प्रवेश कर उन वाक्योंको उत्पन्न किया। इसीसे लौकिक लीलाके वाक्योंमें प्रभु विशारद—परम—चतुर चिंतामणि हैं ॥४२॥

अब उत्तरार्धके १२वें अध्यायका नाम कहते हैं। इस अध्यायमें प्रभुका वैदिक रमण कहनेमें आता है। लौकिक रमण पहले कहा है। वैदिक रमणमें जो “दशास्यां पुत्रानाधेहि” इन भार्यामें दश पुत्रोंको धारण करो। इस श्रुतिवाक्यको सत्य करनेके लिए प्रत्येक पत्नीमें प्रकट किया। इसका नाम कहते हैं:—

श्रुत्यर्थ—प्रतिपादक—दशदश—पुत्राय नमः ॥४३॥

श्रुतिके अर्थका प्रतिपादन करे ऐसे दश दश पुत्र जिनके हैं ऐसे भगवान्का वंदन ।

‘एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान दशदशाबलाः’ यहांसे आरंभ कर “गेहिण्यास्तनया हरेः” यहां तकके अर्थको दर्शानेवाला यह नाम जानना ॥४३॥

कलिधर्म—प्रतिपादक—वंशादि—कर्त्रे नमः ॥४४॥

कलियुगके धर्मका प्रतिपादन करें ऐसे वंश आदिको करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

कलियुगमें शुद्ध क्षत्रिय वंश स्थापन नहीं करना चाहिये। यह निश्चय कर “पाप विवाहमकरोत् फलं प्तस्याप्यसूचयत्” पापिष्ठ विवाह किया इसका फल भी सूचन किया। आपके भानजेने रूक्मीको अपनी कन्या दी, यह पाप—विवाह है। आगे भी ऐसा ही हुआ है, इस रहस्यको बतानेवाला यह नाम है और ‘प्रद्युम्नाद्यानिरुद्धोभूत्’ यहांसे आरंभ कर “ततोऽनिरुद्धो सह सूर्यया वरं रथ समारोप्य” यहां तक भी यह नाम है ॥४४॥

अब तेरहवें अध्यायको छोड़कर चौहदवें अध्यायके नामों का निरूपण करते हैं। यह १४ अध्याय तक ही हैं। उसमें पहला यह नाम दर्शाते हैं:—

बाणासुरबलान्त कर्त्रे नमः ॥४५॥

बाणासुरके बलका अंत करनेवाले भगवान्‌का अभिवंदन।

इस नामसे बाणासुरके बलका विनाश करनेके हेतु अध्याय १३ अध्यायमें उषा और अनिरुद्धके मिलाप प्रसंगका भी आशय आ जाता है। भगवान्‌ शंकर बाणासुरकी सहायता करनेके लिए वृषभके ऊपर विराजित होकर आये थे। इस प्रसंगसे आरंभ कर बाणासुर पराभव पाकर रथ बिना ही होकर अपने नगरमें प्रवेश कर गया। यहां तककी कथाके आशयको व्यक्त करने वाला यह नाम है ॥४५॥

महादेव प्रभुके भक्त हैं, राम और कृष्णके संबंधी हैं। उनको अपने स्वामीके साथ युद्ध अयोग्य हैं। तो भी अपने भक्त बाणासुरका प्रिय करनेके लिए उसको स्वीकार किया। कारण कि जब उसका गर्व उतर जाय तब उसका प्रभुके आगे सम्मान होय। उसके करे हुए स्वसम्मानके हेतु भी आप ही हुए। इसकी सूचना करता नाम बताते हैं:—

महादेवादि—सम्मान—हेतवे नमः ॥४६॥

महादेव आदिके सम्मानके कारण रूप श्रीकृष्णको नमस्कार।

महादेवादि पदसे महादेव ज्वर वगैरहसे करी हुई प्रभुकी स्तुति—प्रभुका सम्मान इन सबके हेतुरूप आप ही हैं। महादेव जब तक युद्ध कर सके वैसा युद्ध करते हैं। पर भगवान्ने जृम्भकास्त्रसे मोह उत्पन्न कर बाणासुरका सब बलका नाश किया तब ज्वर उत्पन्न हुआ। वह ज्वर भी नारायणके बलसे नष्ट हुआ ॥४६॥

जब ज्वरने कोई भी निर्भय स्थान नहीं देखा, तब सबसे निर्भय ऐसे भगवान्की ही शरण गया। उनकी स्तुतिकर भगवान्का स्मरण किया। इसीसे ज्वरका नाश न हुआ। किन्तु प्रभुके चरणकी शरण स्वीकारनेसे सम्मानको पाया। इसका नाम सूचन करते हैं:—

ज्वरादि—दोष—नाशकाय नमः ॥४७॥

ज्वर आदिके दोषोंका नाश करनेवाले नारायणको नमन ।

ज्वरके दोषोंको दूर किया—नष्ट किया परंतु उसका स्वरूप नाश नहीं किया । भयभीत हुआ ज्वर सर्वत्र अभय नहीं मिलनेसे प्रभुकी शरण गया । इस कथाभागके आरंभसे “भगवान्को नमन कर महेश्वरका ज्वर अपने स्थानमें चला गया” यहां तकके कथाभागको कथन करनेवाला यह नाम है, यह जानना ॥४७॥

आगे अपने भक्तका अनिष्ट न हो इसीलिए शंकरने भी भगवान्से प्रार्थना करी तब भगवान् प्रसन्न होकर उनकी स्तुतिका सम्मान किया उनके भक्त बलिराजाको नहीं मारकर रक्षा करी । इस आशय का नाम दर्शाते हैं:—

प्रह्लादादि—भक्तवंश—रक्षकाय नमः ॥४८॥

प्रह्लाद आदि भक्तोंके वंशका रक्षण करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

यहां आदि पद कहा होनेसे प्रह्लादके वंशको उसी तरह बलिराजाका और उनके वंशका भी ग्रहण करना । “यदात्थ भगवन्” यहांसे आरंभ कर “प्राद्युम्नि रथमारोप्य” यहां तकके श्लोकके भावको जताता यह नाम है ॥४८॥

सात्त्विक प्रकरणके आरंभमें १५ अध्यायके नाम निरूपण करते हैं:—

दानादिधर्म—बोधकाय नमः ॥४९॥

दान आदि धर्मका बोध करानेवाले भगवान्‌का वंदन ।

यद्यपि नृगराजाका मोक्ष करनेके बाद दानादि धर्मका ज्ञान अपने पुत्र यदुकुमारोंको कराया है तो भी यह सात्विक प्रकरण ही है। राजस भक्तोंको सात्विक धर्मकी प्रवृत्ति हो, तथा दान आदि धर्मका उपदेश भी हो, इसीलिए ही नृगराजाके मोक्षका उपक्रम आरंभ कर उपदेश किया। उस प्रकारका नाम कहा ॥४६॥

नृग—मोक्ष—हेतवे नमः ॥५०॥

नृगराजाके मोक्षके कारणरूप भगवान्‌का अभिवंदन ।

यदुकुमारोंने एक समय उपवनमें विहार करते करते कुएँ पड़े हुए बड़े गिरगिटको देखा। उसका उद्धार करनेका प्रयास किया, फिर भी उनसे कुछ भी नहीं हो सका। इसीलिए श्रीकृष्णको निवेदन कर उसमेंसे उनका उद्धार किया, वह नृगराजा थे। दिव्य स्वरूप प्राप्त कर प्रभुके दर्शन कर प्रसन्न होकर भगवान्‌के चरणाविंदका वंदन करने लगे। अपनी इस दुर्दशाका कारण प्रभुके पूछने पर दर्शाकर उनकी आज्ञासे विमानमें विराजमान होकर सबके देखते हुए मुक्त हो गए। इस भावको जतानेवाले यह दोनों नाम जानने ॥५०॥

उसके बाद अपने यदुकुमारोंको शिक्षण दिया इसका द्योतन करनेवाले नामका उपदेश करते हैं :-

ब्रह्मण्याय नमः ॥५१॥

ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

ब्रह्म—ब्राह्मणमें निष्ठा रखनेवाले इस प्रकार सबको ब्राह्मणोंमें भगवन्निष्ठ भगवदीयोंमें भाव रखनेका उपदेश करनेवाले प्रभु हैं। यदुकुमारोंको इसका उपदेश दिया है। नृगराजाके साधारणसे भी अपराधसे यह दशा हुई। तो ब्रह्मस्व हरण करनेसे क्या होगा? यह अपने कुमारोंको उपदेश किया। इस आशयको दर्शानेवाला यह नाम है ॥५१॥

उत्तरार्ध के १६ अध्यायका नाम कहते हैं:—

पुष्टिमार्ग—प्रवर्तकाय नमः ॥५२॥

पुष्टिमार्गका प्रवर्तन करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

बलभद्रने ब्रजमें जाकर गोपिकाओंकी कामनाओंको पूर्ण किया है। यह अनन्यपूर्वा गोपिकाएं हैं। प्रभुने कुमारिकाओंको तो अपने साथ ही द्वारकामें लाकर हृदय मंदिरमें ही उनको पधराया है। पूर्वमें प्रभुके मथुरा गमन समयमें सब गोपिजनोंको 'आयास्ये इह' इस वाक्यमें ब्रजमें पधारनेकी आज्ञा करी थी। इस आज्ञाका पालन करने और दिए हुए वचनको सिद्ध करनेके लिए आप बलभद्र द्वारा पुनः ब्रजमें पधारे। उनकी कामना पूर्ति करी। पहले प्रमेय बलसे सब कार्य किया था। यहां प्रमाण बलका आश्रय कर साधनद्वारा पूर्णता करी है। बलभद्र स्वरूपसे आपने स्वरूपानंदका पोषण किया। उनकी आत्माको इस रीतिसे पुष्ट कर पुनः आप पुष्टिमार्गके प्रवर्तन करनेवाले हुए हैं ॥५२॥

यमुना—कर्षण—हेतवे नमः ॥५३॥

यमुनाको आकर्षण करनेके कारण रूप कृष्णको नमस्कार ।

सोलहवें अध्यायके दोनों नाम हैं । सत्रहवें अध्यायके नामोंका निरूपण करते हैं:-

स्पर्धादि-दुष्ट-विमोचकाय नमः ॥५४॥

स्पर्धा आदिसे दुष्ट बने हुएको विशेष रीतिसे मुक्त करनेवाले मुकुन्दका वंदन ।

जैसे कंस वगैरहका नाश कर उसको मुक्त किया । वैसे ही स्पर्धा कर अपनेको ही वासुदेव कृष्ण मानता और मनवाते पौंड्रक वगैरहको भी अच्छी रीतिसे मुक्त किया । यह इस नामका भाव है ॥५४॥

पौण्ड्रक-काशी-राज-हन्त्रे नमः ॥५५॥

पौंड्रक और काशीराजको मारनेवाले श्रीहरिका अभिवंदन ।

पौंड्रक और उसका मित्र काशीदेशका राजा पौंड्रककी सहायता करनेके लिए काशी आया हुआ था । प्रभुने उन दोनोंका नाश किया “नन्दब्रजं गते रामे” नंदरायजीको ब्रजमें राम ने पधराया तब इस कथा भागसे आरंभ कर “एवं मत्सरिणमहत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः” मत्सर धारण करनेवाले पौंड्रकको मित्र सहित मारकर भगवान् ने द्वारकामें प्रवेश किया । इस कथा भाग पर्यन्तके यह दोनों नाम हैं ॥५५॥

देवतान्तर—वर—दृप्त—गर्व—नाशकाय नमः ॥५६॥

अन्य देवके वरदानसे गर्विष्ट होनेसे उनके गर्वका नाश करनेवाले कृष्णको नमन ।

काशीराजाके पुत्र सुदक्षिणने अन्य देवका आराधन कर पिताको मारनेवाले कृष्णको मारनेका निश्चय कर दक्षिणाग्निमें होम कर कृत्याग्नि प्रकट कर द्वारकाका संहार करनेके लिए महान प्रयास किया । परंतु भगवान्ने सुदर्शन चक्र द्वारा उस कृत्याग्निका पराभव कर कोटिसूर्यके जितना तेजस्वी चक्र काशी नगरमें भेजा । इस कथा—भागका सूचन यह नाम करता है ॥५६॥

काशी—दाहकाय नमः ॥५७॥

काशी नगरका दाह करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

वह कृत्याग्नि चक्रसे पराभव पाकर काशी नगरमें वापिस आई और उसने ऋषियों सहित सुदक्षिणको जला डाला । पीछेसे चक्रने भी प्रवेश कर समग्र काशी नगरको जला डाला । इस कथाभागका सूचन करता यह नाम है ॥५७॥

दुष्ट—निवास—दोष—नाशकाय नमः ॥५८॥

दुष्टके दोषका नाश करनेवाले नारायणको नमस्कार ।

प्रविष्ट हुए सुदर्शन चक्रने काशी नगरमें दुष्टके संबंधी सभी वस्तुओंको जला दिया । कुछ भी दुष्ट संबंधी अवशेष रखा नहीं । यह आशय जताता यह नाम है ॥५८॥

मुक्ति—हेतवे नमः ॥५६॥

मुक्तिके कारण रूप मुकुन्दका वंदन ।

दुष्ट लोग जिसमें निवास करते हों उस स्थानमें मुक्ति नहीं होती। काशीमें मरण होनेसे मुक्ति होती है। परन्तु यहां दुष्ट रहता था इसीसे इसमें अत्यंत बाधा होती थी। इसीलिए प्रभुने उस दुष्टका विदारण कर काशी नगरको मुक्तिके कारणरूप बनाया। इस तरह काशी नगरको जला दिया। इसकी कथा भी जो सुने उसकी भी मुक्ति होती है, यह मूलमें जताया है। इसीलिए सब रीतिसे मुक्तिके कारण आप भगवान् ही हैं ॥५६॥

दुःसंग—दृष्ट—द्विविदादि—वध—हेतवे नमः ॥६०॥

दुष्टके संगसे गर्विष्ट हुए द्विविध आदिके वधके कारणरूप भगवान्का अभिवंदन ।

द्विविद वानर दुःसंगसे गर्विष्ट हुआ था। बलभद्र द्वारा उसका नाश करवाकर उसके विनाशके कारण रूप आप हुए हैं। यह नाम संपूर्ण १८ अध्यायका जानना ॥६०॥

१६— अध्यायके नामोंका निरूपण करते हैं। पूर्वके अध्यायमें दुष्टका निवारण करवानेके लक्षण रूप चरित्र कहा। इस अध्यायमें शिष्ट पुरुषोंको शिक्षण देनेके रूप चरित्रका कथन करते हैं। यद्यपि बलभद्रका करा हुआ यह चरित्र है, तदपि आवेश रूपसे आप ही करते हैं। इसीलिए यह भगवच्चरित्र ही हैं। इसका सूचन करनेवाला नाम दर्शाते हैं:-

राज्यादि—दृप्त—कौरव—गर्व—नाशकाय नमः ॥६१ ॥

राज्य आदिको लेकर गर्विष्ट हुए कौरवोंके गर्वका नाश करनेवाले श्रीहरिको नमन ।

स्वयंवरमें अपनेमें आसक्त हुई दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको कृष्णपुत्र साम्बने हरण किया । कौरवोंने उसका पराभव कर उसको बंदीखानेमें डाला । इस क्लेशको शांत करनेके लिए बलदेव हस्तिनापुर पधारे । यादवों और कौरवोंमें परस्पर कलह नहीं हो इसीलिए बहुत प्रयत्न किया । पर गर्विष्ट कौरवोंने यह मान्य नहीं किया । इसीलिए क्रोधसे आक्रान्त हुए बलभद्र समग्र हस्तिनापुरको गंगामें डालने लगे । जिससे गर्वनष्ट होकर घबराकर कौरव शरण आए । इस कथा—भागका सूचन करता यह नाम है ॥६१ ॥

२० अध्याय का नाम बताते हैं :— उसमें सात्त्विक भक्तोंमें मुख्य नारदका निरोध करवाना है । यह नारद मर्यादाभक्तिमार्गीय होनेसे उनका निरोध भिन्न प्रकारका है । इसीलिए ही मर्यादामार्गके मोहमें लीन हुए नारद प्रभुकी परीक्षा करनेके लिए प्रवृत्त हुए । प्रभुने उनको अपने स्वरूपका भान कराकर उनके अंतरका मोह दूर किया । इसका ज्ञापन करनेवाले नामका निरूपण करते हैं:—

मर्यादाभक्ति—दृप्त—भक्त—मोह—नाशकाय नमः

॥६२॥

मर्यादाभक्तिसे गर्विष्ट बने भक्तके मोहका नाश करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

मर्यादा भक्तिसे गर्विष्ठ हुए नारदजी भगवान्‌को ही परकाष्ठापन्न वस्तु—अंतिममें अंतिम ध्येय समझते थे। पर उससे आगे भगवत्प्रेमको यह समझते नहीं थे, यह उनका मोह था। प्रभुने अपने स्वरूपकी विलक्षणता दर्शाकर उनका मोह दूर किया है। इस आशयका यह नाम है ॥६२॥

जीवाधिकार—शास्त्र—गर्व—नाशकाय नमः ॥६३॥

जीवके अधिकार संबंधी शास्त्रके गर्वको नाश करनेवाले भगवान्‌का वंदन।

नारदजी भी जीवरूप ही हैं। जीवके अधिकारका निरूपण करनेवाले शास्त्र, यह मर्यादा शास्त्र—वैदिकमार्ग है। उसके विरुद्ध नहीं ही करना चाहिए। इसीलिए ऐसा भगवान्‌ नहीं करें, यह आप मर्यादा भक्त होनेसे गर्व रखते थे। प्रभुने नरकासुरको मारा वह भूमिका पुत्र था। सत्यभामा भूमिका स्वरूप है। उस असुरको यह वरदान था कि अपनी माताको देखतेमें उनकी मृत्यु हो इसीलिए सत्यभामाके साथ भगवान्‌ने उसके नगरमें पधारकर उसका वध किया। भूमि—सत्यभामा उनकी माता हो तब प्रभु सत्यभामाके भर्ता होनेसे यह उनके पिता हुये। तो अपने पुत्ररूप नरकासुरको मारकर उसके द्वारा रोकी हुई स्त्रीयोंसे स्वयं कैसे विवाह किया, यह नारदजीको मर्यादा पद्धतिके अनुसार संदेह हुआ। प्रभुके स्वरूपका ज्ञान यथार्थ नहीं होनेसे उनमें यह अज्ञानता आई थी।

भगवान्‌ने अपनी माया दर्शाकर उनके गर्वको दूर किया “ब्रह्मान् धर्मस्य वक्ताहम्” यहांसे आरंभकर “कृष्णस्यान्त वीर्यस्य योगमाया महोदयम् मुहुर्दृष्टा ऋषिभूद्विस्मितः” यहां

पर्यन्त तक श्लोकके आशय रूप यह नाम है यह जानना
॥६३॥

यह अध्यायका निरूपण करते हैं:—

सुधर्मालंकृतचरणाय नमः ॥६४॥

सुधर्मा नामकी सभामें शोभायमान हैं चरण जिनके, ऐसे
श्रीकृष्णका अभिवंदन।

इस अध्यायमें प्रभुका आह्विक दर्शाते हैं। ब्रह्ममुहूर्तसे आरंभ कर सब दिनचर्या इसमें आ जाती है। भगवान् नित्य नियमित रीतिसे वैदिक मर्यादाका परिपालन करते थे। आप धर्मके अनुसार वर्तन करें, तो सब लोक भी उसी मार्गका अनुसरण कर धर्मपरायण बनें। इसीलिए विधिके अनुसार आह्विक कर्म कर दिव्य सुधर्मा सभामें आप पधारते अपने मनोहर, चरणकमलसे सभा स्थानको अत्यंत प्रकाशित करते थे। “ब्राह्मेमुहूर्ते उत्थाय” से आरंभ कर “सुधर्माख्यां सभां सर्वैः” इस श्लोक पर्यन्त कथाको अनुसरता यह नाम है। चरणका अलंकारपना जताया इसीसे वहांकी सब प्रजाजनोंका प्रभु के ऊपर परम भक्तिभाव था तथा प्रभुमें ही सबका निरोध सिद्ध हुआ था। यह इस नाममें सूचन करते हैं ॥६४॥

पूर्वमें जो भक्त अलौकिक प्रकारसे निरोधयुक्त हुए ही थे, परंतु उनको बहिर्दृष्टिसे जरासंधने बंदीखानेमें डालकर उनका निरोध बंधन करा हुआ था। प्रभुने उस निरोध बंधनको दूर कर उनको अपनी तरफ निरोध पूर्ण करना चाहिए। यह निरोध उनकी अपेक्षासे ही हो सके। इसीलिए यह सूचन करता नाम कहते हैं :—

भक्तापेक्षावभास—हेतवे नमः ॥६५॥

भक्तोंकी अपेक्षाको बाहर प्रकाश करनेके कारण रूप श्रीकृष्णको नमन ।

जरासंधके बंद करे हुए भक्तोंकी अपेक्षा—हम मुक्तहों ऐसी इच्छा जब मनमें प्रकट हुई तब प्रभुको निवेदन करनेके लिए उनने दूत भेजा और उनको अपने अंतरकी अपेक्षा प्रगट करी अथवा भक्त—युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ करनेकी अपेक्षा नारद द्वारा प्रभुने प्रकाशमान करी। यह दोनोंकी अपेक्षा नारद द्वारा प्रभुने प्रकाशमान करी। यह दोनोंकी अपेक्षा बाहर प्रकट करनेके कारण रूप प्रभु ही हैं। “राजदूतेब्रुवत्येव देवर्षिः” इस श्लोकसे आरंभ कर “यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः” इस श्लोक पर्यन्तके भावको व्यक्त करनेवाला यह नाम है ॥६५॥

राजाओंकी मुक्ति और युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी सिद्धि इन दोनोंमें भी एक ही कार्य करना अशक्य जैसा भासता है तो अब क्या करना? यह भगवान् उद्धवजीको हास्यपूर्वक पूछने लगे। इस संबंधको दर्शाते नामका निरूपण करते हैं:—

उद्धवादि—बुद्ध्यादि—बुद्ध्यनुसारिणे नमः ॥६६॥

उद्धव आदिकी बुद्धिके अनुसरनेवाले भगवान्को नमस्कार ।

नारदजीके वचन अनुसार नहीं करें तो ब्रह्मपक्षकी हानि होती है तथा जरासंधके वधके लिए जानेमें महादेवके पक्षकी हानि होती है। कारण कि जरासंध महादेवका परम भक्त था और बंधनसे राजाओंको मुक्त करे बिना यज्ञके लिए जाना यह भी अयोग्य ही है। आप सर्वज्ञ हैं तो भी राजलीलाका अनुकरण करते होनेसे मंत्रीकी सलाह लेनी चाहिए। इसीलिए प्रभुने इसे अनुसरके उद्धवजीकी सलाह ली, उनकी बुद्धिके अनुसार करने लगे। “त्वंहि नः परमं चक्षुः” तुम हमारे परम चक्षु हो। यह प्रभुने उद्धवजीको दर्शाकर उनसे पूछा। प्रभुके आधिदैविक परमानंद रूप चक्षु नेत्र अथवा उसका अवतार श्रीउद्धवजी हैं और राजाको राजनीतिकी दृष्टिसे मंत्री भी एक नेत्र रूप ही है। लोकानुसार मंत्री ज्ञानचक्षु हैं। इसीलिए प्रभु उनसे पूछते हैं—उनकी बुद्धि अनुसार वर्ताव रखते हैं। वगैरह आशय इस नाममें हैं ॥६६॥

२२ वें अध्यायका नाम दर्शाते हैं:—

जीव—धर्मावबोधकाय नमः ॥६७॥

जीवधर्मका अवलोकन—ज्ञापन करनेवाले कृष्णको प्रणाम ।

मंत्रणा करनी यह राजलीलामें लौकिक प्रकारसे ही हो सकती है। जैसे जीव परस्पर मंत्रणा कर कार्य सिद्ध करते हैं। अलौकिक प्रकार तो इस प्रकारके मंत्रसे ही होता है। इसमें मंत्रणा उपयोगमें नहीं आती। इसीलिए जैसे साधरण जीवोंको भी उत्पत्ति अनुपपत्ति प्राप्त हो न प्राप्त हो, सिद्ध हो न सिद्ध

हो, वगैरह जान सके उसका अवबोधन करनेके लिए, ज्ञापन करनेके लिए, उद्धवजी द्वारा स्वयं ही युक्तियुक्त वाद कथन करते हैं। “यदुक्तमृषिना” यहांसे आरंभ कर “इत्युद्धववचो राजन्” इस श्लोक पर्यन्तका यह नाम है, ऐसा जानना ॥६७॥

२३ अध्यायका नाम बताते हैं :-

हीन—धर्मावलम्बन—जीवकार्य—कर्त्रे नमः ॥६८॥

हीनधर्मका अवलम्बनकर जीवोंका कार्य करनेवाले भगवान्का वंदन।

ब्राह्मण वेष धारण कर याचना करना यह राजाओंके लिये नीचता दिखने जैसा हीन पद गिना जाता है। फिर भी राजाओं और युधिष्ठिरके कार्य सिद्ध करनेके लिए आपको ऐसा करना पड़ा। क्योंकि यह न करें तो भक्तोंका कार्य सिद्ध हो ही नहीं। प्रभुका यह भक्तके लिए अपूर्व पक्षपात ही है। “भीमसेनोर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरस्त्रयः” यहांसे आरंभ कर “राजन् विद्वन्त्यतिथीनस्मान्” इस श्लोक पर्यन्तका यह नाम है, ऐसा जानना ॥६८॥

२४ अध्यायका नाम कथन करते हैं:-

भक्तज्ञान—हेतवे नमः ॥६९॥

भक्तोंके ज्ञानके हेतुरूप भगवान्का अभिवंदन।

भक्त—राजा प्रभुके स्वरूपका दर्शन कर ज्ञान संपन्न हुए। प्रभुको वारंवार प्रणाम करने लगे। “दंदृशुस्ते घनश्यामम्” यहांसे आरंभ कर “प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः”

प्रणाम करनेवालोंके क्लेशका नाश करनेवाले गोविंद प्रभुको वांरवार नमस्कार हो। इस स्तुति तकके आशयको बतानेवाला यह नाम है। अपने सुंदर स्वरूपको दर्शाकर उनके अतःकरणमें भगवत्प्रेम तथा परमात्म ज्ञानका स्थापन करनेवाले प्रभु ही हैं। इसीलिए इस ज्ञानके हेतु—कारण रूप हैं ॥६६॥

ऐसा निःसाधन अनुग्रह करनेका क्या कारण ?

पुष्टि—निमित्त ज्ञापकाय नमः ॥७०॥

पुष्टि—अनुग्रहके निमित्तका ज्ञान करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार ।

पुष्टि—अनुग्रह अर्थात् पोषण “पोषणं तदनुग्रह” पोषण अर्थात् यह भगवान्का अनुग्रह ऐसे अनुग्रह करनेमें जो निमित्त हैं, उस निमित्तको ज्ञापन करनेवाला—जताने वाले । यह राजाएं राज्यलक्ष्मीमें लीन हुए थे। इसीसे वो राज्यभ्रष्ट हुए। इसीसे इनको राज्य संबंधी मोह दूर होकर भगवत्प्रेम सिद्ध हुआ। इसीलिए प्रभुका अनुग्रह होनेमें राज्यभ्रंशपना निमित्त हुआ। प्रभुनें उपदेश कर इस निमित्तका ज्ञापन किया है। “संस्तूयमानो भगवान्” यहांसे आरंभ कर “हैययो नहुषे वेनो रावणो नरकोऽपरे श्रीमदाद्भ्रंशिताः” इस श्लोक तकके आशयको दर्शानेवाला यह नाम है ॥७०॥

२५ अध्याय का निरूपण करते हैं:—

राजसूयादि—प्रवर्तकाय नमः ॥७१॥

राजसूय आदिका प्रवर्तन करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

जिसके आरंभमें राजसूय यज्ञ है, अर्थात् उसके निमित्तसे धर्मकी प्रवृत्ति करनेवाले, जरासंधका वध, राजाओंकी मुक्ति सुनकर धर्मराज बहुत ही प्रसन्न हुए। प्रभुके ऊपर उनको परम भक्ति प्रकट हुई। उसके बाद यज्ञ भी आधिदैविक सिद्ध हुआ। कारण कि जहां “यज्ञौ वै विष्णुः” इस श्रुतिके अनुसार आप यज्ञरूप स्वयं विष्णु साक्षात् आधिदैविक स्वरूपसे विराजमान थे, उनका प्रथम पूजन—सन्मान कर युधिष्ठिर राजा प्रभुमें बहुत ही निष्ठा रखने लगे। “एवं युधिष्ठिरो राजा” यहांसे आरंभ कर “समर्हयत् हृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः” इस श्लोक तकका यह नाम है। ॥७१॥

भगवान्का पूजन नहीं सहन करनेवाले शिशुपालने अपराध किया। इस संबधका नाम प्रकट करते हैं:—

शिशुपालादि—भक्त—वैकुण्ठ—प्राप्ति—हेतवे नमः

॥७२॥

शिशुपाल आदि भक्तको वैकुण्ठ प्राप्तिके कारण रूप कृष्णको नमन।

शिशुपाल जिसमें आदि है ऐसे भक्त हिरण्यकशिपु तथा रावण वगैरहको वैकुण्ठ प्राप्त करानेवाले प्रभु हैं। सनकादिकके शापसे हिरण्यकशिपु रावण और तीसरे ही जन्ममें शिशुपाल हुए जयको इस प्रकार भगवान्ने वैकुण्ठमें भेज दिया। युद्धिष्ठिरकी सभामें श्रीकृष्णका अपमान करनेसे प्रभुने उसका चक्रसे नाश कर मुक्त किया “चैद्यदेहोत्थितं तेजो वासुदेवमुपाविशत्” चेदीदेशके राजा शिशुपालके देहमें से

उत्पन्न हुआ वो ही श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। इस श्लोकके भावको दर्शानेवाला यह नाम हैं। ॥ ७२ ॥

२६ अध्यायका नाम कहते हैं—

दुर्योधनादि—दुष्टमान—भंग—हेतवे नमः ॥७३॥

दुर्योधन आदि दुष्टोंके मानभंग होनेके कारण रूप भगवान्को नमस्कार।

भगवान्को भूमिका भार उतारना है इसीलिएही राजसूय यज्ञका आरंभ है। क्योंकि राजसूय यज्ञ होय तो दुष्ट दुर्योधनको ईर्ष्या हुए बिना रहे नहीं और ऐसा होय तो उसका मानभंग करना पृथ्वीका भार उतरवानेके लिये बीजरूप बने। वह स्वयं ही अपने मानभंगके कारण रूप हुआ है। ऐसा दुरात्मापना ही उसके मानभंगका कारण है। क्योंकि राजसूय यज्ञमें आये पुरुषको अभिमान करना योग्य नहीं, उसने अभिमान किया। अरे! वह स्वयं ही अभिमानका मूर्तिमान रूपरूप है। तो भी उसका अभिमान भूमिके भारका हरण करनेके प्रयोजन रूप होनेसे भगवान् ही इसके प्रयोजक हैं। भगवान्ने उसके मानभंगके अवसरमें केवल मौन रखा है। इसीसे यह सिद्ध होता है कि— यह आपकी ही अंतरकी अभिलाषा है। “एकदान्तः पुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम्” यहांसे आरंभ कर “बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भरं समुज्जिहीर्षुवै भ्रमति स्वया दृशे” इस श्लोक तकका यह नाम समझना ॥७३॥

भगवान्का मौन रखनेका दूसरा भी कारण था इसका ज्ञापन करने वाले नामका निर्देश करते हैं:-

युधिष्ठिरादि-भक्त-गर्व-नाशकाय नमः ॥७४॥

युधिष्ठिर आदि भक्तोंके गर्वका नाश करनेवाले विभुका वंदन ।

यदि भगवान् दुर्योधनका सम्मान करे तो भूभारका हरण नहीं हो । उसी तरह भक्तको दुःखका अनुभव ही नहीं हो । जो उसको मार डालें तो भी युधिष्ठिरको निष्कण्टक ऐश्वर्य वगैरहकी प्राप्ति होकर गर्व हो । गर्व होने पर अनिष्ट होनेका प्रसंग उपस्थित होता है । इस ऐश्वर्यका अपहरण कराकर उनके गर्वका भी भगवान्ने नाश किया । इसीसे भगवान्ने उस समय मौन रखा यह उसका दूसरा कारण है ॥७४॥

२७ अध्यायका नाम बताते हैं:-

प्रद्युम्नादि-यादव-गर्व-प्रहारकाय नमः ॥७५॥

प्रद्युम्न आदि यादवोंके गर्वका नाश करनेवाले भगवान्का अभिवंदन ।

शाल्व विमानमें बैठकर द्वारकानगरमें उपद्रव करने लगा । उस समय प्रद्युम्न आदि यादव योद्धा उनके साथ महान युद्ध करने लगे । उसमें प्रद्युम्न मूर्च्छागत हो गए । इसीसे सारथी उनको रणभूमिमेंसे बाहर ले गया । इस प्रसंगमें “त्वपोवाह रणात् सूतो धर्मविदारुकात्मजः” इस श्लोकसे आरंभ कर “व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः” इस श्लोक

पर्यन्तके आशयको बताता यह नाम है। प्रद्युम्न अपने बलके अभिमानमें कवच आदि धारण करे बिना रणमें युद्ध करने गए थे। परंतु गदाका प्रहार होनेसे हृदयमें आघात हुआ, उनका गर्व दूर हुआ। इसीसे कवच धारण कर—नारायण कवचादि देवी कवच भी अंगमें परिधान कर सावधानतासे पुनः युद्धभूमिमें प्रवेश किया। इस तरहसे प्रभुने उनके अभिमानका गर्वका विनाश किया है। इसका सूचन इस नाममें किया है। ॥७५॥

२८ अध्यायके नामका निरूपण करते हैं :-

तपस्यादि—दृप्त—शाल्वादि—घातकायनमः ॥७६॥

तपश्चर्या करके गर्विष्ठ बने हुए शाल्व वगैरहका घात करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

भगवान्ने तपश्चर्या द्वारा प्रसन्न करे हुए शंकरके वरदानसे महाभिमानी बने हुए शाल्वको मारा। उसके विमानका भी नाश किया। इसका सूचक यह नाम है और इस नामसे प्रद्युम्न आदिका निरोध भी सिद्ध करनेमें आया है ॥७६॥

पुण्यादि—हीन—धर्म—ज्ञापन—हेतवे नमः ॥७७॥

पुण्यादिसे हीनधर्मका ज्ञापन करवानेके कारणरूप श्रीकृष्णको नमन।

इस प्रकरणमें शाल्वको मारनेके पहले युद्धमें मायावी वसुदेवका मस्तकच्छेद वगैरह देखकर भगवान्को भी मोह हुआ, यह दर्शाया है। इसीसे कोईको भी प्रभुमें प्राकृत बुद्धि हो तो महान अनिष्ट होय। इसीलिए यह नाम कथन करनेमें आया।

पुण्य—भाग्य आदिसे जो धर्म अपने पिता वसुदेव ऊपर शाल्वने किया उसको वैसे प्रकारसे बतानेके हेतु रूप आप ही हुए हैं। मायासे यह रचना करनेमें आई है यह आपने जाना और देखा। मायारूप भगवान् असुरोंकी उपासना करने योग्य हैं। इसीलिए भगवान्ने असुरोंको व्यामोह करवानेके लिए वैसे प्रकारसे दिखावा किया है। “ततो मुहूर्त आगत्य पुरुष” यहांसे आरंभ कर “ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपस्थित” इस श्लोक तकका यह नाम है, ऐसा जानना ।।७७।।

सिद्धान्तका सूचन करनेवाला आगेका नाम बताते हैं:—

मुख्य—सिद्धान्त—प्रवर्तकाय नमः ।।७८।।

मुख्य सिद्धान्तका प्रवर्तन करनेवाले परमेश्वरको नमस्कार।

सब भक्तोंका निरोध करना यह मुख्य सिद्धान्त है। ऊपरके दोनों नामोंमें “शाल्वादिघातकाय नमः” यह नाम पहले कहना चाहिए। परंतु इस नाममें मुख्य निरोध शाल्वका था इसीसे तथा दुःख निवारण करनेवाला होनेसे प्रथम उस नामका निर्देश कर, यह नाम कहा है। मोह वगैरह प्रभुमें देखनेमें आनेसे भक्तोंका विपरीत भाव हो, इसीलिए उसका निवारण करनेके हेतुसे यह निरोध साधना करनेके लिए दोनों नाम कथन किए। “एवं वदन्ति राजर्षे” यहांसे आरंभ कर “कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतः” यहां तकके आशयका सूचन करता यह नाम है ।।७८।।

२६ अध्यायका नाम दर्शाते हैं:—

दन्तवक्त्र—विदूरथादि—मुक्ति—हेतवे नमः ॥७६॥

दन्तवक्त्र विदूरथ आदिकी मुक्तिके कारणरूप विभुका वंदन ।

यह नाम “शिशुपालस्य शाल्वस्य पौंड्रस्यापि दुर्मतेः” यहांसे आरम्भ कर “शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम्” इस श्लोक पर्यन्तके कथा भागको बतानेवाला जानना ॥७६॥

जरासंधके उद्यमसे आरम्भ कर विदूरथकेवध पर्यन्त क्षात्र धर्मके नामका उपसंहार करनेमें आया है। इसका सूचन करते हैं :-

क्षत्रिय—धर्म—नाट्योपसंहारकाय नमः ॥८०॥

क्षत्रिय धर्म संबंधी नाट्यका उपसंहार करनेवाले श्रीहरिका अभिवंदन ।

जरासंधके उद्योगसे आरंभ कर आपने क्षत्रिय धर्म संबंधी नाटकका आरंभ करा है। यह विदूरथके वध तक ही है। उसके बाद आपने कोई भी युद्ध नहीं किया और मात्र सदुपदेश ही दिया है, यह भागवतमें देखनेमें आता हैं। यह नाम “त्वेवं सौभं शाल्वं च दन्तवक्त्रं सहानुजं हत्वा”— सौभ शाल्वराजा दन्तवक्त्र तथा उसका छोटा भाई विदूरथ वगैरहको मारना” इस कथाभागके श्लोकमें आरम्भ कर “विवेशालं कृतां पुरीम्” अलंकृत नगरीमें प्रवेश किया। इस श्लोक पर्यन्तके कथाभागको अनुसरता है ॥८०॥

अब बादमें युद्ध नहीं किया होने से उसका नाम दर्शाते हैं
:-

न्यस्त—शस्त्राय नमः ॥८१॥

शस्त्रका परित्याग करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

पुराणांतरमें इसके अनुसार प्रसिद्ध रीतिसे दर्शाया है कि “विदूरथांतमामथ्य पूतनादिदनोः कुलम्” पूतनासे आरम्भ कर विदूरथ पर्यन्त दैत्यके कुलका मंथन कर भगवान् श्रीकृष्ण विरामको पाए। श्रीभागवतमें भी विदूरथ तक ही क्षात्रधर्मका प्रकार देखनेमें आता है। इसीलिए यह नाम वहां और स्नेही भक्तजनोंके अंतरायके बिना निरोध सिद्ध होय इस हेतुसे भी निर्देश किया है ॥८१॥

आगे अपने आवेशसे अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं परंतु दूसरे द्वारा आविर्भाव पाकर चरित्र किया इसका नाम कहते हैं:-

बलदेव—तीर्थयात्रा—प्रवृत्तकाय नमः ॥८२॥

बलदेवजीको तीर्थयात्रामें प्रवृत्त करनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

यह सात्विक प्रकरण है। इसमें केवल धर्मकी प्रवृत्ति ही योग्य है। इसीलिए वह ही मुख्य कर्तव्य है। यह धर्म यज्ञ—यागादि कर्मद्वारा तथा तीर्थादिके सेवनद्वारा प्रवृत्त होता है। यज्ञ रूप धर्म युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ कराकर सिद्ध किया, वहां आपके पिता वासुदेवजी विद्यमान थे इसीलिए

उनका त्याग कर स्वयंसे यज्ञादि किया हो तो अयोग्य कहा जाए। जिससे उनके द्वारा अपनी सहायतासे यज्ञादि करके वह सिद्ध किया है। तीर्थाटन रूप धर्म बलदेव द्वारा ही आपने सेवन किया है। बलदेवजी प्रभुकी क्रियाशक्ति रूप हैं। इसीसे उनका कार्य यह आपका ही कार्य है। बलदेवजी कौरवोंके पक्षपाती थे। उनको अपने शिष्य दुर्योधनके ऊपर बहुत ही प्रीति थी। इसीसे भूमिके भारका हरणकरनेके कार्यमें बलदेवजी अन्तराय रूप हों, यह इच्छित नहीं था। इसीसे चाहे कोई भी उपायसे युद्ध शांत करनेका उनका उपदेश था। इसीलिए प्रभुने उनके अंतःकरणमें तीर्थाटन करनेकी बुद्धिमें प्रेरणा करी, इसीसे वह तीर्थयात्रा करने गये। 'श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः' युद्धका उद्योग परस्पर हो रहा है, यह जानकर वह तीर्थयात्रा करने निकले यह मूलमें स्पष्ट उल्लेख किया हुआ है ॥८२॥

तीर्थसेवन करने गए और वहांसे वापिस आए तो भी भूमिभारका हरण करनेमें विघ्न उपस्थित हो, इसीलिए सूत पुराणीके वधके निमित्तसे पुनः तीर्थयात्रा उनको करनी पड़ी यह दर्शाते हैं:-

सूत-घातकाय नमः ॥८३॥

सूतपुराणीका घात करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार।

बलदेव-द्वारा सूतका नाश करनेवाले भी आप ही हैं। कारण कि उनकी आयुष्यकी अवधिके निमित्तरूप वे थे। इसीलिए उनने उनकी बुद्धि प्रेर के घात कराया और उस निमित्तसे पुनः तीर्थयात्राका प्रसंग आए तो पृथ्वीके भारका

हरण करनेमें इतने दुष्ट दुर्योधनादिका संहार करनेमें भी अंतराय उपस्थित न हो। इसीसे बलदेव द्वारा सूतका घात करनेवाले आप हुए ॥८३॥

तीर्थयात्रा होने तक कौरवोंके युद्धका आरंभ हो गया। इसका सूचन करता नाम कहते हैं :-

पार्थ—सारथ्ये नमः ॥८४॥

अर्जुनके सारथि ऐसे भगवान्का अभिवंदन।

पृथापुत्र अर्जुन और श्रीकृष्ण ये दोनों नर और नारायण भूमिके भारका हरण करनेके लिए प्रकट हुए हैं। इसीसे भक्तका रक्षण ओर भक्तका पक्षपात करनेवाला यह नाम है। भक्तोंकी रक्षा नारायण स्वरूपसे है और संहार नर स्वरूपसे हुआ है। यह दोनों कार्य सिद्ध करनेके लिए दोनोंकी एकत्र स्थिति हुई है। यह नाम २३में अध्याय का है ॥८४॥

अर्जुन प्रभुके भक्त हैं। मैं क्षात्र धर्मसे, बलसे सबका संहार करूंगा। यह अभिमान हो तो उसके भक्तपनेमें खामी आयगी और अनिष्ट होगा। इसीलिए युद्धके आरंभमें उसके मनमें खेद प्रकट करके साक्षात् अपने मुखारविंदमेंसे भक्ति रसात्मक गीतामृत प्रकट किया। इससे अर्जुनको क्षात्रधर्मका अभिमान होनेका प्रसंग ही नहीं होगा। मनसे दुर्बलता भी दूर होगी और इसके द्वारा गीतामृत बरसाकर सारे जगतका भी आगे जाकर उद्धार हो। इस आशयका नाम बताते हैं:-

अव्यक्त—गीतामृत—महोदधि—प्रवर्तकायनमः ॥८५॥

व्यक्त न कर सके ऐसे गीतामृतके महासागरका प्रवर्तन करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

जिसका पार पा नहीं सके ऐसा महान गीतामृत है । उसको श्रवण करनेके साथ ही अर्जुनका मोह उतर गया, भक्तिरसमें लीन हो गये । मैं आपका हूँ, आपकी शरण आया हूँ, आपकी आज्ञाके अनुसार ही वर्तन करूंगा यह कहकर भगवान्की आज्ञासे क्षात्रधर्मके अभिमानसे नहीं किंतु प्रभुके वचनोंको मान्य करना ही चाहिए । इस भक्तिरसका आवेश पाकर ही युद्ध किया । इसीलिए प्रभुने भी युद्धमें अनेक प्रसंगोंमें उसका रक्षण किया । महोदधि पदसे यह सूचन करते हैं कि जैसे महासागर अगाध है — अव्यक्त है । उसी तरह गीतामृत भक्तिरसका सागर भी अगाध और अव्यक्त है, उसमें जैसे रत्न हैं वैसे ही यहां भी विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव आदि पुष्टिमार्गीय भक्तिरसपोषक अनेक भाव भरे हुए हैं ॥८५॥

इस प्रकार उपदेश देकर युद्ध कराया इसका द्योतन करनेवाले नामका निर्देश करते हैं:—

कौरव—बलान्त—कर्त्रे नमः ॥८६॥

कौरवोंके बलका अन्त करनेवाले विभुका वंदन ।

कौरवोंके बलका अंत अर्जुन द्वारा आपही ने किया है । बलदेवजीकी तीर्थयात्रा भी तभी तक ही है । इसीलिए ही मूलमें इस प्रकार कहा है कि “सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हतं भुवि” पृथ्वीमें सब क्षत्रियोंका नाश रूप भार दूर हो गया, यह मानने

लगे। मात्र भीम और दुर्योधनका ही युद्ध बाकी रहा था। बलदेवजीने कुरुक्षेत्रमें पधारकर उन दोनोंको बहुत ही समझाया परन्तु उनने उनके वचनको मान्य नहीं किया। इसीलिए भगवद इच्छा समझ उसके बाद वापिस द्वारकामें पधारे। बलदेवजी दुर्योधनका पक्ष लेते, परन्तु यह भगवान्का ही कार्य है। यह जानकर वह उनके बीचमें नहीं आए। वह दुर्योधन दुष्ट था, यह समझ कर भी उसका पक्ष नहीं लिया और भगवद इच्छाके ही आधीन हुए ॥८६॥

उसका सूचक नाम कहते हैं —

इतर—पक्षपात—नाशकाय नमः ॥८७॥

दूसरोंके पक्षका नाश करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार।

इतर—दुर्योधनके पक्षका नाश करनेवाले— नहीं ग्रहण करनेवाले बलदेव स्वरूप भगवान् ही हैं।

यहां तकका चरित्र प्रयोजन होनेके लिए आवेश द्वारा भगवान्ने ही किया है। और इसीलिए “पार्थ सारथ्ये नमः” इत्यादि नामोंमें उसका समावेश किया है। यह जानना ॥८७॥

३१ अध्यायका नाम बताते हैं:—

सुदामारंकभार्यार्थ भूम्यानीतेन्द्र वैभवाय नमः

॥८८॥

सुदामाकी रंक भार्याके लिए भूमिमें इन्द्रके वैभवको लानेवाले भगवान्को नमन।

३२ अध्यायका नाम कहते हैं:—

हेतुस्थापकाय नमः ॥८६॥

अपने हेतुका स्थापन करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

अयाचक व्रत धारण करनेवाले सुदामा अपनी रंक भार्याकी प्रेरणासे और भगवद् दर्शन होनेकी आशासे द्वारकामें आये । प्रभुने उनका संपूर्ण सत्कार किया, पर कुछ दिया नहीं । मार्गमें जाते—जाते प्रभुका माहात्म्य स्मरण कर आनन्द पाने लगे और मैं निर्धन हूँ इतना धनवान हो जाऊँ तो प्रमादसे प्रभुका स्मरण नहीं कर पाऊँगा, यह जानकार मुझे धन नहीं दिया, ऐसी ही कल्पना करने लगे । जब वापिस घर आये तब अपूर्व लक्ष्मीको निरखके अत्यंत विस्मित हुये । इसका कारण प्रभु हैं, यह माना । सुदामाके अंतःकरणमें इस निर्मल हेतुका विचार आया इसके कारणरूप भी प्रभु ही हैं । “विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र” यहांसे आरंभ कर “महाविभूतेरवलोकितोन्यो नैवोपपद्येत यदुत्तमस्य” इस श्लोक पर्यन्तका यह नाम है ॥८६॥

३३ अध्यायके नामोंका निरूपण करते हैं:—

देश—कालादि—धर्म—हेत्वनुसारिणे नमः ॥८७॥

देशकालादिधर्मके कारणका अनुसरण करनेवाले विभुका वंदन ।

इस स्थान पर सात्विक भक्तोंकी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण किया यह निरूपण करते हैं । उसमें देश और काल दोनों

इसके अंग हैं। इसीलिए भगवान् ने उस देश और कालका अनुसरण किया। देश कुरुक्षेत्र और काल पूर्ण सूर्यग्रहणका समय, जो प्रलय होनेका सूचन करने वाला है। इस समय दान धर्मादि कार्य करना हो, जिससे सर्व दोष मात्रकी निवृत्ति होती है, यह सर्वका हेतु जिसमें रहा हुआ है, उसको अनुसरनेवाले प्रभु हैं। इसीसे यह सभी जाते हैं, तो अपने को भी जाना चाहिए, यात्रा दान धर्मादि कर्म करना चाहिए। ऐसा मानकर उनका अनुसरण किया। यह नाम “अथैकदा द्वारवत्यां” इस श्लोकसे आरंभ कर ‘ययुर्भारत तत्क्षेत्रम्’ इस श्लोक तकका समझना ॥६०॥

इस तीर्थयात्राके समयमें सबको परम आनंद कारक उत्सव होता है। इसका सूचन करनेवाला नाम कहते हैं:—

यात्रोत्सव—प्रवर्तकाय नमः ॥६१॥

यात्राके उत्सवका प्रवर्तन करनेवाले भगवान् का अभिवंदन।

यात्रामें अलग—अलग देशोंमेंसे आये हुए स्नेही जनोंका समागम होता है। शीतल वृक्षोंकी छायामें बैठकर अनेक आनंदके प्रसंग प्रकट होते हैं, वगैरह यात्राके उत्सव कथा—वार्ता उपदेश वगैरहसे प्रवर्तन करनेवाले प्रभु हैं। यह नाम “ते रथैर्देवधिष्याभैर्हयैश्च व्यरोचयन्त महोतेजाः” यहांसे आरंभ कर “पविविशुः कामं स्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु” यहां तकका जानना ॥६१॥

यात्रामें दूसरे भी अनेक जन आये हुये थे। उनको अपना दर्शन देकर आनंद करने वाले हुए, यह नाम कहते हैं:-

अखिल-नयनामृताब्धि-पूरकाय नमः ॥६२॥

सबके नेत्रोंमें अमृतसागरको पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णको नमस्कार।

सर्व प्राणीमात्र प्रभुके त्रिभुवन सुंदर स्वरूपको निरख-निरखके अपने नेत्रोंमें आनंदके अमृत सागरके पूरको बरसाने लगे-प्रसन्न हो गये। “तत्रागतास्ते ददृशुः” यहांसे आरंभ कर “एतावदृष्टपितरौ” इस श्लोक पर्यन्तके भावको बताने वाला यह नाम है ॥६२॥

गोपिकादि-साक्षात्कार-हेतवे नमः ॥६३॥

गोपिकाओंको साक्षात्कारके कारणरूप श्रीकृष्णको नमन।

श्रीमद्गोपीजनोंको प्रभुके साक्षात् स्वरूपका दर्शन प्राप्त कर बहुत ही आनंद आया। वे बहुत समयकी विरहाग्निको शांत करने लगीं। पहले उद्धवजी द्वारा उपदेशसे अपने प्रियतम गोकुलनायक श्रीकृष्णके साथ आधिदैविक अभेदका ज्ञान होनेसे उत्कृष्ट विरह तापकी शांतिका अनुभव करने लगे। इस संबंधमें मूलमें कहा है कि “ज्ञात्वात्मानम् अधोक्षजम्” अपनी आत्माको अधोक्षज ही श्रीकृष्णरूप समझके शांत हुए। यहां भी आध्यात्मिक शिक्षण पाकर अभेद ज्ञान होनेसे अपनेमें ही ब्रह्मात्मभाव सिद्ध होकर परम शांतिका अनुभव हुआ।

‘गोप्याश्चकृष्णम् उपलभ्य’ यहांसे आरंभ कर “अध्यात्मशिक्षया गोप्या” इस श्लोक तकके आशयको दर्शाता यह नाम है ॥६३॥

३४ अध्यायका नाम कहते हैं:—

रुक्मिण्यादि—भक्ति—स्थापकाय नमः ॥६४॥

रुक्मिणी आदि पटरानियोंमें भक्तिका स्थापन करनेवाले प्रभुको प्रणाम ।

रुक्मिणी जिसमें आदि—मुख्य हैं ऐसी आठ प्रमुख पटरानियोंमें प्रभुने इस समय भक्तिका स्थापन किया । उनके अंतःकरणमें भगवान्‌के गुणानुवाद द्रौपदीके आगे गानेमें—वर्णन करनेमें हेतुरूप अपनी भक्तिका स्थापन ही है । द्रौपदीने प्रश्न किया कि—“प्रभु श्रीकृष्णने तुम्हें किस रीतिसे अंगीकार किया है, वह कहो” इसीलिए उन सब पटरानियोंकी भगवान्‌के चरणाविंदमें अत्यंत स्पृहा उत्पन्न हुई । भगवान्‌ने उनके श्रीहस्तको ग्रहणकर भक्ति उनमें स्थापन करी । जो प्रभुने उनका स्वीकार नहीं किया हो तो यह भक्ति उनमें नहीं होती । यह नाम द्रौपदीके प्रश्नके प्रत्युत्तर तकका है, ऐसा जानना ॥६४॥

३५ अध्यायका नाम कहते हैं:—

सन्मार्ग—स्थापकाय नमः ॥६५॥

सन्मार्गका स्थापन करनेवाले श्रीवासुदेवका वंदन ।

भगवान्‌के दर्शनकी अभिलाषासे और समागम प्राप्त करनेकी उत्कण्ठासे व्यास, नारद आदि मुनिवर्य कुरुक्षेत्रमें पधारे। उनका श्रीकृष्ण वगैरहने अत्यंत सम्मान किया—पूजन किया। और उनके माहात्म्यको दर्शाकर वंदन किया। यह अपने आचरणसे सन्मार्गका स्थापन कर दर्शाया है। “पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुः” इस श्लोकके आशयका सूचन करनेवाला यह नाम समझना ॥६५॥

वसिष्ठादि—सेवित—चरणाय नमः ॥६६॥

वसिष्ठ आदिसे जिनके चरणोंका सेवन होता है ऐसे भगवान्‌का अभिवंदन।

वसिष्ठ वगैरह ऋषिगण भी वहां प्रभुके दर्शनके लिए आए थे। वह भी प्रभुकी स्तुति करने लगे। उनके चरणार्विंदमें प्रीतिको प्राप्त करा “यन्मायया तत्त्वविदुतमा वयं विमोहितः” जिन परमात्माकी मायासे तत्त्वज्ञाओंमें उत्तम ऐसे हम भी मोह पा गये थे, उन प्रभुके चरणार्विंदमें प्रणाम। ऐसे प्रभुके चरणकमलका सेवन करने लगे। इस आशयका यह नाम है ॥६६॥

वसुदेव—यज्ञमहोत्सव—कर्त्रे नमः ॥६७॥

वसुदेवके यज्ञमहोत्सवको करनेवाले वासुदेवका वंदन।

कुरुक्षेत्रमें पधारे हुए मुनियोंका सम्मान कर उनको नमस्कार कर वसुदेवने महान यज्ञका आरंभ किया। भगवान्‌ने भी उस यज्ञ महोत्सवमें अपूर्व सहायता करी। श्रीवसुदेवजी

द्वारा मुनियोंसे पूछे हुए प्रश्न और उनको दर्शाया हुआ निष्काम कर्ममार्ग, और इसीसे हुई यज्ञ करनेकी इच्छा, यह सब प्रभुकी ही प्रेरणा है। इसीलिए ही वह स्वयं ही यज्ञ महोत्सव करनेवाले हैं। “नमो वः सर्व देवेभ्यः” यहांसे आरंभ कर “यदासीत्तीर्थ यात्रायां” इस श्लोक तकका यह नाम है ॥६७॥

सात्विक प्रकरणकी समाप्ति हुई, अब गुणप्रकरणका आरंभ करते हैं :-

३६ अध्यायका नाम निरूपण करते हैं:-

वसुदेव-ज्ञान-बोधकाय नमः ॥६८॥

वसुदेवको ज्ञानका बोध करनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

प्रथम प्रकरणमें सबका निरोध दर्शाया है। इस कारण गुण सहित भगवान् अपने स्वरूपसे उनमें उन-उन भगवदीयोंके अन्तःकरणमें स्थिर विराजमान होकर रहे हुए हैं, यह निरूपण किया। इस प्रकरणमें वसुदेवादिकोंका निरोध किया है। इस कारण अपना ऐश्वर्यादि षड्गुण संपन्न स्वरूप उनमें-वसुदेवादिकोंमें स्थापन करना चाहिए। पहले यज्ञ करनेसे चित्तशुद्धि होनेसे उसी तरह नारदजीके वाक्योंसे भगवान्के माहात्म्यका ज्ञान होनेसे प्रभुमें ब्रह्मपनेका भान हुआ। पुत्रत्वबुद्धि दूर होकर उनमें तत्त्वरूप ये यह पूर्णब्रह्म हैं यह ज्ञान हुआ। इस प्रकार उपदेश द्वारा ज्ञान होनेसे वो खंडज्ञान न हो, इसीलिए कृष्णवत् यह सब है। यह अखंड ज्ञान प्राप्त

करनेके लिए आपने ज्ञानका बोध किया है। “अथैकात्मजो प्राप्तौ” इस श्लोकसे आरंभ कर “खं वायुज्योति” इस श्लोक पर्यन्त तकका यह नाम है ॥६८॥

इस रीतिसे वसुदेवजीको अखंडाद्वैत ज्ञानका उपदेश कर देवकी माताके मनके तापको भी दूर करना चाहिए। इसीलिए इसका सूचन करते हैं :-

देवकी-मनःपीडापनोदकाय नमः ॥६९॥

देवकीजीके मनकी पीड़ाको दूर करनेवाले देवकीनंदनको नमस्कार।

भगवान्को यहां पर सबका उद्धार करना चाहिए, इसीलिए अपने प्रकट होनेसे पहले अपने भाईयोंको अपने निमित्तसे ही मरवानेमें आया है। तो उनका भी उद्धार करना ही चाहिए। इसीलिए देवकीजीको उन बालकोंको देखनेकी उत्कंठा उत्पन्न करी। जैसे गुरुके पुत्रको लाकर दिया था, उसी तरह मेरे पुत्रोंको भी यहां लाकर मुझे दर्शाओ। यह माता देवकीजी अपने मनकी पीड़ा प्रभुको निवेदन करने लगी। अब तक पुत्रको निरखनेकी इच्छा उनके मनमें ही रही हुई थी, पुत्रवियोगका शोक हुआ करता था। परंतु प्रभुने उनको दर्शाया और उनके अंगीकार करनेके साथ ही वह पीड़ा-वह शोक दूर हो गया। इसीसे यह नाम कहनेमें आया। “कृष्णरामौ समाश्राव्य” यहांसे आरंभ कर ‘एवं संचेदितौ मात्रा’ इस श्लोक तकके आशयको दर्शानेवाला यह नाम है ॥६९॥

उसके बाद सुतलमें प्रवेश किया। इसका सूचक नाम बताते हैं:-

देवादि-भक्तशापादि-दोष-नाशकाय नमः ॥१००॥

देवोंमें आदि भक्त-ब्रह्माके शाप आदिका नाश करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

यह देवकीके छः पुत्र मरीचिके पुत्र थे। सरस्वतीमें कामकी प्रवृत्ति करनेवाले ब्रह्मदेवको देख उनके स्वरूपके अज्ञानसे वह उनका हास्य करने लगे। उस दोषसे वह भी आसुरी योनिमें जन्में और हिरण्यकशिपुसे उत्पन्न हुए। उसके बाद वह देवकीजीके उदरमें प्रविष्ट हुए और कंसने उनका नाश किया। जिससे देवकीको उनको देखनेकी उत्कंठा उत्पन्न हुई। सर्वदेवोंमें आदिरूप ब्रह्मा, वह प्रभुके भक्त हैं। क्योंकि भगवान् ने ही उनके अंतःकरणमें कामरूपसे प्रेरणा करी थी। इसीसे सरस्वतीका सेवन करनेमें प्रवृत्त हुए, उनमें कपट नहीं था। विषय वासनासे वह प्रवृत्त नहीं हुए थे। इसीलिए समझे बिना ये मरीचि-पुत्र उन पर हंसने लगे। इसीसे उनको असुर योनिमें जन्म पानेका शाप हुआ। शाके साथ आदि पद भी कहा हुआ है। इसीलिए दूसरे भी क्लेश समझ लेने। उन क्लेशोंका भी प्रभुने विनाश किया। “तस्मिन् प्रविष्टावुभयपलभ्य” यहांसे प्रारंभ कर “षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति” इस श्लोक पर्यन्त तकके आशयको बताने वाला यह नाम है। उद्धार अर्थात् नीचेके स्थानसे ऊपर जाना उसमें भी द्वारका तो वैकुण्ठपुरी ही है वहां उनको लाए यह उनका परम उद्धार ही किया है ॥१००॥

देवकी—मृतापत्य—दात्रे नमः ॥१०१॥

श्रीदेवकीजीके मरण पाये हुए बालकोंका दान करनेवाले देवकीनंदनका वंदन ।

कंस द्वारा मारे हुए बालकोंको देवकीजीको दर्शाया । उनका मन प्रसन्न किया और ऐसा करके मरीचि पुत्रोंका उद्धार किया । यह नाम “इत्युक्त्वा तान्समादाय” यहांसे आरंभ कर “मातुः पुत्रानयच्छाताम्” । यहां तकके भावको दर्शाने वाला है ॥१०१॥

पुत्रके दर्शन द्वारा उनमें स्नेहसे उत्पन्न हुआ मातृधर्म प्रकट हुआ । ऐसे नाम का सूचन करते हैं—

देवकी—स्तनंधयाय नमः ॥१०२॥

श्रीदेवकीजीके स्तनोंमें दूधका स्राव करानेवाले भगवान्का अभिवंदन ।

उन बालकोंको देखकर देवकीजीके स्तनोंमें दूधकी धारा झरने लगी । मातृप्रेम प्रकट हो गया । उन ६ बालकोंको स्तनपान कराया । “तान् दृष्ट्वा बालकान् देवी” यहांसे आरंभ कर ‘अपाययत् स्तनं प्रीता’” यहां तकके आशयको व्यक्त करनेवाला यह नाम है ॥१०२॥

उनको केवल स्तनपान हुआ इतना ही नहीं परंतु उनके स्पर्श मात्रसे ही अपूर्ण सुख—अनिवर्चनीय आनंद उत्पन्न हुआ । इस भावका निरूपण करते हैं :—

भक्ताचिन्त्य—सुख—दात्रे नमः ॥१०३॥

भक्तको अचिन्त्य सुखका दान करनेवाले श्रीकृष्णको नमन ।

अपनी परम भक्ता माताको अचिन्त्य जिसका विचार भी नहीं कर सकते ऐसा अपूर्व सुख दिया। पुत्रके स्पर्शसे प्रेममें प्लुत हो गई, सराबोर हो गई। यह अपूर्व अलौकिक सुख प्रभु कृपा बिना कैसे अनुभव हो सकता है? अथवा भगवान्‌के माहात्म्यका ज्ञान होनेसे उनको अखंड आनंदघन स्वरूपका अनुभव होनेसे अचिन्त्य, अनिवर्चनीय सुख माताको हुआ। ऐसे सुखका दान करनेवाले प्रभु हैं। “सुतस्पर्शपरित्पुता” यहां से आरंभ करके “दृष्ट्वा देवकी मृतागमन निर्गमम् ” यहां तकके श्लोकमें पुत्रके स्पर्शका अपूर्ण आनंद प्राप्त करती माता देवकी मरे हुए बालकोंका आना और बादमें चले जाना वगैरह देखकर यह श्रीकृष्णकी रची हुई माया है। यह मानकर बहुत ही विस्मित हो गई। इस कथा भागके तात्पर्यको दर्शाता यह नाम है॥१०३॥

२६ अध्यायका नाम निरूपण करते हैं:

सुभद्रा—विवाह—हेतवे नमः ॥१०४॥

सुभद्राके विवाहके हेतु रूप भगवान्‌को नमस्कार ।

अर्जुन तीर्थयात्रामें पर्यटन कर द्वारकामें आए। वहां सुभद्राके स्वरूपको देख मुग्ध हुए। बलदेवजीको सुभद्रा कौरव राजा दुर्योधनको देनी है, यह विचार था। परंतु प्रभुका तो उस कुलका सर्वथा संहार करा होनेसे अर्जुनको देनी है, ऐसा विचार था। वसुदेव और देवकीजीको भी ऐसा ही विचार था। इसीलिए अर्जुनको सुभद्राका हरण करनेकी बुद्धि प्रेर के और

स्वयं भी उसमें सम्मत हुए। इसीसे सुभद्राका अर्जुनके साथ विवाहके कारण रूप आप स्वयं ही हैं। “अर्जुन स्तीर्थयात्राधाम” यहांसे आरंभ कर “प्रार्हिणोत् पारिबर्हाणि” इस श्लोक पर्यन्तके भावको उपजानेवाला यह नाम है ॥१०४॥

जैसे भगवान्ने अपने भक्त अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिए अपनी बहन भी उनको दी, उसी तरह अन्य मार्गसे ज्ञान मार्ग द्वारा परम भक्त हुए श्रुतदेव और जनक राजाको प्रसन्न करनेके लिए आप सकल महर्षिगण सहित उनके यहां पधारे। इसीलिए स्वयं प्रभु मानरहित होने पर भी अपने भक्तजनको अत्यंत मान देनेवाले हैं। “अमानी मानदः” यह होनेसे ही महाभारतमें विष्णुसहस्रनाममें आपका स्तवन किया है। इस प्रसंगको अनुसरता नाम दर्शाते हैं:—

जनकादि—ज्ञानि—मनोरथ—पूरकाय नमः ॥१०५॥

जनक आदि ज्ञानियोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

जनक जिनमें मुख्य हैं ऐसे ज्ञानियोंके ज्ञानमार्गमें वह निपुण हैं। तो भी उनके ऊपर महान अनुग्रह कर आपने भक्तिका दान उनको किया है। आपने स्वयं पधारकर उनकी सेवाको अंगीकार किया, यह भक्तिका परमदान है। “तयोः प्रसन्नो भगवान्” यहांसे आरंभ कर “उवास कुर्वन् कल्याणं मिथिलानरयोषिताम्” इस श्लोक पर्यन्त तकके अर्थको सूचन करता यह नाम है। भगवान् उन दोनोंके ऊपर—जनकराजा और श्रुतदेव पर प्रसन्न हुये और उनके नगर मिथिलापुरीमें

नर-नारीयोंका कल्याण करनेके लिए कितने समय तक वहां निवास किया। इस प्रकार उनके मनोरथोंको आपने पूर्ण किया ।।१०५।।

जनकराजाकी तरह श्रुतदेव ब्राह्मणके ऊपर भी उतना ही अनुग्रह किया, इसका निरूपण करते हैं:—

श्रुतदेवाद्युपासक—सन्मार्ग—बोधकायनमः ।।१०६।।

श्रुतदेवादि उपासकोंको सन्मार्गका बोध करनेवाले भगवान्का वंदन।

श्रुतदेव वगैरह उपासक इस स्थल पर श्रुतदेवकी उपासना करनेवाले हैं। इसीलिए उनका नाम प्रथम कहा हुआ है। इन सर्व उपसकोंको सन्मार्ग—भगवन्मार्गका उपदेश करनेवाले आप प्रभु ही हैं। जैसे मेरे ऊपर आप सबका भाव है उसी तरह मेरे भक्त ब्राह्मणोंके ऊपर भी उतना ही भाव रखना, इस अनुसार बोध करनेवाले ऐसे भगवान्को वंदन करते हैं। “श्रुतदेवोच्युतं प्राप्तम्” यहांसे आरंभ कर “उषित्वादिश्य सन्मार्गम्” इस श्लोक तकके आशयको बतानेवाला यह नाम जानना ।।१०६।।

३८ वें अध्यायके नामका निरूपण करते हैं:—

अखिल—निगम—निजजन—संस्तुताय नमः ।।१०७।।

सब वेद ऐसे निजजनोंसे स्तुति कराते भगवान्का अभिवंदन।

सकल वेद यह प्रभुके निजजन हैं—बंदीजन हैं। जैसे बंदीजन शयन करते राजाको जाग्रत करनेके लिए उसकी स्तुति करते हैं, वैसे ही सकल वेद निरंतर प्रभुका यशोगान गाते हैं। इसीलिए इनको निजजन कहा है। प्रभुके पराक्रमका—उनकी लीलाका वर्णन करनेवाले वेद होनेसे वे भगवद्‌रूप ही हैं। इस कारणसे भी यह निजजन कहलाए। यह निजजन—भगवदीय वेदों द्वारा सुंदर रीतिसे स्तुति कराते भागवतमें वेदस्तुति प्रकरणके अध्यायके आशयको बतानेवाला यह नाम है। वेदस्तुतिके प्रत्येक श्लोकका वर्णन श्रीसुबोधिनीजीमें उत्तम प्रकारसे किया है। श्रुतियोंने ही जिनका निरूपण किया है, वह ही श्रीकृष्ण शब्दसे प्रतिपादन करनेमें आते परब्रह्म ही हैं। गीतामें आज्ञा करते हैं कि “वेदैश्च सर्वरहमेववेद्यः”। सर्व वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं। इसीलिए सर्व वेदोंसे स्तुति कराते प्रभु ऐसा कहते हैं। श्रुतियां भगवान्‌के करे हुए पराक्रमको सुनाती हैं। जैसे बंदीजन राजाके करे हुए पराक्रम राजाको सुनाते हैं, उसी तरह बंदीजन जाग्रत करनेके अधिकारको धारण करनेवाले हैं। कारण कि यह विद्योपजीवी हैं, उन वेदोंके भी उपजीवन प्रभु हैं। यह प्रभुके यशोगानके ऊपर ही निभनेवाले हैं। यह ही उनका परम फल है। इसीलिए उनको भी प्रभुके जाग्रत करनेका संपूर्ण अधिकार है। जिससे श्रुतियां उनका स्तवन करती हैं और जागृत हुए प्रभु कभी साक्षात् दर्शन दें, कदाचित् निज आनंद भी दें, यह श्रुतियोंके मनकी अभिलाषा है। इसीलिए श्रुतियोंका— वेदोंका निरूपण भी—बंदीजनत्व स्वतः सिद्ध ही है। इसीसे वह योग निद्रामें आविष्ट हुए प्रभुकी स्तुति कर जाग्रत करती हैं। प्रभु तो जाग्रत ही हैं, वह किसी समय

मायाके आधीन नहीं होते। जीवकी तरहसे इस निद्रासे पराभव नहीं होते। प्रभुने योगनिद्रा लीलामात्र ही ग्रहण करी है। सर्वदा आप स्वतंत्र ही हैं। जब क्वचित् आप मायाका अंगीकार करते हैं, तब ही वेद उनकी स्तुति करनेमें प्रवृत्तिमान होते हैं:— समर्थ होते हैं, नहीं तो परब्रह्म वेदसे भी अगम्य हैं क्योंकि वेद उनके निःश्वासरूप हैं। “यत्नं निश्वासितं वेदाः” यह स्पष्ट श्रवण होता है। इसीलिए पूर्णब्रह्मका संपूर्ण स्वरूप वेद भी वर्णन करनेमें अशक्तिमान हैं तो और की तो बात ही क्या? आप अपनी माया शक्तिका आविर्भाव कर प्रकट दृश्यमान होते हैं, तब उनकी स्तुति निजजन बंदीजन करते हैं। यह अर्थ इस नाममें रहा हुआ है, यह समझना ॥१०७॥

सर्वसे अगम्य प्रभु हैं यह प्रतिपादन है:—

सर्वागम्य—स्वरूपाय नमः ॥१०८॥

सर्वसे अगम्य जिनका स्वरूप हैं ऐसे प्रभुको नमस्कार।

श्रुतियोंनें जब प्रभुके गुणोंका वर्णन किया तब आप प्रसन्न हुए और वे आपके स्वरूपका ज्ञापन करने लगी फिर भी पूर्ण रीतिसे प्रभुको जाननेमें वह शक्तिमान तो नहीं हैं। कारण कि “यतो वाचो निवर्तन्ते” जो प्रभुके अखंड आनंदस्वरूपके आगे वाणी भी निवृत्त हो जाती है। इसीलिए उनका स्वरूप सर्वसे अगम्य हो यह स्वाभाविक ही है। परब्रह्म श्रीकृष्ण यह अनिर्वचनीय परम काष्ठापन्न वस्तु है। “आनन्द ब्रह्मणो विद्वान्” ऐसे परब्रह्मके आनंदको जानने वाला कोईसे भयको प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार सर्व श्रुतियों द्वारा जिनका स्वरूप

अगम्य है। कुछ पुष्टि श्रुतियोंसे ही मात्र वह गम्य हो सकता है। इसीलिए ही श्रीमदाचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि उत्तम शब्दार्थसे जिसका संबंध माननेमें आया हो वैसे शब्दार्थका विवेचन करनेके लिए प्रभुने यह श्रुतिगानका प्रवर्तन किया है। इसमें स्पष्ट है कि “कृष्णानन्द परानन्दो नान्यानन्दस्तथाविधः”। “वेदा अपि न तच्छक्ताः प्रतिपादयितुं स्वतः”। श्रीकृष्णका आनंद परमोत्कृष्ट आनंद है, इस प्रकारका दूसरा आनंद है ही नहीं। उस आनंदधनके स्वरूपका प्रतिपादन करनेमें स्वतः वेद भी शक्तिमान नहीं होते। इसीलिए सर्वसे अगम्य आपका स्वरूप है। यह इस नाममें दर्शानेमें आया है।।१०८।।

भगवान्का श्रुतियों द्वारा किया हुआ यह ही ज्ञान है। श्रुतियोंने किस प्रकार निरूपण किया है, यह बताते हैं:—

ऐश्वर्यादि—षड्धर्म—स्थापकाय नमः ।।१०९।।

ऐश्वर्य आदि षड् धर्मका स्थापन करनेवाले भगवान्का वंदन।

श्रीकृष्ण आप सत्त्व, रज और तमोगुण और उनके धर्मसे रहित निर्गुण—निर्धर्मक परब्रह्म हैं। तो भी आप ऐश्वर्य—वीर्य—श्री—यश —ज्ञान —वैराग्य ऐसे षड्गुणसे सम्पन्न हैं। इसीसे ही आपको भग—ऐश्वर्यादि षड् अलौकिक धर्मवान् गुण सम्पन्न भगवान् कहते हैं। आपने भूतलके ऊपर इन षड्गुणों—धर्मों सहित धर्मों रूपसे पधार अपने दिव्य गुणों—धर्मोंको अपने भक्तजनोंमें स्थापित किया है। सर्व रस जैसे सागरमें विलीन होते हैं, सर्व धर्म जैसे धर्मों स्वरूपमें

विलीन होते हैं, उसी तरह सर्व श्रुतियां—श्रीमद्गोपीजन प्रभुके स्वरूपमें आसक्त होकर उनका यशोगान करती हैं। जिससे अनन्य भक्तजन तो सर्वका परित्याग कर प्रभुका ही आश्रय करते हैं, सर्व इन्द्रियोंका विनियोग प्रभुमें ही करते हैं। अपनी सब वृत्तियोंको प्रभुमें ही जोड़ते हैं। कितने वाक्योंके अर्थका ज्ञान न होनेसे केवल निर्धर्मक ब्रह्म है यह कहते हैं। परंतु श्रुतियां तो यह सर्व अखंड सच्चिदानंद रूप हैं, यह स्पष्ट निरूपण करती हैं और उसका ही सेवन करनेका सूचन करती हैं। जिससे परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णमें अलौकिक ऐश्वर्य—वीर्यादि सर्वधर्म कार्य करनेमें समर्थ—कर्तुं—अकर्तुं—अन्यथाकर्तुं सर्वथा समर्थ सर्वदा रहे हुए हैं। श्रुतियां इस प्रकार प्रभुमें धर्मका प्रतिपादन करती हैं. श्रुतिद्वारा आप प्रभु ही सर्व धर्म मात्रका स्थापन करनेवाले हुए हैं। इससे इस नाम का निर्देश करनेमें आया। यह तीन नाम वेदस्तुतिके ३८ वें अध्यायके अनुसरते समझना।।१०६।।

३६ वें अध्याय का नाम कहते हैं:—

भक्तदुष्ट—वैभव—नाशकाय नमः ।।११०।।

भक्तके दुष्ट वैभवका नाश करनेवाले प्रभुको प्रणाम।

भक्तजनको प्रभुकी सेवामें बाधकरूप होनेसे वैभव प्राप्तिमें विघ्नरूप हैं, ऐसे वैभव उत्तम हो तो भी दुष्ट ही है। ऐसे भक्तजनके दुष्ट वैभवको आप सह नहीं सकते। उसके वैसे वैभवको वह किसी भी उपायसे नाश कर अपनी सेवामें सरलता प्राप्त कर देते हैं, ऐसे प्रभु परम कृपानिधान हैं।

देव, दैत्य और मनुष्योंमें जो अशिव—अमंगल शंकरका आराधन करनेवाले भक्त बहुत धनवान होते हैं। परंतु लक्ष्मीपति श्रीहरिका आराधन करनेवाले धनवान—वैभववान् नहीं होते। कारण कि प्रभु उनको धनका दान नहीं करते। जो धन प्रभुमें अन्तराय रूप हो, माया मोह उपजाने वाला हो, प्रभुके प्रेमको भुला देनेवाला हो, ऐसा धन भक्तको दें तो भक्तका मन आपके ऊपर दृढ़ स्नेहवाला नहीं होगा। कदाचित् उनके पास वैसा धन—वैभव हो तो उसका भी हरण कर लें तो दे कहां से? अश्वमेध यज्ञ हो गया बादमें युधिष्ठिरने भगवान्को प्रश्न किया था कि आपका सेवन करनेवाले बहुतसे अर्थात् ध्रुव प्रह्लाद वगैरहका अपवाद दूर कर बहुत भक्त धन बिना—वैभवसे विमुख कैसे होते हैं? इसके प्रत्युत्तरमें प्रभुने आज्ञा करी कि “यस्याहमनुग्रहणामि हरिष्ये तद्धनं शनैः” जिनके ऊपर मैं अनुग्रह करनेकी इच्छा करता हूं उसके धनको धीरे—धीरे हरण करता हूं और पूरी तरह निष्किंचन बन जानेसे, उसकी ममता दूर होने मेरेमें दृढासक्ति होती है। इसीलिए मादक द्रव्यका मैं हरण करता हूं। कुछ मेरेमें दृढ़ स्नेहयुक्त होय और धनवैभवादिमें अपनी आसक्ति नहीं रखने वाले हो उनको राज्य धन वैभवादि देता हूं। फिर भी वह कदापि वह धनके ऊपर ममता नहीं रखते ओर निरंतर ही मेरेमें चित्त रखते हैं। जो लोग केवल वरदानसे मदोन्मत्त हो जाय उनको तो कदापि मैं वैभवादिका दान नहीं करता, यह मेरा दृढ़ संकल्प है। भगवान् शंकर तामस तप करनेवाले भक्तके ऊपर सत्वर प्रसन्न होकर उनको वरदान वगैरह देते हैं जैसे बाणासुर—रावण वगैरह वरदान प्राप्त कर पृथ्वीमें प्राणी मात्रको उपद्रव करनेवाले हुए थे। उनका ऐश्वर्य बड़ा दुष्ट है। भक्त

को तो खास कर अनिष्ट ही करनेवाला है। इसीलिए भगवान् इस दुष्ट ऐश्वर्य रूप वैभवका विनाश करते हैं। श्रीशंकरको ऐसा वरदान देनेसे—अपात्र को दान करनेसे स्वयं ही आपत्ति आ पड़ी थी। यह दुष्ट अपने इष्ट देवको भी दुःख देनेसे नहीं चूकते, दया नहीं रखते, तो दूसरे प्राणी मात्रको पीड़ा रूप हों तो इसमें क्या आश्चर्य ? ॥११०॥

भक्तसंकट—निवारकाय नमः ॥१११॥

भक्तके संकटका निवारण करनेवाले श्रीवासुदेवका वंदन।

भक्त शंकरने वृकासुरको वरदान दिया—जिसके माथेके ऊपर वह हाथ धरे वह भस्मीभूत हो जाय। एक दिवस शंकरपत्नी पार्वती माताके अत्यंत सौंदर्यको देखकर दैत्य मुग्ध हो गया और शंकरके ही मस्तक ऊपर हाथ धरनेको प्रवृत्त हुआ। तदानुसार अपने वरदानसे भगवान् शंकर भी अत्यंत संकट पाने लगे और अपने इष्ट भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। उनने युक्तिसे आये हुए संकटको दूर किया, ऐसे भक्तके ऊपर आ पड़े संकटको टालनेवाले—भक्तकी रक्षा करने रूप ही एक स्वभाव जिनका है, ऐसे कृपानिधि श्रीकृष्ण हैं। इस आशयको व्यक्त करनेवाला यह नाम है॥१११॥

वृकादि—दुष्टघातकाय नमः ॥११२॥

वृकादि दुष्टका घात करनेवाले श्रीभगवान्का अभिवंदन।

महादेवने विचार करे बिना वृकासुरको वरदान दिया। इसीसे वह मदोन्मत्त बना हुआ दैत्य शंकरको ही पीड़ा करनेवाला हुआ। इसीलिए भगवान्ने उसका घात कर भक्त शंकरकी रक्षा करी। यह नाम “शाप प्रसादयो” यहांसे आरंभ कर “मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे” पापी वृकासुरको मारा तब सर्व पुष्प वृष्टि करने लगे, बहुत ही प्रसन्न हुए। इस श्लोक तकके अर्थका सूचन करनेवाला यह नाम है ।।११२।।

इसके अनुसार शंकरके संकटका निवारण करनेसे सर्वदेव उनकी स्तुति करने लगे। अन्यजन भी प्रभुकी स्तुति करते थे। तो जिनका संकट दूर किया है, वह लोग स्तुति करें इसमें तो पूछना ही क्या? और पुत्ररूप यह शंकरके संकटको दूर करनेसे स्वयं ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करने लगे।

यह दर्शाते हैं:-

ब्रह्माशिवादि-वन्दित-चरणाय नमः ।।११३।।

ब्रह्मा और शंकर आदि देवोंसे जिनके चरणोंका वंदन होता है, ऐसे परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार।

शंकर संकटसे मुक्त हुए यह देखकर ब्रह्मा अपने पुत्रका दुःख दूर हुआ जान प्रभुकी स्तुति करने लगे। उनकी अन्य अनेकों देव पितृ-ऋषि-गंधर्व-वगैरह भी स्तुति करने लगे। “देवर्षिपितृगन्धर्वा” यहांसे आरंभ कर” मोचितः संकटाच्छिवः” इस श्लोक पर्यन्त तकके आश को व्यक्त करनेवाला यह नाम है। इस प्रकार दर्शाकर भगवान् श्रीकृष्णका परम उत्कर्ष प्रकट

करते हैं अर्थात् अनेक देव—ऋषि पितृ वगैरह जिनका वंदन करते हैं ऐसे सर्वोत्तम श्रीकृष्ण हैं यह प्रतिपादन करते हैं ।।११३।।

दूसरा भी प्रभुके उत्कर्षको बतानेवाला नाम कहते हैं:—

सर्वोत्कर्ष—बोधकाय नमः ।।११४।।

सर्वसे भी श्रेष्ठताका बोध करनेवाले श्रीहरिको नमन ।

यह नाम ४० अध्यायके आशय का है। “सरस्वत्यास्तटे राजन् नृषयः सत्रमासत । वितर्कः समभूतेषां त्रिषवधीशेषु को महान्” राजन् सरस्वती नदीके तटके ऊपर सब ऋषि यज्ञ करते थे। उनके आगे यह तर्क उत्पन्न हुआ कि ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर इन तीनों देवोंमें मुख्य—महान कौन? इस विषयमें अनेक वाद—विवाद हुआ फिर भी कोई निश्चयात्मक निर्णय हो नहीं हो सका। इसीलिए इसकी परीक्षा करने भृगुमहर्षि को भेजा। उन्होंने सत्यलोक कैलाश तथा वैकुण्ठमें जाकर उनकी परीक्षा करी। साधारण नियम यह है कि जिनमें सत्वादिगुणोंकी विशेषता होय, क्षमा, दया वगैरह संपूर्णतासे विराजित होय वह महान कहलाए। तीनों देवोंमें संपूर्णतासे सर्वगुणसम्पन्न भगवान् विष्णु ही महान हैं। यह भृगुमहर्षिने निश्चय कर सर्व मुनियोंसे निवेदन किया। इसीलिए सरस्वतीके उपासक ब्राह्मणोंने उनके निर्णयको मान देकर भगवान्का सेवन करने लगे। इस प्रकार इस अध्यायमें प्रभुका उत्कर्ष दर्शानेमें आया है, इसीलिए इस प्रकारसे इस नामकी योजना करी ।।११४।।

विप्र—मृतापत्य—दात्रे नमः ।।११५।।

ब्राह्मणके मरे हुए बालकोंको देनेवाले श्रीकृष्णको प्रणाम ।

द्वारकामें एक ब्राह्मणके बालक जन्म होते ही मृत्युको प्राप्त हो जाते थे। उन मृत बालकोंको सभामें लाकर वह ब्राह्मण सर्वक्षत्रियोंका अत्यंत तिरस्कार करता था। इस प्रकार अनेक बालक मृत्युको प्राप्त हुये। एक समय सभामें अर्जुन भी बैठे हुए थे और ब्राह्मणने मृत बालकको वहां डालकर क्षत्रियोंका—राजाओंका अनेक प्रकारसे तिरस्कर किया। अर्जुनसे यह सहन नहीं हुआ। इसीलिए उसके बालकका संरक्षण करनेकी प्रतिज्ञा करी। परंतु उनके रक्षणमें तो देह सहित ब्राह्मणका बालक अदृश्य ही हो गया। पहले तो देह रहता था और आज देह सहित बालक नष्ट होनेसे सबको महान आश्चर्य लगा। यम लोक—स्वर्ग लोकादि सब लोकमें भ्रमण करने पर भी अर्जुनने उस बालकको प्राप्त नहीं किया। इसीलिए अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार प्राणका त्याग करने तैयार हुए। इसीलिए प्रभुने कृपा कर सप्तद्वीपाधिपति क्षीरसागर निवासी भगवान् नारायणके संनिधानमें पधार जैसे थे वैसे ही स्वरूपवाले सब बालकोंको लाकर दे ब्राह्मणको स्वाधीन किया और अर्जुनकी प्रतिज्ञाका पालन किया। इस आशयको दर्शाता यह नाम है ।।११५।।

अर्जुनको अहंकार हुआ था। वह अपनेको सबसे विशेष मानता था। अपने आधीन भक्तका अभिमान दूर करनेके लिए प्रभुने यह योजना करी थी। कारण कि भक्तको अहंकार नहीं करना चाहिए। इसीलिए यह चरित्र कर उनके गर्वका परिहार किया है, इसका नाम कहते हैं:—

अर्जुनादि—गर्व—प्रहारकाय नमः ॥११६॥

अर्जुन वगैरहके गर्वका प्रकर्ष रीतिसे हरण करनेवाले
भगवान्का वंदन ।

ब्राह्मणके बालकोंको लाकर दिया, सप्तद्वीपाधिपतिके दर्शन कर अर्जुनके अभिमानको उतारा और उनके हृदयमें यह निश्चय कराया कि जो कोई हैं वह भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं । उनका आश्रय करनेसे ही सर्व सिद्ध होता है । “निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः यत् किञ्चित् पौरुषं पुसां मेने कृष्णानु कम्पितम्” अर्जुन वैष्णव—भगवान् विष्णुके संबंधसे युक्त वैकुण्ठ धामका श्रवण कर परम विस्मित हुये । पुरुषोंमें जो कोई पुरुषार्थ देखनेमें आता है वह सर्व श्रीकृष्णकी करुणाका ही प्रताप है यह मानने लगे, वगैरह तात्पर्यका सूचन करनेवाला यह नाम है ॥११६॥

इस धर्मका प्रवर्तन करनेवाले प्रभु भक्तजनोंको आनंद प्रकट करनेके लिए द्वारकाके नायक होकर निवास कर उसमें विराजमान हुए हैं । इसका सूचक नाम दर्शाते हैं:—

द्वारिका—नायकाय नमः ॥११७॥

द्वारकाके नायक श्रीद्वारकाधीशको प्रणाम ।

“अपनी द्वारिका नगरीमें सुखपूर्वक निवास करते लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण अनेक चरित्र प्रकट करते हैं” इस श्लोकके आशयका स्पष्ट करता यह नाम है ॥११७॥

द्वारिकामें निवास करते सर्व यादव—प्रजा मात्रके नायक—अग्रगण्य होकर नाना प्रकारके विलासोंका सेवन किया इसका नाम बताते हैं:—

नाना—विलास—विलसित—सुखाढ्ये नमः ।।११८।।

विविध प्रकारके विलासोंसे शोभायमान सुखके सागररूप श्रीकृष्णको नमन ।

“स्त्रिभिश्चोत्तमवेषाभिः” इस श्लोकसे आरंभ कर “कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापस्मितेक्षणैः” इस श्लोक तकके आशयको दर्शानेवाला यह नाम है। इसमें स्पष्ट कहते हैं कि:—उत्तम वेष धारण करने वाली, नवयौवनसे कान्तिमान गेंद वगैरहसे खेलती, साधनोंके द्वारा महालयोंमें क्रीडा करती, बिजलीके जैसी प्रभाव वाली सोलह हजार स्त्रीयोंके साथ नाना प्रकारके विलासोंसे द्वारिकामें जिनने सुखके सागर उभार दिये थे, सूत—मागध बंदीजन जिनका गुणगान करते थे। इस प्रकार विहार करते श्रीकृष्णके गमनसे, मधुरालापसे, कटाक्षपूर्वक अवलोकन करनेसे, मंद स्मित हास्यसे, उपहास्य करनेसे, आलिंगनसे सर्व अंगना मंत्र मुग्ध बन जाती थीं, ऐसे संपूर्ण पंरमानंदके सागरको प्रकट करनेवाले प्रभु बिना अन्य कौन हो सकता है? इसीलिए अनवधि आनंद सागररूप प्रभुको प्रणाम करते हैं। इस प्रकार विलासादि चरित्रोंको प्रकट करनेके कारण सबका आपमें निरोध होता है। जिसके हृदयमें जो आकांक्षा हो वैसी रीतिसे प्रभुकी तरफ उसका आकर्षण हो, निरोध हो इसीलिए ही प्रभुने भूतल ऊपर विराजमान होकर

विविध विलासादि चरित्र प्रकट किये हैं। प्रभुका इसमें अपना कोई भी स्वार्थ नहीं ।।११८।।

प्रभुने चरित्र कर जैसे निजजनोंका प्रपंच विस्मरण हो वैसा ही किया है। ब्रजजनोंसे लेकर द्वारिकास्थ और इतर भी निजजनोंको प्रपंच भुलवा दिया है। यह उपसंहार कर इसका सूचन करता नाम कहते हैं:-

निखिल-निजजन-प्रपञ्च-विस्मारकाय नमः ।।११९।।

निजजनोंके प्रपंचको भुला देनेवाले भगवान्को नमस्कार।

अपने सब भगवदीयजनोंके लौकिक-वैदिक प्रपंच मात्रको भुला कर अपनेमें उनका अनुसंधान प्रभुने किया है। जिसका जितना अधिकार था, उस अनुसार प्रभुमें उसका अनुसंधान-भगवदासाक्ति हुई। सब निजजनोंको एक ही पद्धतिके अनुसार प्रभु प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं। जिसका जितना अधिकार है, उसको उस प्रकारसे प्रभुकी प्राप्ति हुई है। नंद-यशोदा-वसुदेव एवं देवकीजीने पुत्रभावसे, गोपाबालकों उद्धव-अर्जुनादि सखाओंने सखाभावसे, गोपांगनाओं, रुक्मिणी आदि प्रियाओंको प्रियतम भावसे, शिशुपालादिकोंको शत्रुभाव से, ऐसे जिसका जितना अधिकार है, उस-उस अनुसार उसको प्रभु प्राप्ति हुई है। भगवान्ने भी उनको अलग-अलग रीतिसे आनंदका दान किया है।

इस प्रकार परम कृपानिधान श्रीकृष्णचन्द्रके दशम स्कंधमें निरोधका साधन करनेवाले नामोंका निरूपण किया गया है ।।११९।।

ग्रंथ की समाप्तिका उपसंहार करते हैं:—

इत्येवं राजलीलायां नाम्नाम् अष्टादशं शतम् ।।

निरोधलीलाम् आश्रित्य भक्त्यै भक्ते निरूपितम् ।।१।।

इस प्रकार राजलीलामें ११८ नामोंसे निरोध लीलाका आश्रय कर भगवदीय जनमें भक्तिका स्थापन करनेके लिए—भक्ति प्राप्त होनेके लिए निरूपण करनेमें आया ।

दशम स्कंधको निरोधलीला कहा जाता है। इन चरित्रोंके यह नाम हैं। नामोंको प्रकट करनेका प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि —इन नामोंका रटन—स्मरण करनेसे जो भक्तजन हैं उनको ही प्रभुमें भक्ति होती है। भक्तमें भक्ति करनेके लिए ही यह नाम हैं। जिन लोगोंकी प्रभुमें भक्ति ही नहीं हैं, उनको कुछ भी सिद्ध नहीं है। जिनमें भक्ति मूलरूपसे हो और बादमें इन नामोंका स्मरण—भजन—रटन करे तो प्रभु में उसका स्नेह विशेषसे विशेष ही हुआ करता है, यह निःसंशय है ।।१।।

पाठ करनेसे जो फल होता है वह दर्शाते हैं—

बाललीलानामपाठात् श्रीकृष्णे प्रेम जायते ।।

आसक्तिः प्रौढलीलाया नामपाठाद् भविष्यति ।।२।।

व्यसनं कृष्णचरणे राजलीलाभिधानतः ।।

तस्मान् नामत्रयं जाप्यं भक्तिप्राप्तिच्छुभिः सदा ।।३।।

बाललीलाके नामोंका पाठ करनेसे श्रीकृष्णमें प्रेम उत्पन्न होता है।

प्रौढ़लीलाका पाठ करनेसे श्रीकृष्णके विषय आसक्ति होती है। राजलीलाके नामोंका पाठ करनेसे श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें व्यसन सिद्ध होता है।

इसलिये तीनों प्रकारके नामोंका जप भक्ति प्राप्त करनेकी उत्कंठा रखनेवालेको अवश्य निरंतर करना चाहिए।।२-३।।

ऊपरके पहले श्लोकमें नामोंका रटन करनेवालेको प्रभुमें भक्ति होती है। भक्तिके तीन स्वरूप हैं—प्रेम, आसक्ति और व्यसन। इनमें बाललीलाके नामोंका पाठ करनेसे अवश्य प्रभुमें प्रेम प्रकट होता है। कारण कि इस समयके प्रभुके चरित्र ही स्वाभाविक प्रभुमें प्रेम प्रकट करें, ऐसे हैं। प्रौढ़लीलाके चरित्रोंमें पराक्रम और प्रताप दर्शानेमें आया है। जिससे उन नामोंका स्मरण करनेसे सहज रीतिसे उनमें आसक्ति होती है। मोह पाकर भक्तजन उनके स्वरूपमें लीन हो जाते हैं—मग्न हो जाते हैं। और राजलीलाके चरित्र संभावनीय—सम्माननीय होनेसे प्रभुमें व्यसन प्राप्त कराते हैं। व्यसन अर्थात् जिसके बिना जरा भी निभ न सकें, इन चरित्रोंका सेवन करनेवालेको प्रभुके चरण कमलका व्यसन ही बन जाता है। वह प्राप्त नहीं हो तो उससे निभ ही नहीं सकें। उसके अन्तःकरणमें आठों प्रहर—निरंतर प्रभुके चरणकमलका चिंतन ही रहा करता है।

बाललीला और प्रौढ़लीलाके फल यह तामस भक्तोंको ही कहा हुआ है। तामस भक्त गोपीजन हैं। आसक्त होना यह उनमें स्वाभाविक होनेसे मनोरथ रूप व्यसन भी आ जाता है। इसीसे उनका स्वरूप भी भिन्न हैं, कारण कि उनका अधिकार ही उस प्रकारका है। इनका स्वरूप “अक्षण्वतां फलमिदं न परं

विदामः” चक्षुधारियोंको निरक्षण करने रूप परम फल तो दर्शनीय प्रभुका स्वरूप ही हैं, इसके बिना अन्य कुछ भी नहीं। जब सर्व नेत्रधारीयोंको इस प्रकार है, तो भक्तको प्रभुके प्रेममें मग्न हुए गोपीजनोंको तो वह परम फल हो इसमें तो आश्चर्य ही क्या? उनकी तो सर्व इन्द्रिय मात्रके परम फल भगवान् ही हैं। उनको प्रभुमें दृढ़ प्रेम—दृढासक्ति—परम व्यसन हो यह स्वाभाविक है। यह तामस भक्त श्रीमद्ब्रजांगनाओंने अपने विविध प्रकारके मनोरथके अनुसार वैसे वैसे भगवत् स्वरूपका प्रकाश अपने अंतःकरणमें प्राप्त कर लिया है। प्रत्यक्ष प्रभु के वैसे-वैसे स्वरूपका अनुभव उनको हुआ है, इसीलिए वह महाभाग्यवान हैं। उन्होंने भूतल पर पधार कर परम फल प्राप्त किया है।

आगे वे ही श्रीमद्गोपीजनके अंशरूप रुक्मिणी आदि पटरानीयोंको क्रम-क्रमसे प्रभुके वैसे स्वरूपका लाभ हुआ है। यह राजलीला—प्रमाण रूपा है। सर्व पटरानीयां भक्त होने पर भी प्रमाण रूप हैं। इसीलिए स्नेहसे दंपतिके भावमें ही निष्ठा करनेवाली हैं। उनको हुआ निरोध भी प्रमाण रूप है। इसीलिए सबको अपना स्वरूप और अपने माहात्म्यका ज्ञापन कराकर प्रभुने प्रपंचकी विस्मृति करायी है। पर संकल्पका उत्पादन करनेवाली आसक्ति करी है, ऐसा नहीं। इस प्रकार प्रपंचका विस्मरण होनेसे माहात्म्यका ज्ञानपूर्वक स्नेह सिद्ध होकर सर्व इन्द्रियोंका भगवान्के चरणारविदमें निष्ठा प्राप्त करने रूप व्यसन भी प्राप्त हुआ। इसीलिए इसके पाठका फल भी इस ही अनुसार किया है। जैसा-जैसा अधिकार वैसे-वैसे व्यसनके भी भेद जानना। मर्यादाके अनुसार भी भक्तजनोंका भगवान्में परायण होने रूप व्यसन होता ही है। श्रीमदाचार्यचरणने

‘सम्यक् व्यवसिता बुद्धिः’ इस श्लोककी सुबोधनिजीमें स्पष्ट आज्ञा करी है कि “भगवान्की कथा ही श्रवण करनी, दूसरी कोई भी नहीं”। इन राजर्षि परीक्षितको व्यसन ही हो गया। बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंको भी यह व्यसन होना दुर्लभ है। उनको तो स्वाभाविक रीतिसे ऐसा व्यसन प्राप्त हुआ है। यह तुम्हारी बुद्धि बड़े उत्तम प्रकार की है कि भगवान्की कथामें तुम्हें ऐसी निष्ठावाली प्रीति उत्पन्न हुई है कि कोईसे भी चलायमान हो नहीं सके। अहो ! तुम महाभाग्यशाली हो। तुम्हारा महान उत्कर्ष है कि तुमने यह उत्तमोत्तम भगवद्धर्मको अंगीकार किया है। इसीलिए ही तुम्हारा यह भगवत् कथा श्रवण करने रूप व्यवसाय है, यह अत्यंत योग्य है। इस प्रकार मर्यादा पुष्ट भक्त होने पर भी परीक्षित राजाको प्रभुमें यह व्यसन हुआ, यह सिद्ध ही है। इसीलिए सर्वजन मंत्रकी तरह इन नामोंका जप करे। इसीलिए भगवत्प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छावालोंको तो इन नामोंका जप करना परम आवश्यक ही है।

समाप्तिमें श्रीमद्गोकुलोत्सवजी अभिमानके परित्याग पूर्वक सत्पुरुषोंकी विज्ञप्ति कर श्रीमदाचार्यजीके चरणकी शरण तथा विद्वलेश प्रभुके शरणकी निरंतर भावना कर उनको ही यह ग्रंथ समर्पण करते हैं कि:-

श्रीमदाचार्यचरणाकरुणारससिंचितम् ।।

आसीदुल्लसितं चित्तं नामालिविवृतौ मम ।।१।।

श्रीमदवल्लभाचार्यजीके चरणकमलके करुणामय रससे सिंचन कराया हुआ मेरा चित्त प्रभुकी नामावलीका विवरण करनेमें उल्लासवाला बना। श्रीमदाचार्यचरणके करुणामय रसके

सिंचनसे मेरा मन प्रसन्न हुआ, तब मैंने वृत्ति विवरण प्रकट किया। मेरे चित्तमें आपने प्रवेश कर यह कार्य कराया है। मेरेमें इसकी जरा भी शक्ति नहीं, यह भाव दर्शाकर अपने अभिमानका निरासकर भगवद्वदनानल स्वरूप श्रीवल्लभाचार्य—चरण पर अपना परम भाव प्रकट करते हैं॥१॥

तत्कृपादृष्टिसंजातपदं संगतितो मया॥

विवृतं तच्च ये संतः पश्यन्तु सुविचक्षणाः॥२॥

यह मदाचार्यचरणकी कृपा दृष्टिसे प्रकट हुए पदको मैंने संगतिसे विवरण करा उसको जो विलक्षण—बुद्धिमान चतुर हों वह सज्जन देखें।

यह निरोध लीलाके नामोंको महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने ही प्रकट किया है। उनकी ही कृपासे मैंने विवरण किया। इसमें मेरा जरा भी बुद्धि वैभव नहीं। चतुर बुद्धिमान सज्जन तो यह तात्पर्य सहजमें ही देख सकते हैं। मैं भी उसको उसी तरह देखने की उत्कंठा रखता हूं। अर्थात् इस विवरणमें कुछ सुंदर देखनेमें आता हो तो वह श्रीमदाचार्य चरणका ही प्रताप है। यह जान बुद्धिमान पुरुष उनका ही यशोगान करें, मेरा इसमें कुछ भी लेना—देना नहीं। यह भाव व्यक्त कर अपनी अत्यंत सरलता प्रकट करते हैं, निर्मानिता सिद्ध करते हैं॥२॥

यदत्र बुद्धिदोषेण सहजेन विसंमतम् ।

मार्जनीयं स्वसौहार्दाद्विज्ञप्तिः सत्सु मे सदा॥३॥

जो इसमें सहज बुद्धि दोषसे विरुद्ध दोषयुक्त होय तो अपने सौहार्दसे शुद्ध कर लेना, यह मेरी सज्जनोंसे विज्ञप्ति है।

जो उत्तम देखनेमें आता हो वह सर्व महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीका ही है। उनका ही कृपामृतका वर्णन है और मेरे सहज बुद्धिदोषसे जो कहीं विरुद्ध दोषयुक्त देखनेमें आवे, वह सरल हृदयके सज्जन शुद्ध कर लेंगे, यह मेरी उनको विनती है। दोष हो यह तो “जीवाः स्वभावतो दुष्टाः—” इस न्यायसे सहज ही है। उसको सुधार लेना यह सज्जनता महत्ता ही है। बाकी अच्छा दिखें तो वह तो श्रीआचार्यचरणका ही अनुग्रह समझना अर्थात् उनका ही है।

इस प्रकार सामान्य सज्जनोंके ऊपर भी यह दीनता दर्शाकर विवृत्तिकारने विनयकी अवधि करी है। यह कहे बिना चलता नहीं। ऐसा नम्र भाव भगवद्रूप भक्त हृदय में ही हो सकता है।॥३॥

श्रीमदाचार्यचरणाः श्रीमान् श्रीविट्ठलः प्रभुः॥

शरणं मे सदा तस्मात्तत्रैवैतत्समर्पितम्॥४॥

श्रीमदाचार्यचरण तथा श्रीमान् विट्ठल प्रभु, इनकी ही निरंतर शरणमें हूं। इसीसे उनको ही यह विवरण समर्पण करता हूं।

जिससे जो प्रकट हुआ वह ही उसका स्वामी है। यह नाम श्रीआचार्यचरणने प्रकट किए। उनकी ही कृपा होनेसे यह विवरण भी उनने ही प्रकट किया। इसीलिए उनको सौपना चाहिए और मैं भी उन्हींकी शरण हूं। जो कोई हमें अपना माने, जिसकी शरण ली है, उसको ही निवेदन करना उचित

है। इसीलिए यह विवरण मैं यह दोनों को—श्रीमदाचार्य चरण
को तथा श्री विट्ठलेश प्रभुको समर्पण करता हूँ।।४।।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटिता त्रिविधनामावली
(श्रीगोकुलोत्सवजीकृत संस्कृतटीकानुवादके गुजराती अनुवाद
का हिन्दी भाषान्तर भावानुवाद समाप्त)

0000000000